रवीन्द्रनाथ

टैगोर

चोखेर बाली

VISIT…

रवीन्द्रनाथ टैगोर एशिया के पहले साहित्यकार थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया। उच्चकोटि के कवि होने के साथ उन्होंने कहानी, निबन्ध, यात्रा-वृत्तान्त और उपन्यास के क्षेत्र में भी साहित्य सृजन किया।

उनका उपन्यास 'चोखेर बाली' प्रेम, वासना, मित्रता और दाम्पत्य जीवन के ऊहा-पोह में फँसे बिनोदिनी और महेन्द्र, आशा और बिहारी की बड़ी ही मार्मिक कहानी है। मानवीय भावनाओं को अपने अनूठे शिल्प से उकेरते हुए लेखक ने बंगाल के तत्कालीन समाज का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

वहीं इस उपन्यास में माँ राजलक्ष्मी और बेटे महेन्द्र के प्रेम को भी दर्शाया गया है और इसके साथ ही महेन्द्र की चाची अन्नपूर्णा की भी विशेष भूमिका रही है। उपन्यास में प्रेम, मित्रता की हृदय को छू लेने वाली वेदना से परिपूर्ण बातें पाठक के मन को अपनी ओर पूर्णरूपेण खींच लेने में सक्षम हैं।

चोखेर बाली

रवीन्द्रनाथ टैगोर

राजपाल

अनुवाद

नीलाभ

ISBN: 9789350643600

संस्करण: 2015 © राजपाल एण्ड सन्ज़

CHOKHER BALI (Novel) by Rabindranath Tagore

राजपाल एण्ड सन्ज़

1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

फोन: 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791

Website: www.rajpalpublishing.com

e-mail: sales@rajpalpublishing.com

विषय-सूची

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29

30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54

1

बिनोदिनी की माँ हरिमती ने अपनी सहेली राजलक्ष्मी के बेटे महेन्द्र के साथ बिनोदिनी के विवाह का प्रस्ताव ले कर मानो राजलक्ष्मी के घर पर धरना ही दे दिया था। दोनों एक ही गाँव की थीं और बचपन में साथ-साथ खेलती रही थीं।

आख़िरकार, राजलक्ष्मी को महेन्द्र से बात करनी ही पड़ी—"बेटा महेन्द्र, इस गरीब की बिटिया का उद्धार करना पड़ेगा। सुना है, लड़की बड़ी सुन्दर है, फिर लिखी-पढ़ी भी है। मेम ने उसे पढ़ाया है। उसकी रुचियाँ भी तुम जैसे आधुनिक लड़कों जैसी हैं।"

महेन्द्र ने कहा—"मेरे अलावा भी तो बहुत-से आधुनिक लड़के हैं।"

राजलक्ष्मी—"यही तो तुझमें गड़बड़ी है, तुझसे तो शादी की बात करना ही मुश्किल है।"

महेन्द्र—"माँ, इसे छोड़कर दुनिया में और भी तो बहुत-सी बातें हैं। इसलिए मुझे दोष मत दो कि मैं शादी को अभी इतना ज़रूरी नहीं समझता।"

महेन्द्र के पिता उसके बचपन में ही चल बसे थे। माँ से महेन्द्र का बर्ताव साधारण बेटों जैसा न था। उम्र लगभग बाईस की हुई, एम.ए. पास करके डॉक्टरी पढ़ना शुरू किया है, मगर माँ से उसकी रोज़-रोज़ की ज़िद का अन्त नहीं। कंगारू के बच्चे की तरह माता के गर्भ से बाहर आकर भी उसकी बाहरी थैली में टँगे रहने की उसे आदत हो गयी है। माँ के बिना आहार-विहार, आराम-विराम कुछ भी नहीं हो पाता।

अबकी बार जब माँ बिनोदिनी के लिए बुरी तरह उसके पीछे पड़ गयीं तो महेन्द्र बोला, "अच्छा, एक बार लड़की को देख लेने दो!"

लड़की देखने जाने का दिन आया तो कहा, "देखने से क्या होगा? शादी तो मैं तुम्हारी खुशी के लिए कर रहा हूँ। फिर मेरे अच्छा-बुरा देखने का कोई अर्थ नहीं है।"

महेन्द्र के कहने में पर्याप्त गुस्सा था, मगर माँ ने उसे नज़रन्दाज़ करके सोचा, "'शुभ—दृष्टि' के समय जब मेरी पसन्द और उसकी पसन्द एक हो जाएगी, तो उसका स्वर भी नर्म हो जाएगा।"

राजलक्ष्मी ने बेफिक्र होकर विवाह का दिन तय कर दिया। दिन जितना ही करीब आने लगा, महेन्द्र की चाल-ढाल और हाव-भाव में बेचैनी के लक्षण उतने ही अधिक प्रकट होने लगे। विवाह में दो-चार दिन ही रहते थे कि वह कह बैठा—"नहीं माँ, यह विवाह मुझसे हर्गिज़ न होगा।"

छुटपन से महेन्द्र को हर तरह का दुलार मिलता रहा है। इसलिए उसकी इच्छा

सर्वोपरि है। दूसरे का दबाव उसे बर्दाश्त नहीं। अपनी स्वीकृति और दूसरों के आग्रह ने उसे बेबस कर दिया है, इसीलिए विवाह के प्रस्ताव के प्रति उसके मन में घुटन बढ़ती चली गयी और विवाह का दिन नज़दीक आ गया तो उसने एकबारगी 'ना' कर दी।

महेन्द्र का जिगरी दोस्त था बिहारी; वह महेन्द्र को 'भैया' और उसकी माँ को 'माँ' कहा करता था। माँ उसे स्टीमर के पीछे जुड़ी डोंगी-जैसा भारवाही सामान मानती थीं और वैसी ही उस पर ममता भी रखती थीं। अपने को भारी धर्म-संकट में पा कर राजलक्ष्मी को बिहारी की याद आयी। वह बिहारी से बोलीं—"बेटे, अब तुम्हें ही महेन्द्र की जगह लेनी है, नहीं तो उस बेचारी लड़की...."

बिहारी ने हाथ जोड़कर कहा—"माँ, यह मुझसे न होगा। अच्छी नहीं लगी कहकर महेन्द्र जो मिठाई छोड़ देता है वह मैंने बहुत खायी; मगर लड़की के बारे में ऐसा नहीं हो सकता।"

राजलक्ष्मी ने सोचा, 'भला बिहारी विवाह करेगा! उसे तो बस एक महेन्द्र की पड़ी है, अपनी बहू लाने का खयाल भी नहीं आता उसके मन में।'

यह सोचकर बिहारी के प्रति उनकी कृपा-मिश्रित ममता कुछ और बढ़ गयी।

बिनोदिनी के पिता कुछ खास धनी न थे, लेकिन उन्होंने अपनी इकलौती बेटी को मिशनरी मेम रखकर बड़े जतन से पढ़ाया-लिखाया था। इतना ही नहीं घर के काम में भी चाक-चौबंद किया था। वे गुज़र गए और बेचारी विधवा माँ बेटी के विवाह के लिए परेशान हो गयी। पास में रुपया-पैसा नहीं, ऊपर से लड़की की उम्र भी ज़्यादा।

आखिर राजलक्ष्मी ने अपने मैके में गाँव बारासत में एक रिश्ते के भतीजे से बिनोदिनी का विवाह करा दिया।

कुछ ही दिनों में वह विधवा हो गयी। महेन्द्र ने यह सुनने पर व्यंग से हँसकर कहा, "गनीमत थी कि शादी नहीं की, वरना मेरा क्या होता।"

कोई तीन साल बाद माँ-बेटे में फिर एक बार बात हो रही थी।

"बेटा, लोग तो मेरी ही शिकायत करते हैं।"

"क्यों भला, तुमने लोगों का ऐसा क्या बिगाड़ा है?"

"लोग कहते हैं, मैं इसी डर से तेरी शादी नहीं करती कि बहू आने पर बेटा पराया हो जाएगा।"

महेन्द्र ने कहा, "डर तो होना ही चाहिए। मैं माँ होता, तो जीते-जी लड़के का विवाह न करता। लोगों की शिकायतें सुन लेता।"

माँ हँसकर बोलीं—"सुनो, ज़रा इसकी बातें सुन लो।"

महेन्द्र बोला—"बहू तो आकर लड़के को अपना बना ही लेती है। फिर इतना कष्ट उठाने वाली माँ अपने-आप दूर हो जाती है। तुम्हें यह चाहे जैसा लगे मुझे तो ठीक नहीं लगता।"

राजलक्ष्मी ने मन-ही-मन गद्‌गद होकर हाल ही आई अपनी विधवा देवरानी से कहा, "सुनो मँझली, ज़रा महेन्द्र की सुनो! कहीं बहू आकर माँ पर हावी न हो जाए, इसी डर से वह विवाह नहीं करना चाहता। ऐसी बात कभी सुनी है तुमने?"

चाची बोलीं, “यह तो ज़्यादती की बात है! बात वही अच्छी लगती है जो समय के अनुकूल हो। माँ का दामन छोड़कर अब घर-गृहस्थी बसाने का समय आ गया है। अब नादानी अच्छी नहीं लगती उल्टे शर्म आती है।”

राजलक्ष्मी को यह बात अच्छी नहीं लगी। इस सिलसिले में उन्होंने जो कुछ कहा, वह चाहे जैसा हो मगर शहद भीगा तो नहीं था। बोलीं—“मेरा बेटा अगर और लड़कों की अपेक्ष अपनी माँ को ज़्यादा स्नेह करता है, तो तुम्हें शर्म क्यों लगती है, मँझली बहू? कोख का लड़का होता तो समझ में आता।”

राजलक्ष्मी को लगा, अपना बाल-बच्चा नहीं है, इसलिए यह ईर्ष्या कर रही है।

मँझली बहू ने कहा—“तुमने बहू लाने की चर्चा चलाई इसीलिए यह बात निकल गयी, वर्ना मुझे क्या हक है?”

राजलक्ष्मी बोलीं—“मेरा बेटा अगर विवाह नहीं करता, तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है! ठीक तो है, लड़के की जैसे आज तक देख-भाल करती आई हूँ, आइन्दा भी कर लूँगी —इसके लिए और किसी की मदद की ज़रूरत न होगी।”

मँझली बहू आँसू बहाती चुपचाप चली गयी। महेन्द्र को मन-ही-मन इससे चोट पहुँची। कॉलेज से कुछ पहले लौटकर वह अपनी चाची के कमरे में दाखिल हुआ।

वह समझ रहा था कि चाची ने जो कुछ कहा था, उसमें सिवा स्नेह के और कुछ न था। और उसे यह भी पता था कि चाची की एक भानजी है, जिसके माता-पिता नहीं हैं। वह चाहती हैं कि महेन्द्र से उसका ब्याह हो जाए। हालाँकि शादी करना उसे पसन्द न था। फिर भी चाची की यह आंतरिक इच्छा उसे स्वाभाविक और करुणा-भरी लगती है। उसे मालूम था कि उनकी कोई सन्तान नहीं है।

महेन्द्र कमरे में पहुँचा, तो दिन ज़्यादा नहीं रह गया था। चाची अन्नपूर्णा खिड़की पर माथा टिकाए उदास बैठी थीं। बगल में कमरे में खाना ढका रखा था। शायद उन्होंने खाया नहीं था।

बहुत थोड़े में ही महेन्द्र की आँखें भर आती थीं। चाची को देखकर उसकी आँखें छलछला उठीं। करीब जाकर स्निग्ध स्वर से बोला—“चाची!”

अन्नपूर्णा ने हँसने की कोशिश की। कहा, “आ बेटे, बैठ!”

“बहुत भूख लगी है, चाची। कुछ खाने को दो, चाहे तुम्हारे खाने से बचा हुआ ही हो।”

अन्नपूर्णा समझ गयीं कि महेन्द्र यह बहाना इसलिए कर रहा है ताकि वह भूखी न रहें। अपने आँसुओं को रोक कर उन्होंने महेन्द्र को खिलाया और खुद भी खाने लगीं।

महेन्द्र का मन भीगा हुआ था। चाची को दिलासा देने के विचार से वह अचानक बोल उठा, “अच्छा चाची, तुमने अपनी भानजी की बात बताई थी, एक बार दिखा सकती हो?” कहकर महेन्द्र डर गया।

अन्नपूर्णा हँसकर बोलीं—“क्यों? शादी के लड्डू फूट रहे हैं बेटा!”

महेन्द्र झटपट बोल उठा—“नहीं-नहीं, अपने लिए नहीं, मैंने बिहारी को राज़ी किया है। लड़की देखने का कोई दिन तय कर दो!”

अन्नपूर्णा बोलीं—“अहा, उस बेचारी का ऐसा भाग्य कहाँ? भला उसे बिहारी-जैसा लड़का नसीब हो सकता है!”

महेन्द्र चाची के कमरे से निकला कि दरवाज़े पर माँ से मुलाकात हो गयी। राजलक्ष्मी ने पूछा, “क्यों रे, क्या राय-मशविरा कर रहा था?”

महेन्द्र बोला—“राय-मशविरा नहीं, पान लेने गया था?”

माँ ने कहा—“तेरा पान तो मेरे कमरे में रखा है।”

महेन्द्र ने कुछ नहीं कहा। चला गया।

राजलक्ष्मी अन्दर गयीं और रुलाई से सूजी अन्नपूर्णा की आँखें देखकर लम्हे-भर में बहुत सोच लिया। छूटते ही फुफकार छोड़ी—“क्यों मँझली बहू महेन्द्र के कान भर रही थीं, है न?”

और बिना कुछ सुने तत्काल तेज़ी से निकल गयीं।

2

कन्या देखने की बात महेन्द्र ने की, ज़रूर मगर वह भूल गया। अलबत्ता, अन्नपूर्णा नहीं भूलीं। उन्होंने लड़की के अभिभावक, उसके बड़े चाचा को जल्दी में श्यामबाजार पत्र भेजा और एक दिन तय कर लिया।

महेन्द्र ने जब सुना कि देखने का दिन पक्का हो गया है तो बोला—"चाची, इतनी जल्दी क्यों की! बिहारी से तो मैंने अभी तक ज़िक्र नहीं किया।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"ऐसा भी होता है भला! अब अगर तुम लोग न जाओ तो वे क्या सोचेंगे?"

महेन्द्र ने बिहारी को बुलाकर सारी बातें बतायीं, कहा—"चलो तो सही, लड़की न जँची, तो तुम्हें मजबूर नहीं किया जाएगा।"

बिहारी बोला—"यह मैं नहीं कह सकता। चाची की भानजी को देखने जाना है। देखकर मेरे मुँह से यह बात हर्गिज़ न निकल सकेगी कि लड़की मुझे पसन्द नहीं।"

महेन्द्र ने कहा—"फिर तो ठीक ही है।"

बिहारी बोला—"लेकिन तुम्हारी तरफ़ से यह ज़्यादती है, महेन्द्र भैया! खुद तो हल्के हो जाएँ और दूसरे के कन्धे पर बोझ रख दें, यह ठीक नहीं। अब चाची का जी दुखाना मेरे लिए बहुत कठिन है।"

महेन्द्र कुछ शर्मिन्दा और नाराज़ होकर बोला—"आखिर इरादा क्या है तुम्हारा? क्या करना चाहिए हमें?"

बिहारी बोला—"मेरे नाम पर जब तुमने उन्हें उम्मीद दिलाई है तो विवाह मैं कर लूँगा। यह देखने जाने का ढोंग बेकार है।"

बिहारी देवी की तरह अन्नपूर्णा की भक्ति करता था। आखिर अन्नपूर्णा ने खुद बिहारी को बुलवाकर कहा—"ऐसा भी कहीं होता है, बेटे! लड़की देखे बिना ही विवाह करोगे। यह हर्गिज़ न होगा। लड़की पसन्द न आए तो तुम हर्गिज़ 'हाँ' नहीं करोगे। समझे। तुम्हें मेरी कसम...!"

जाने के दिन कॉलेज से लौटकर महेन्द्र ने माँ से कहा—"ज़रा मेरा वह रेशमी कुर्ता और ढाका वाली धोती निकाल दो!"

माँ ने पूछा—"क्यों, कहाँ जाना है?"

महेन्द्र बोला—"काम है, तुम ला दो, फिर बताऊँगा।"

महेन्द्र थोड़ा सँवरे बिना न रह सका। दूसरे के लिए ही क्यों न हो, लड़की का मसला जवानी में सभी से थोड़ा साज-सँवार करा ही लेता है।

दोनों दोस्त लड़की देखने निकल पड़े।

लड़की के बड़े चाचा अनुकूल बाबू ने अपनी कमाई से अपना बाग वाला तिमंजिला मकान मुहल्ले में सबसे ऊँचा बना रखा है।

गरीब भाई की माँ-बाप-विहीना बेटी को उन्होंने अपने ही यहाँ रखा है। उसकी मौसी अन्नपूर्णा ने कहा था, मेरे पास रहने दो। इससे खर्च ज़रूर बच जाता, लेकिन प्रतिष्ठा में बट्टा लगने के डर से अनुकूल बाबू राज़ी न हुए। यहाँ तक कि मुलाकात के लिए भी कभी उसे मौसी के यहाँ नहीं जाने देते थे। अपनी मर्यादा के बारे में इतने ही सख्त थे वे।

लड़की के विवाह की चिन्ता का समय आया। लेकिन इन दिनों विवाह के विषय में 'यादृशी भावना यस्य सिद्धर्भवति तादृशी' वाली बात लागू नहीं होती। चिन्ता के साथ-साथ लागत भी लगती। परन्तु दहेज की बात उठते ही अनुकूल कहते, 'मेरी भी तो अपनी लड़की है, अकेले मुझसे कितना करते बनेगा।' इसी तरह दिन निकलते जा रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों में एक दिन बन-सँवरकर खुशबू बिखेरते हुए अपने दोस्त के साथ महेन्द्र ने रंग-भूमि में प्रवेश किया।

चैत का महीना। सूरज डूब रहा था। दुमंज़िले का दक्षिणी बरामदा चिकने चीनी टाइलों का बना, उसी के एक ओर दोनों मेहमानों के लिए फल-फूल, मिठाई से भरी चाँदी की तश्तरियाँ रखी गयीं। बर्फ के पानी-भरे गिलास जैसे ओस-बूँदों से झिलमिल। बिहारी के साथ महेन्द्र सकुचाते हुए खाने बैठा। नीचे माली पौधों में पानी डाल रहा था और भीगी मिट्टी की सोंधी सुगन्ध लिये दक्खिनी बयार महेन्द्र की धप-धप धुली चादर के छोर को हैरान कर रही थी। आस-पास के दरवाज़े के झरोखों की ओट से कभी-कभी दबी हँसी और फुसफुसाहट और कभी-कभी गहनों की खनखनाहट सुनाई दे रही थी।

खाना खत्म हो चुका तो अन्दर की तरफ़ देखते हुए अनुकूल बाबू ने कहा— "चुन्नी, पान तो ले आ, बेटी!"

ज़रा देर में संकोच से पीछे का दरवाज़ा खुल गया और सारे संसार की लाज से सिमटी एक लड़की हाथ में पानदान लिये अनुकूल बाबू के पास आकर खड़ी हो गयी। वह बोले, "शर्म काहे की बिटिया, पानदान उनके सामने रखो!"

उसने झुककर काँपते हुए हाथों से मेहमानों के सामने पानदान रख दिया। बरामदे के पश्चिमी छोर से डूबते हुए सूरज की आभा उसके लज्जित मुखड़े को मंडित कर गयी और ठीक उसी वक्त महेन्द्र ने उस काँपती हुई लड़की के करुण मुख की छवि देख ली।

बालिका जाने लगी। अनुकूल बाबू बोले—"ज़रा ठहर जा, चुन्नी! बिहारी बाबू, यह है छोटे भाई अपूर्व की लड़की। अपूर्व तो चल बसा, अब मेरे सिवा इसका कोई नहीं।"

और उन्होंने एक लम्बी उसाँस ली।

महेन्द्र का मन पसीज गया। उसने एक बार फिर लड़की की तरफ़ देखा।

उसकी उम्र साफ़-साफ़ कोई न बता पाता। सगे-सम्बन्धी कहते, बारह-तेरह होगी। यानी चौदह-पन्द्रह होने की सम्भावना ही ज़्यादा थी। लेकिन चूँकि दया पर चल रही थी,

इसलिए उसके दबे-दबे जीवन और संकोची स्वभाव ने उसके नवयौवन की वल्गाओं को थाम रखा था।

महेन्द्र ने पूछा—"तुम्हारा नाम?"

अनुकूल बाबू ने उत्साह दिया—"बता बेटी, अपना नाम बता!"

अपने अभ्यस्त आदेश-पालन के ढंग से झुककर उसने कहा—"जी, मेरा नाम आशालता है।"

आशा! महेन्द्र को लगा, नाम बड़ा ही करुण और स्वर बड़ा कोमल है।

दोनों मित्रों ने बाहर सड़क पर आकर गाड़ी छोड़ दी। महेन्द्र बोला—"बिहारी, इस लड़की को तुम हर्गिज़ मत छोड़ो?"

बिहारी ने इसका कुछ सीधा जवाब न दे कर, कहा,—"इसे देखकर इसकी मौसी याद आ जाती है। ऐसी ही भली होगी शायद!"

महेन्द्र ने कहा—"जो बोझ तुम्हारे कन्धे पर लाद दिया, अब वह शायद वैसा भारी नहीं लग रहा है।"

बिहारी ने कहा—"नहीं, लगता है ढो लूँगा।"

महेन्द्र बोला—"इतनी तकलीफ उठाने की क्या ज़रूरत है? तुम्हें बोझा लग रहा हो तो मैं उठा लूँ।"

बिहारी ने गम्भीर होकर महेन्द्र की तरफ़ ताका। बोला—"सच? अब भी ठीक-ठीक बता दो! अगर तुम शादी कर लो तो चाची कहीं ज़्यादा खुश होंगी—उन्हें हमेशा इसे अपने पास रखने का मौका भी मिलेगा।"

महेन्द्र बोला—"पागल हो तुम! यह होना होता तो कब का हो जाता।"

बिहारी ने कोई एतराज़ न किया। चला गया और महेन्द्र भी यहाँ-वहाँ भटककर घर पहुँच गया।

माँ पूरियाँ निकाल रही थीं। चाची तब तक अपनी भानजी के पास से लौटकर नहीं आई थीं।

महेन्द्र अकेला सूनी छत पर गया और चटाई बिछाकर लेट गया। कलकत्ता की ऊँची अट्टालिकाओं के शिखरों पर शुक्ल सप्तमी का आधा चाँद टहल रहा था। माँ ने खाने के लिए बुलाया, तो महेन्द्र ने अलसाई आवाज़ में कहा—"छोड़ो, अब उठने को जी नहीं चाहता।"

माँ ने कहा—"तो यहीं ले आऊँ?"

महेन्द्र बोला—"आज नहीं खाऊँगा। मैं खाकर आया हूँ।"

माँ ने पूछा—"कहाँ खाने गया था?"

महेन्द्र बोला—"बाद में बताऊँगा।"

वह लौटने लगीं तो थोड़ा सोचते हुए महेन्द्र ने कहा—"माँ! खाना यहीं ले आओ।"

"लेकिन अगर भूख नहीं है तो ज़बर्दस्ती खाने की क्या ज़रूरत है?" उसकी माँ ने सूखा सवाल किया।

काफ़ी मान-मनौवल और माँ-बेटे के बीच रूठने-मनाने के दौर के बाद महेन्द्र खाने बैठा।

3

उस रात महेन्द्र को ठीक से नींद नहीं आयी। सुबह-सवेरे ही वह बिहारी के घर पहुँच गया। बोला—"भई बिहारी, मैंने बहुत ध्यान से सोचा है और देखा—कि चाची यही चाहती हैं कि शादी मैं ही करूँ।"

बिहारी बोला—"इसके लिए सोचने की ज़रूरत नहीं थी। यह बात तो वह खुद कई बार कह चुकी हैं।"

महेन्द्र बोला—"तभी तो कहता हूँ, मैंने आशा से विवाह न किया तो उन्हें काफ़ी दुःख होगा।"

बिहारी बोला—"हो सकता है!"

महेन्द्र ने कहा, "मेरा खयाल है, यह तो ज़्यादती होगी।"

"हाँ! बात तो ठीक है।" बिहारी ने कहा—"यह बात थोड़ी देर से तुम्हारी समझ में आई। कल आ जाती तो अच्छा होता।"

महेन्द्र—"एक दिन बाद ही आयी, तो क्या बुरा हो गया।"

विवाह की बात पर मन की लगाम को छोड़ना था कि महेन्द्र के लिए धीरज रखना कठिन हो गया। उसके मन में आया—इस बारे में बात करने का तो कोई अर्थ नहीं है। शादी हो ही जानी चाहिए।

उसने माँ से कहा—"अच्छा माँ, तुम चाहती हो तो मैं विवाह करने के लिए राज़ी हूँ।"

माँ ने मन-ही-मन कहा—अब समझी कि उस दिन अचानक क्यों मँझली बहू अपनी भानजी को देखने चली गयी। और क्यों महेन्द्र बन-ठनकर घर से निकला।

उनके अनुरोध की बार-बार उपेक्षा होती रही और अन्नपूर्णा की साज़िश कारगर हो गयी, इस बात से वे नाराज़ हो उठीं। कहा—"अच्छा, मैं तेरे लिए अच्छी-सी लड़की को देखती हूँ।"

आशा का जिक्र करते हुए महेन्द्र ने कहा—"लड़की तो मिल गयी।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"उस लड़की से विवाह नहीं हो सकता, यह मैं कहे देती हूँ।"

महेन्द्र ने बड़े संयत शब्दों में कहा—"क्यों माँ, लड़की बुरी तो नहीं है।"

राजलक्ष्मी—"उसके तीनों कुल में कोई नहीं। ऐसी लड़की से विवाह होने पर कुटुम्ब का सुख भी न मिल सकेगा।"

महेन्द्र—"कुटुम्ब का सुख मिले न मिले, लड़की मुझे खूब पसन्द है। उससे शादी न हुई तो मैं दुःखी हो जाऊँगा।"

लड़के की ज़िद से राजलक्ष्मी और सख्त हो गयीं। वे अन्नपूर्णा से जा भिड़ीं—"एक अनाथ से विवाह कराकर तुम मेरे लड़के को फँसा रही हो। यह नावाजिब हरकत है।"

अन्नपूर्णा रो पड़ीं—"उससे तो शादी की कोई बात ही नहीं हुई, उसने तुम्हें क्या कहा, इसकी मुझे ज़रा भी खबर नहीं।"

राजलक्ष्मी इसका रत्ती-भर यकीन न कर सकीं।

अन्नपूर्णा ने बिहारी को बुलवाया और आँसू भरकर कहा—"तय तो सब तुमसे हुआ था, फिर तुमने पासा क्यों पलट दिया? मैं कहे देती हूँ शादी तो तुम्हें ही करनी पड़ेगी। यह बेड़ा तुम न पार करोगे तो मुझे बड़ी शर्मिन्दगी उठानी होगी। वैसे लड़की अच्छी है।"

बिहारी ने कहा—"चाची, तुम्हारी बात मंजूर है। वह तुम्हारी भानजी है, फिर मेरे 'ना' करने की कोई बात ही नहीं। लेकिन महेन्द्र..."

अन्नपूर्णा बोलीं—"नहीं-नहीं बेटे, महेन्द्र से उसका विवाह किसी भी हालत में न होगा। यकीन मानो, तुमसे विवाह हो, तभी मैं ज़्यादा निश्चिन्त हो सकूँगी। महेन्द्र से रिश्ता हो यह मैं चाहती भी नहीं।"

बिहारी बोला—"तुम्हीं नहीं चाहतीं तो कोई बात नहीं।"

और वह राजलक्ष्मी के पास जाकर बोला—"माँ, चाची की भानजी से मेरी शादी पक्की हो गयी। सगे-सम्बन्धियों में तो कोई महिला है नहीं, इसलिए मैं ही खबर देने आया हूँ।"

राजलक्ष्मी—"अच्छा! बड़ी खुशी हुई बिहारी यह सुनकर। लड़की बड़ी भली है। तेरे लायक। इसे हाथ से जाने मत देना!"

बिहारी—"हाथ से बाहर होने का सवाल ही क्या! खुद महेन्द्र भैया ने लड़की पसन्द करके रिश्ता पक्का किया है।"

इन नयी रुकावटों से महेन्द्र और भी उत्तेजित हो गया। माँ और चाची से नाराज़ होकर वह मामूली-से छात्रावास में जाकर रहने लगा।

राजलक्ष्मी रोती हुई अन्नपूर्णा के कमरे में पहुँचीं और हताश भाव से कहा—"मँझली बहू, लगता है, उदास होकर महेन्द्र ने घर छोड़ दिया, उसे बचाओ!"

अन्नपूर्णा बोलीं—"दीदी, धीरज रखो, दो दिन के बाद गुस्सा उतर जाएगा।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"तुम उसे जानती नहीं बहन, वह जो चाहता है, न मिले तो कुछ भी कर सकता है। जैसे भी हो, अपनी बहन की लड़की से...."

अन्नपूर्णा—"भला यह कैसे होगा दीदी, बिहारी से बात लगभग पक्की हो चुकी।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"हो चुकी, तो क्या? टूटने में देर कितनी लगती है?"

और उन्होंने बिहारी को बुलवाया। कहा—"तुम्हारे लिए मैं दूसरी लड़की ढूँढ देती हूँ —मगर इससे तुम्हें बाज आना पड़ेगा।"

बिहारी बोला—"नहीं माँ, यह नहीं होगा। सब तय हो चुका है।"

राजलक्ष्मी फिर अन्नपूर्णा के पास गयीं। बोलीं—"मेरे सिर की कसम मँझली, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ...तुम्हीं बिहारी से कहो! तुम कहोगी तो बिगड़ी बन जाएगी।"

आखिर अन्नपूर्णा ने बिहारी से कहा—"बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुँह नहीं है, मगर लाचारी है क्या करूँ। आशा को तुम्हें सौंपकर ही मैं निश्चिन्त होती, मगर क्या बताऊँ, सब तो तुम्हें पता है ही।"

बिहारी—"समझ गया। तुम जो हुक्म करोगी, वही होगा। लेकिन फिर कभी किसी से विवाह करने का मुझसे आग्रह मत करना!"

बिहारी चला गया। अन्नपूर्णा की आँखें छलछला गयीं। महेन्द्र का अमंगल न हो, इस आशंका से उन्होंने आँखें पोंछ लीं। बार-बार ख़ुद को दिलासा दी—"जो हुआ, अच्छा ही हुआ।"

और इस तरह राजलक्ष्मी-अन्नपूर्णा-महेन्द्र के बीच तनाव और खिट-खिट के बीच आखिर विवाह का दिन आया। रोशनी हँसती हुई जली, शहनाई उतनी ही मधुर बजी जितनी वह बजा करती है। अवसर में कोई कमी नहीं थी।

सज-सँवरकर लज्जित और मुग्ध-मन आशा अपनी नई दुनिया में पहली बार आई। उसके कंपित कोमल हृदय को पता ही न चला कि उसके इस बसेरे में कहीं काँटा है। बल्कि यह सोचकर भरोसे और आनन्द से उसके सारे ही संदेह जाते रहे कि इस दुनिया में एकमात्र माँ—जैसी अपनी मौसी के पास जा रही है।

विवाह के कुछ दिन बाद राजलक्ष्मी ने महेन्द्र से कहा—"मैं कहती हूँ, अभी कुछ दिन बहू अपने बड़े चाचा के घर ही रहे।"

महेन्द्र ने पूछा—"ऐसा क्यों, माँ?"

माँ ने कहा—"तुम्हारा इम्तहान है। पढ़ाई-लिखाई में रुकावट पड़ सकती है।"

महेन्द्र बोला—"आखिर मैं कोई नन्हा-नादान हूँ। अपने भले-बुरे की समझ नहीं मुझे?"

राजलक्ष्मी—"जो हो, साल-भर की ही तो बात है।"

महेन्द्र ने कहा—"इसके माँ-बाप रहे होते, तो मुझे कोई एतराज न होता लेकिन चाचा के यहाँ इसे मैं नहीं छोड़ सकता।"

तो यह है मामला—राजलक्ष्मी ने सोचा—अब पति ही सब कुछ है, सास कुछ भी नहीं! कल शादी और आज ही इतनी हमदर्दी! आखिर हमारी भी तो शादी हुई थी। मगर तब ऐसी बेहयाई न थी।"

महेन्द्र ने मजबूती से अपनी माँ को तसल्ली दी—"तुम बिल्कुल मत चिन्ता करो, माँ! इम्तहान की तैयारी में कोई फर्क नहीं पड़ेगा।"

4

राजलक्ष्मी ने बहू को बेटे से दूर रखने के लिए अपनी युक्तियाँ भिड़ायीं। वे असीम उत्साह से बहू को गृहस्थी के काम-काज सिखाने में जुट गयीं। आशा के दिन भण्डार, रसोई और पूजा-घर में कटने लगे। रात को अपने साथ सुलाकर अपनों से दूर हो जाने के उसके बिछोह की कमी को पूरा करने लगीं।

काफ़ी सोच-समझकर अन्नपूर्णा आशा से दूर ही रहा करतीं। कोई अभिभावक जब खुद सारी ईख का रस चूसने लगता है, तब निराश बच्चे की रंज़िश कम नहीं होती। महेन्द्र की हालत भी ऐसी ही हो गयी। उसकी आँखों के सामने ही नवयुवती वधू का सारा मीठा रस गृहस्थी के कामों में निचुड़ता रहे, यह भला वह कैसे सह सकता था।

अन्नपूर्णा जानती थीं कि राजलक्ष्मी ज़्यादती कर रही हैं। फिर भी उन्होंने कहा —"क्यों बेटे, बहू को गृहस्थी के धन्धे सिखाए जा रहे हैं; अच्छा ही तो है। आजकल की लड़कियों की तरह उपन्यास पढ़ना और बेकार कढ़ाई-बुनाई करते रहना क्या अच्छा है?"

महेन्द्र उत्तेजित होकर बोला—"आजकल की लड़कियाँ आजकल की लड़कियों की तरह ही रहेंगी। वे चाहे भली हों, चाहे बुरी। मेरी स्त्री अगर मेरी ही तरह उपन्यास पढ़कर रस ले सके तो इसमें क्या बुरी बात है। यह न तो परिहास की बात है न पछतावे की।"

अन्नपूर्णा के कमरे में बेटे की आवाज़ सुनकर राजलक्ष्मी सब छोड़कर आ गयीं। रूखे स्वर में बोलीं—"क्या मंसूबे बनाए जा रहे हैं?"

महेन्द्र ने वैसे ही उत्तेजित भाव से कहा, "मंसूबे क्या होंगे, बहू को घर में नौकरानी की तरह काम मैं न करने दूँगा।"

माँ ने अपनी तीखी जलन को दबाकर बड़े ही तीखे धीर भाव से कहा—"आखिर उससे क्या कराना होगा?"

महेन्द्र बोला—"मैं उसे लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा।"

राजलक्ष्मी ने कुछ नहीं कहा। तेज़ी से कदम बढ़ाती हुई चली गयीं और बहू का हाथ पकड़कर खींचती हुई महेन्द्र के पास लाकर बोलीं—"यह रही तुम्हारी बहू, सिखाओ लिखना-पढ़ना!"

और अन्नपूर्णा की तरफ़ पलटकर गले में अँचरा डालकर कहा—"माफ़ करो मँझली बहू, माफ़ करो! तुम्हारी भानजी की मान-मर्यादा मेरी समझ में नहीं आयी थी। मैंने इसके कोमल हाथों में हल्दी लगाई है। अब तुम इसे धो-पोंछकर परी बनाकर रखो—महेन्द्र को

सौंपो—यह आराम से लिखना-पढ़ना सीखे, नौकरानी का काम मैं करूँगी।"

राजलक्ष्मी अपने कमरे में चली गयीं और दरवाज़ा जोर से बन्द कर लिया।

क्षोभ से अन्नपूर्णा ज़मीन पर बैठ गयीं। अचानक यह क्या हो गया, आशा के पल्ले नहीं पड़ा कि माजरा क्या है? महेन्द्र नाराज़ हो गया। मन-ही-मन बोला—"जो हुआ सो हुआ, अब से अपनी स्त्री का भार अपने हाथों में लेना पड़ेगा, नहीं तो उस बेचारी पर नाहक जुल्म होगा।"

मन और कर्तव्य-बोध दोनों मिल जाएँ तो अच्छा लगता है। पत्नी की उन्नति के चक्कर में महेन्द्र रम गया। न तो उसे काम का ध्यान रहा, न लोगों की परवाह।

घमण्डी राजलक्ष्मी ने अपने-आप कहा—'अब अगर महेन्द्र बहू को लेकर मेरे दरवाज़े पर सिर पीटकर जान दे दे तो भी मैं मुड़कर नहीं देखूँगी। देखती हूँ, माँ को छोड़कर पत्नी के साथ कैसे रहेगा?'

दिन बीतने लगे। राजलक्ष्मी के दरवाज़े पर किसी के पछतावे-भरे पाँवों की आहट न सुनाई पड़ी।

राजलक्ष्मी ने अपने मन में तय किया—'ठीक है, अगर माफ़ी माँगने आएगा तो माफ़ कर दूँगी, नहीं तो कहाँ जाएगा। बहुत दुःखी हो जाएगा बेचारा। लेकिन माफ़ी कोई माँगे तभी तो आप माफ़ कर सकते हैं।

कोई माफ़ी के लिए दहलीज पर आया ही नहीं। राजलक्ष्मी ने सोचा कि मैं ही जाकर उसे क्षमा कर आऊँगी। बेटा रूठ गया है तो क्या माँ भी रूठी रहे?

तिमंज़िले पर एक कोने के छोटे-से कमरे में महेन्द्र सोया करता था, वही उसकी पढ़ने की जगह भी थी। इधर कई दिनों से माँ ने उसके कपड़े सहेजने, बिस्तर बिछाने, झाड़ने-बुहारने में जान-बूझ कर कोई दिलचस्पी नहीं ली। माँ की हैसियत से जिन कर्तव्यों को प्यार के साथ निभाने की वे आदी थीं, उन कामों को बहुत दिनों तक न करने से वे दुःखी हो गयीं। उस दिन दोपहर को एकाएक उनके मन में आया, 'अभी महेन्द्र कॉलेज गया होगा, इसी बीच उसका कमरा ठीक कर आऊँ, लौटकर वह समझ जाएगा कि कमरे में माँ का हाथ लगा है।'

राजलक्ष्मी सीढ़ियों से ऊपर गयीं। महेन्द्र के कमरे में दरवाज़े का एक पल्ला खुला था। सामने जाते ही मानो काँटा चुभ गया। चौंककर ठिठक गयीं। देखा, फ़र्श पर महेन्द्र लेटा है और दरवाज़े की तरफ़ पीठ किए बहू धीरे-धीरे उसके पाँव सहला रही है। दोपहर की तेज़ रोशनी में खुले कमरे में यह दाम्पत्य-लीला देखकर राजलक्ष्मी शर्म और जुगुप्सा से सिमट गयीं और चुपचाप नीचे उतर आयीं।

5

कुछ दिन पानी न पड़ने पर खेत की फसल सूख कर जिस तरह पीली पड़ जाती है और फिर बारिश के आने पर फौरन लहलहा कर बढ़ने लगती है, ऐसा ही आशा के साथ हुआ। जहाँ उसका रक्त-सम्बन्ध था, वहाँ वह कभी आत्मीयता का दावा न कर सकी थी। अब पराये घर में आ कर जब उसे बिन माँगे अधिकार मिला तो फिर उसने उसे लेने में देर नहीं की। जब उसके पति ने एक अनाथ के सिर पर मुकुट रख दिया तो उसने इस प्रतिष्ठा को हाथ में लेने में देर नहीं की। नयी बहू की सारी लाज-शर्म और संकोच त्याग कर वह उस सिंहासन पर जा बैठी जो उसके पति ने उसके लिए स्थापित कर दिया था।

उस निर्णायक दुपहरी को जब राजलक्ष्मी ने पराये घर से आयी उस नयी बहू को इस तरह साधिकार सिंहासन पर आसीन देखा मानो वह उसका जन्मसिद्ध पावना था तो वह जुगुप्सा से भर कर नीचे उतर आयीं। फिर अपने मन की जलन से अन्नपूर्णा को भी जलाने के लिए वे उनके कमरे में जा पहुँचीं। शब्दों की बौछार करते हुए उन्होंने कहा —"अरी ओ मँझली, जा कर देखो तुम्हारी नवाबजादी अपने नवाबी घर से कैसा पाठ पढ़ कर आयी है। आज अगर घर के बड़े-बूढ़े होते तो..."

अन्नपूर्णा ने कातर होकर कहा—"दीदी, अपनी बहू को तुम शिक्षा दो, या हुकूमत चलाओ मुझे क्या? मुझसे क्यों कह रही हो।"

राजलक्ष्मी धनुष की तनी डोरी-सी टंकार उठीं—"हूँ, मेरी बहू! जब तक तुम जैसी मन्त्राणी हो, वह मुझे कैसे मान सकती है!"

यह सुनकर अन्नपूर्णा पैर पटकती हुई महेन्द्र के कमरे में पहुँच गयीं। आशा से बोलीं —"तू इस तरह से मेरा सिर नीचा करेगी री, मुँहजली! शर्म नहीं, हया नहीं, समय-असमय का खयाल नहीं, बूढ़ी सास पर सारा गृहस्थी का बोझ डालकर तुम यहाँ आराम फरमा रही हो? मेरा ही नसीब जला कि मैं तुझे इस घर में ले आई।"

कहते-कहते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और आशा भी सिर झुकाए आँचल के छोर को नाखून से नोंचती हुई चुपचाप रोने लगी।

महेन्द्र ने कहा, "काकी माँ, तुम बहू को क्यों बेकार में डाँट रही हो। इसे मैंने ही रोक रखा था।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"सो क्या तुमने कोई अच्छा काम किया, बेटा? अभी यह एक अनाथ लड़की है, जिसे कभी माँ नसीब नहीं हुई जो इसे सिखाती। इसे सही-गलत का क्या पता? तुम इसे क्या सिखा रहे हो?"

महेन्द्र ने कहा—"यह देखो, इसके लिए मैं स्लेट, बही, किताब सब खरीद लाया हूँ। इसे मैं लिखना-पढ़ना सिखाऊँगा, चाहे लोग मेरी निन्दा करें।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"ठीक है, लेकिन यह क्या तमाम दिन चलेगा? शम के बाद घण्टा-आधा घण्टा पढ़ लिया बस! घण्टा-आधा घण्टा पढ़ना ही तो काफ़ी होगा।"

महेन्द्र—"इतना आसान नहीं है चाची, पढ़ने-लिखने में समय लगता है।"

अन्नपूर्णा खीझकर चली गयीं। आशा भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। महेन्द्र दरवाज़ा रोककर खड़ा हो गया—उसने आशा की गीली आँखों की विनती न मानी।

वैसे आशा को खुद नहीं लगता कि लिखना-पढ़ना ज़रूरी है फिर भी वह अपने पति की खातिर किताबों पर एकबारगी झुककर सिर हिलाती हुई बताई चीज़ें याद करती रहती। कमरे के कोने में छोटी-सी मेज़ पर डॉक्टरी की किताब खोले मास्टर साहब कुर्सी पर बैठे होते, बीच-बीच में कनखियों से छात्र को देखते रहते। अचानक अपनी किताब बन्द करके आवाज़ देते—"चुन्नी, इधर आओ!" यह आशा का ही घरेलू नाम था।

इस तरह के बुलावे आशा को घबरा देते। अपने अध्यापक के बुलाने पर इस बार भी चौंककर आशा ने उधर देखा। वह बोला, "ज़रा लाओ तो किताब देखूँ, कहाँ पढ़ रही हो? आशा को लगा जाँच होगी और उसमें पास होने की उम्मीद कम ही थी। आगे-आगे पाठ और पीछे सपाट कुछ यही हाल था। एक हाथ से उसकी कमर को कसकर लपेटकर दूसरे हाथ से किताब पकड़कर महेन्द्र ने पूछा—"आज कितना पढ़ गयीं—देखूँ तो।"

जितनी पंक्तियों पर वह सरसरी निगाह फेर गयी थी, दिखा दिया। महेन्द्र ने अचरज से कहा—"ओह, इतना पढ़ गयीं! मैंने कितना पढ़ा, बताऊँ?"

और अपनी किताब के किसी अध्याय का शीर्षक-भर दिखा दिया। अचरज से आँखें बड़ी-बड़ी करके आशा ने पूछा—"तो इतनी देर से कर क्या रहे थे?"

उसकी ठोढ़ी पकड़कर महेन्द्र ने कहा—"मैं किसी के बारे में सोच रहा था; और जिसके बारे में सोच रहा था, वह दीमक का वर्णन पढ़ने में मशगूल थी!"

इस बे-वजह शिकायत का सटीक जवाब आशा न दे सकी, लेकिन गैरबराबरी की प्रतियोगिता में झूठी हार मान लेनी पड़ती है।

ऐसे ही एक रोज़ महेन्द्र मौजूद नहीं था। मौका पाकर आशा पढ़ने बैठ गयी कि अचानक कहीं से आकर उसने आँखें मींच लीं और किताब छीनकर कहने लगा, "बेरहम, मैं नहीं होता हूँ तो तुम मेरे बारे में सोचती तक नहीं। किताबों में डूब जाती हो!"

आशा ने कहा—"तुम मुझे गँवार बनाए रखोगे?"

महेन्द्र ने कहा—"तुम्हारी कृपा से अपनी ही विद्या कौन आगे बढ़ रही है!" बात आशा को लग गयी। फौरन चल देने का उपक्रम करती बोली—"मैंने तुम्हारी पढ़ाई में ऐसी कौन-सी रुकावट डाली है?"

उसका हाथ थामकर महेन्द्र ने कहा—"यह तुम नहीं समझोगी? मुझे भूल कर तुम जितनी आसानी से पढ़-लिख लेती हो, तुम्हें भूलकर उतनी आसानी से मैं नहीं पढ़-लिख पाता।"

शिक्षक ही जब शिक्षा की सबसे बड़ी बाधा हो तो छात्र की क्या मजाल कि विद्या के

वन में राह बनाकर चल सके। कभी-कभी मौसी की झिड़की याद आती और चित्त विचलित हो जाता। सास को देखकर शर्म से गड़ जाती, लेकिन सास उसे किसी काम को न कहतीं। अपने मन से उनकी मदद करना चाहती तो वे पढ़ाई के हर्जे की बात कहकर वापस भेज देतीं।

आखिर अन्नपूर्णा ने आशा से कहा—"तुम्हारी जो पढ़ाई चल रही है, वह तो मैं देख ही रही हूँ, महेन्द्र को क्या डॉक्टरी का इम्तहान न देने दोगी?"

यह सुनकर आशा ने अपने जी को कड़ा किया। महेन्द्र से कहा—"तुम्हारे इम्तहान की तैयारी नहीं हो पा रही है। आज से मैं नीचे मौसी के कमरे में रहा करूँगी।"

इस उम्र में ऐसा कठोर संन्यास-व्रत! सोने के कमरे से एकबारगी मौसी के कमरे में निर्वासन! ऐसी कठोर प्रतिज्ञा करते हुए क्या उसकी आँखों के कोनों में आँसू झलक पड़े, बेबस होंठ काँप उठे और गला रुँध गया?

महेन्द्र बोला—"बेहतर है, चाची के कमरे में ही चलो! मगर तब उन्हें हमारे कमरे में ऊपर आना पड़ेगा।"

उसका गम्भीर प्रस्ताव मज़ाक बन गया, इससे आशा नाराज़ हुई। महेन्द्र ने एक और विचार प्रकट किया—"इससे तो अच्छा है कि तुम रात-दिन मुझे आँखों-आँखों में रखो और निगरानी करो! फिर देखो कि मेरी इम्तहान की पढ़ाई चलती है कि नहीं।"

6

एक दिन बारिश हो रही थी। बादल घिरे थे और वर्षा ऋतु के आगमन की सूचना दे रहे थे। ऐसे में बदन पर एक सुवासित महीन चादर और जुही की माला गले में डाले महेन्द्र मगन-मन अपने सोने के कमरे में पहुँचा। अचानक आशा को चौंका देने के विचार से—जूतों की आवाज़ न होने दी। झाँककर देखा, पूरब की खुली खिड़की से पानी की बौछार के साथ हवा के तीखे झोंके कमरे में आ रहे हैं, दीया बुझ गया है और आशा नीचे बिछावन पर पड़ी रो रही है।

महेन्द्र जल्दी से उसके करीब गया और पूछा—"क्या बात है?"

वह दूने आवेग से रोने लगी। बड़ी देर के बाद महेन्द्र को जवाब मिला कि "मौसी से और बर्दाश्त न हो सका। वे अपने फुफेरे भाई के यहाँ चली गयीं।"

महेन्द्र के मन में आया, 'गयीं तो गयीं, लेकिन बदली की ऐसी सुहानी साँझ को खराब कर गयीं।'

अन्त में सारा गुस्सा माँ पर आया। वही तो इन सारे अनर्थों की जड़ है।

महेन्द्र ने कहा—"हम भी वहीं चले जाएँगे, जहाँ चाची गयी हैं। देखते हैं, माँ किससे झगड़ती हैं?"

और उसने खूब शोर-गुल के साथ असबाब बाँधना और उसे ले जाने के लिए कुली-मजदूरों को बुलाना शुरू कर दिया।

राजलक्ष्मी समझ गयीं। धीरे-धीरे महेन्द्र के पास आयीं। शान्त स्वर में पूछा—'कहाँ जा रहा है तू?"

महेन्द्र ने पहले कोई जवाब ही न दिया। दो-तीन बार पूछे जाने पर बताया—"चाची के पास।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"अरे तो मैं ही उसे यहाँ बुला देती हूँ।"

राजलक्ष्मी उसी समय पालकी पर सवार होकर अन्नपूर्णा को लिवाने उनके घर गयीं। गले में आँचल डालकर हाथ जोड़ते हुए कहा—"खुश हो मँझली बहू, मुझे माफ़ करो!"

अन्नपूर्णा ने जल्दी-जल्दी उनके पैरों की धूल ली। कातर स्वर में कहा— "दीदी, मुझे दोषी क्यों बना रहीं? तुम जैसा हुक्म दोगी, वैसा ही करूँगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"तुम चली आई हो, तो मेरे बेटा-पतोहू भी घर छोड़कर यहीं आ रहे हैं।"

कहते-कहते वे रो पड़ीं।

जिठानी-देवरानी दोनों घर लौट आयीं। तब भी वर्षा हो रही थी। अन्नपूर्णा जब महेन्द्र के कमरे में पहुँचीं, आशा का रोना थम चुका था। महेन्द्र बातों से उसे हँसाने की कोशिश कर रहा था। आसार थे कि बदलियाँ यूँ ही नहीं गुजर जाएँगी।

अन्नपूर्णा ने कहा—"चुन्नी, तू मुझे घर में भी न रहने देगी और कहीं जाऊँ तो भी पीछे लग जाएगी। क्या मेरे लिए कहीं चैन नहीं!"

आशा चौंक पड़ी।

महेन्द्र बड़ा ही खीझकर बोला—"क्यों चाची, चुन्नी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"बहू की ऐसी बेहयाई बर्दाश्त न हो सकी तभी यहाँ से चली गयी थी। फिर अपनी सास को रुलाकर मुँहजली ने मुझे क्यों बुलवाया?"

जीवन के अध्याय में माँ-चाची ऐसी विघ्नकारिणी होती हैं, महेन्द्र को इसका पता न था।

दूसरे दिन राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलवाकर कहा—"बेटा बिहारी, तुम एक बार महेन्द्र से पूछ देखो, मैं जमाने से गाँव नहीं गई। मैं एक बार बारासत जाना चाहती हूँ।"

बिहारी ने कहा—"जमाने से नहीं गयीं तो क्या हुआ? खैर, मैं पूछ देखता हूँ। मगर वह राज़ी भी होगा, ऐसा नहीं लगता।"

महेन्द्र ने कहा—"जन्म-भूमि को देखने की इच्छा ज़रूर होती है। लेकिन माँ का वहाँ ज़्यादा दिन न रहना ही अच्छा होगा। बरसात के मौसम में वह जगह अच्छी नहीं।"

महेन्द्र बड़ी आसानी से राज़ी हो गया, इससे बिहारी कुढ़ गया। बोला—"माँ अकेली जाएँगी, वहाँ उनकी देख-भाल कौन करेगा? भाभी को भी साथ भेज दो न?"

कहकर बिहारी हँसा।

बिहारी के इस गहरे व्यंग्य से कुण्ठित होकर महेन्द्र ने कहा—"मेरे लिए इसमें कोई मुश्किल है क्या?"

मगर बात इससे आगे न बढ़ी।

बिहारी इसी तरह आशा के मन को विमुख कर दिया करता और यह जानकर कि आशा इससे कुढ़ती है, उसे मज़ा आता।

कहना बेकार होगा, राजलक्ष्मी जन्म-भूमि के दर्शन के लिए उतनी बेताब न थीं। गर्मी के दिनों में जब नदी का पानी सूख जाता है, तो मल्लाह कदम-कदम पर लग्गी से थाह लेता है कि कहाँ कितना पानी है। राजलक्ष्मी भी इसी तरह माँ-बेटे के रिश्तों की प्रगाढ़ता की थाह ले रही थीं। उन्होंने सोचा न था कि उनके बारासत जाने का प्रस्ताव इतनी जल्दी मंजूर हो जाएगा। उन्होंने सोचा, 'अन्नपूर्णा और मेरे घर से बाहर जाने में कितना फर्क है।'

अन्नपूर्णा भीतरी मतलब समझ गयीं। कहने लगीं, "दीदी जाएँगी, तो मैं भी न रह सकूँगी।"

महेन्द्र ने माँ से कहा—"सुन लिया तुमने? तुम जाओगी तो चाची भी जाएँगी।

अपनी गृहस्थी का क्या होगा फिर?"

राजलक्ष्मी विद्वेष के जहर से जर्जर होकर बोलीं—"तुम भी—जा रही हो मँझली? ऐसा कभी हो सकता है? तुम्हारे जाने से काम कैसे चलेगा? नहीं, तुम्हें रहना ही पड़ेगा।"

राजलक्ष्मी अब उतावली हो गयीं। दूसरे दिन दोपहर को ही उन्होंने गाँव जाने की सारी तैयारियाँ कर डालीं। महेन्द्र ही उन्हें पहुँचाने जाएगा, इसमें किसी को भी शुबहा न था। लेकिन रवाना होते वक्त मालूम पड़ा कि महेन्द्र ने माँ के साथ जाने के लिए एक गुमाश्ता और दरबान तय कर रखा है।

बिहारी ने पूछा—"तुम अभी तक तैयार नहीं हुए क्या, भैया?"

महेन्द्र ने लजाकर कहा—"मेरे कॉलेज की..."

बिहारी ने कहा—"खैर, तुम छोड़ दो! माँ को मैं ही छोड़ आता हूँ।"

महेन्द्र मन-ही-मन नाराज़ हुआ। अकेले में आशा से बोला, "सचमुच, बिहारी ने ज़्यादती शुरू कर दी है। वह दिखाना चाहता है कि माँ का खयाल वह मुझसे ज़्यादा रखता है।"

अन्नपूर्णा को पीछे रह जाना पड़ा। लेकिन लाज, कुढ़न और खीझ से वे सिमटी-सी रहीं। चाची का यह दुराव देखकर महेन्द्र नाराज़ हुआ और आशा भी रूठी रही।

7

राजलक्ष्मी अपने मैके पहुँच गयीं। तय था कि उन्हें छोड़कर बिहारी वापस चला जाएगा लेकिन वहाँ की हालत देखकर बिहारी ने फैसला किया कि उसका इतनी जल्दी लौटना सही न होगा। लिहाजा वह बारासत ही में ठहर गया।

राजलक्ष्मी के मैके में महज दो-एक बूढ़ी विधवाएँ थीं। चारों तरफ़ घना बेलगाम जंगल और बाँस की झाड़ियाँ; पोखर के पानी पर काई जमी हुई। दिन-दोपहर में सियारों की 'हूँआ-हूँआ'। इस सबसे राजलक्ष्मी की रूह तड़प उठती।

बिहारी ने कहा—"माँ, जन्म-भूमि यह ज़रूर है, मगर इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' तो हर्गिज़ नहीं कहा जा सकता। तुम्हें यहाँ अकेली छोड़कर लौट जाऊँ तो मुझे पाप लगेगा। मेरा सुझाव है कि हम वापस चलें।"

राजलक्ष्मी के प्राण भी काँप उठे थे। वे बहुत हताश और बेचैन थीं और बिहारी के सुझाव को मानने का इरादा कर रही थीं। ऐसे में अचानक बिनोदिनी आ गयी और उसने सब कुछ सँभाल लिया। बिनोदिनी के बारे में पहले ही कहा जा चुका है। महेन्द्र से, और उसके बाद बिहारी से किसी समय उसके विवाह की बात चली थी। लेकिन इनमें से किसी प्रस्ताव का कोई नतीजा नहीं निकला था। विधना की लिखी भाग्य-लिपि से जिस आदमी से उसका विवाह हुआ वह तिल्ली की सूजन का शिकार था और शादी के बाद जल्दी ही चल बसा था।

उसके बाद से बिनोदिनी घने जंगल से घिरे इस वीराने में अकेली लता-सरीखी, घुट-घुटकर जी रही थी। वही अनाथ बिनोदिनी अपनी फुफिया सास राजलक्ष्मी के पास आई, उन्हें प्रणाम किया और उनके सेवा-जतन में जुट गयी। सेवा इसी का नाम है, घड़ी को आलस नहीं। काम की कैसी सफाई, कितनी अच्छी रसोई, कैसी मीठी बातचीत! राजलक्ष्मी कहतीं—"काफ़ी देर हो चुकी बिटिया, तुम भी थोड़ा-सा खा लो जाकर!"

बिनोदिनी एक न सुनती। पंखा झलते हुए और अपने प्रति बड़ी लापरवाही दिखाती हुई बिनोदिनी कहती—"हमारे जैसे दुःख में पले शरीर में कमज़ोरी की गुंजाइश नहीं। अहा, कितने दिनों के बाद तो अपनी जन्म-भूमि आई हो! यहाँ है भी क्या? काहे से तुम्हारा आदर करूँ!"

बिहारी तो दो ही दिनों में मुहल्ले-भर का बुज़ुर्ग बन बैठा। कोई दवा-दारू के लिए तो कोई मुकदमे के राय-मशविरे के लिए आता; कोई उसकी खुशामद करता कि किसी बड़े दफ्तर में उसके बेटे को नौकरी दिला दे; कोई उससे अपनी दरखास्त लिखवाता। बड़े-बूढ़ों

की बैठकों और ताश-शतरंज की सभाओं से ले कर कुली-मजूरों के ताड़ी के अड्डों तक वह समान रूप से जाता-आता। सभी उसका सम्मान करते।

गँवई-गाँव में आए कलकत्ता के उस नवयुवक के निर्वासन-दण्ड को भी बिनोदिनी अन्तःपुर की ओट में रहते हुए हल्का करने की भरसक कोशिश किया करती। मुहल्ले का चक्कर काटकर जब भी वह आता तो पाता कि किसी ने उसके कमरे को बड़े जतन से सहेज-सँवार दिया है; काँसे के एक गिलास में कुछ फूल-पत्तों का गुच्छा सजा रखा है। और सिरहाने की एक तरफ़ पढ़ने योग्य कुछ किताबें रख दी हैं। किताबों के अन्दर सधी हुई लिखावट में 'बिनोदिनी' नाम लिखा है। अक्षर स्त्रियों जैसे हैं, मगर स्पष्ट और सुन्दर हैं।

गाँवों में अतिथि-सत्कार का जो आम तरीका था, उससे इसमें थोड़ा फर्क था। उसी का जिक्र करते हुए बिहारी जब तारीफ करता, तो राजलक्ष्मी कहतीं—"और ऐसी लड़की को तुम लोगों ने कबूल नहीं किया!"

हँसते हुए बिहारी कहता—"बेशक हमने अच्छा नहीं किया माँ, ठगा गया। मगर एक बात है, विवाह न करके ठगाना बेहतर है, ब्याह करके ठगाता तो मुसीबत थी!"

राजलक्ष्मी के जी में बार-बार यही आता रहा, "यही तो मेरी पतोहू होने योग्य थी। क्यों न हुई भला!"

राजलक्ष्मी कलकत्ता लौटने का जिक्र करतीं कि बिनोदिनी की आँखें छलछला उठतीं। वह कहती—"आखिर तुम दो दिन के लिए क्यों आयीं, बुआ? अब तुम्हें छोड़कर मैं कैसे रहूँगी?"

भावावेश में राजलक्ष्मी कह उठतीं—"तू मेरी बहू क्यों न हुई बेटी, मैं तुझे कलेजे से लगाए रखती।"

सुनकर शर्म से बिनोदिनी किसी बहाने वहाँ से हट जाती।

राजलक्ष्मी कुछ दिनों से इस इन्तजार में थीं कि कलकत्ता से विनीत अनुरोध का कोई पत्र आएगा। महेन्द्र आज तक इतने दिन माँ से अलग कभी न रहा था। माँ के इस लम्बे बिछोह ने निश्चय ही उसके सब्र का बाँध तोड़ दिया होगा। राजलक्ष्मी हर पल बेटे के गिड़गिड़ाहट-भरे पत्र का इन्तजार कर रही थीं।

महेन्द्र का पत्र आया, मगर बिहारी के नाम। लिखा था, 'माँ बहुत दिनों के बाद मैके गयी हैं, लगता है बड़े मज़े में होंगी।'

राजलक्ष्मी ने सोचा, 'महेन्द्र ने रूठकर ऐसा लिखा है। बड़े मज़े में होंगी। महेन्द्र को छोड़कर बदनसीब माँ भला सुख से कैसे रह सकती है?'

"अरे बिहारी, उसके बाद क्या लिखा है उसने, पढ़कर सुना तो ज़रा!"

बिहारी बोला—"और कुछ नहीं लिखा है, माँ!"

और उसने चिट्ठी को मोड़-माड़ एक कॉपी में रखा और कमरे में एक ओर धप्प से पटक दिया।

राजलक्ष्मी अब भला थिर रह सकती थीं! हो न हो, महेन्द्र माँ पर इतना नाराज़ हुआ है कि बिहारी ने पढ़कर सुनाया नहीं।

गाय के थन झटके दे-दे कर बछड़ा जिस तरह दूध और वात्सल्य का संचार करता है, उसी तरह महेन्द्र की नाराज़गी ने आघात पहुँचाकर राजलक्ष्मी के घुटे वात्सल्य को उभार दिया। उन्होंने महेन्द्र को माफ़ कर दिया। बोलीं—"अहा, अपनी बहू को लेकर महेन्द्र सुखी है, रहे—जैसे भी हो, वह सुख से रहे। जो माँ उसे छोड़कर कभी एक पल नहीं रह सकती, वही उसे छोड़कर चली आई है, इसलिए महेन्द्र अपनी माँ से नाराज़ हो गया है।"

रह-रहकर उनकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे।

उस दिन वे बार-बार बिहारी से जाकर कहती रहीं—"बेटे, तुम जाकर नहा लो। यहाँ बड़ी बदपरहेजी हो रही है तुम्हारी।"

बिहारी ने कहा भी कि बदपरहेजी उसके जैसे आदमी की सामान्य विशेषता थी और वैसे भी उसे राजलक्ष्मी का आग्रह बड़ा अजीब लग रहा था। उसने उन्हें मना किया।

लेकिन राजलक्ष्मी अड़ गयीं—"नहीं-नहीं, नहा डालो!"

बार-बार जिद करने से बिहारी नहाने गया। उसका कमरे से बाहर कदम रखना था कि झपटकर राजलक्ष्मी ने वह किताब उठा ली और उसके अन्दर से पत्र को निकाला और बिनोदिनी से कहा कि वह पढ़ कर सुनाये।

पढ़कर बिनोदिनी सुनाने लगी। शुरू में महेन्द्र ने माँ के बारे में लिखा था, लेकिन बड़ा मुख्तसर। बिहारी ने जितना-भर सुनाया, उससे ज़्यादा कुछ नहीं।

उसके बाद आशा और केवल आशा का ज़िक्र था। मौज-मज़े और खुशियों से विभोर होकर लिखा था।

बिनोदिनी ने थोड़ा पढ़ा और फिर शर्म से रुक गयी। कहा—"यह क्या सुनोगी, बुआ!"

राजलक्ष्मी का स्नेह से अकुलाया चेहरा पल-भर में जमकर पत्थर-जैसा सख्त हो गया। ज़रा देर चुप रहीं, फिर बोलीं—"रहने दो!"

और चिट्ठी उन्होंने वापस न ली। चली गयीं।

चिट्ठी लेकर बिनोदिनी को क्या रस मिला, वही जाने। चिट्ठी के साथ वह अपने कमरे में चली गयी और भीतर से किवाड़ बन्द करके बिस्तर पर बैठ कर पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें दोपहर की तपी बालू-सी जलने लगीं—उसकी साँसें रेगिस्तान की बयार-जैसी गर्म हो उठीं।

'कैसा है महेन्द्र, कैसी है आशा और इन दोनों का प्रेम ही कैसा है!' यही बात उसके मन को मथने लगी। पत्र को गोद में डाले, पाँव फैलाए, दीवार से पीठ टिकाकर सामने ताकती वह देर तक सोचती रही।

महेन्द्र की वह चिट्ठी बिहारी को फिर ढूँढे न मिली।

अचानक उसी दिन दोपहर में अन्नपूर्णा आ धमकीं। किसी बुरी खबर की आशंका से राजलक्ष्मी का कलेजा सहसा काँप उठा। कुछ पूछने की उन्हें हिम्मत न हुई। वे फक पड़े चेहरे से अन्नपूर्णा की तरफ़ ताकती रह गयीं।

अन्नपूर्णा ने उनकी चिन्ता दूर करने के खयाल से कहा—"कलकत्ता में सब राजी-

खुशी है।"

राजलक्ष्मी ने पूछा—"फिर तुम यहाँ कैसे?"

अन्नपूर्णा बोलीं—"दीदी, अपनी गृहस्थी तुम खुद जाकर सँभालो। संसार से अपना जी उचट गया है। मैं काशी जाने का तय करके निकली हूँ। तुम्हें प्रणाम करने आ गयी। जाने-अनजाने पता नहीं कितने कसूर हो गए हैं, उन्हें माफ़ करना। और तुम्हारी बहू..." कहते-कहते आँखों से आँसू उफन उठे—"वह नादान बच्ची है, उसकी माँ नहीं। वह दोषी हो चाहे निर्दोष, तुम्हारी है।"

अन्नपूर्णा और न बोल सकीं।

राजलक्ष्मी जल्दी से उनके नहाने-खाने का इन्तजाम करने गयीं। बिहारी को मालूम हुआ तो वह घोष की चौपाल से दौड़ आया। अन्नपूर्णा को प्रणाम करके बोला—"ऐसा भी होता है भला, काकी माँ? हम सबको इस तरह बेरहमी से ठुकराकर तुम चल दोगी?"

आँसू जब्त करके अन्नपूर्णा ने कहा—"मुझे अब रोकने की कोशिश मत करो बिहारी, तुम लोग सुखी रहो, मेरे लिए कुछ रुका न रहेगा।"

बिहारी कुछ क्षण चुप रहा। फिर बोला—"महेन्द्र की किस्मत खोटी है। उसने तुम्हें भी रुखसत कर दिया।"

अन्नपूर्णा चौंककर बोलीं—"ऐसा मत कहो, मैं उस पर बिल्कुल नाराज़ नहीं हूँ। मेरे हटे बिना उनका भला न होगा।"

दूर, शून्य में ताकता हुआ बिहारी चुप बैठा रहा। अपने आँचल से सोने के दो कंगन निकालकर अन्नपूर्णा बोलीं—"बेटे, ये कंगन रख लो! बहू आए तो कहना कि काकी माँ ने आशीर्वाद के साथ इन्हें दिया है। फिर उसे पहना देना!"

कंगन मस्तक से लगाकर आँसू छिपाने के लिए बिहारी बगल के कमरे में चला गया।

विदा होते समय अन्नपूर्णा ने कहा—"बिहारी बेटा, मेरे महेन्द्र और मेरी आशा का ध्यान रखना।"

फिर राजलक्ष्मी के हाथों में उन्होंने एक कागज़ दिया और कहा—"ससुर जी की सम्पत्ति में मेरा जो हिस्सा है, उसे मैंने इस दानपत्र में महेन्द्र के नाम लिख दिया है। बस, तुम मुझे हर महीने पन्द्रह रुपये भिजवा दिया करना।"

इतना कह कर अन्नपूर्णा ने जिठानी के पैरों में सिर झुका कर प्रणाम किया, पाँवों की धूल माथे से लगायी और काशी के लिए विदा हो गयीं।

8

आशा के मन में एक नामालूम और अजीब-सा डर बैठ गया था। यह क्या हो गया था? क्या गड़बड़ी हो गयी थी? पहले उसकी सास चली गयीं, फिर मौसी भी चली गयीं। उनकी सुख-भरी ज़िन्दगी क्या सबको घर से भगाये दे रही थी? एक के बाद एक? क्या अगली बार उसकी बारी थी? इस सूने वीरान घर में उसके सुखी दाम्पत्य की लीलाएँ उसे कितनी बेमेल जान पड़ने लगीं।

रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के काम-काज से अगर प्रेम को फूल की तरह तोड़ कर अलग-थलग कर लिया जाए तो वह सिर्फ़ अपने रस के बल पर खुद को जीवित नहीं रख सकता। धीरे-धीरे मुरझा कर रंग-रूप खो देने लगता है। अपनी और महेन्द्र की स्वर्ग-सरीखी ज़िन्दगी में हर पल जो थकान और कमज़ोरी आने लगी थी, वह आशा के सामने धीरे-धीरे उजागर होने लगी। उनका अटूट मिलन अब बोझिल और बासी जान पड़ने लगा था। प्रेम की जड़ें अगर काम-काज में न हों तो सुख-आनन्द कभी गहरा और स्थायी नहीं होता।

महेन्द्र ने अपने घर की अमंगल-भरी अव्यवस्था और गिरावट के प्रति आँखें-कान बन्द करके अपने दाम्पत्य-प्रेम के जीवन को पहले की तरह ही जारी रखा। लेकिन कभी-कभी आशा के अनमनेपन को लक्ष्य करके वह कहता—"तुम्हें इन दिनों हो क्या गया है, चुन्नी! मौसी चली गयीं तो इस तरह मुँह लटकाए क्या रहती हो? हम दोनों के प्रेम में क्या सभी प्रेम समाए हुए नहीं हैं।"

आशा दुःखी होकर सोचती—'अपने प्रेम में कोई अपूर्णता तो है। मैं तो मौसी की बात सोचा करती हूँ। सास चली गयी हैं, इसका मुझे डर लगता है।'

नियन्त्रण और देख-रेख के अभाव में घर के काम-काज अब ठीक से नहीं चलते। नौकर-चाकर कन्नी काटने लगे। 'तबीयत खराब है' कहकर नौकरानी एक दिन नहीं आई —रसोई पकाने वाला महाराज शराब पीकर गायब हो गया। महेन्द्र ने आशा से कहा —"खूब मज़ा आएगा, आज हम लोग खुद ही रसोई बनायें।"

गाड़ी से महेन्द्र न्यू मार्केट गया। कौन-सी चीज़ कितनी चाहिए, इसका उसे कुछ भी पता न था, बहुत-सा सामान उठाकर खुशी-खुशी घर लौटा। उन चीज़ों का किया क्या जाए, यह आशा भी ठीक से न जानती थी। प्रयोग करने-कराने में ही दिन के दो-तीन बज गए और खाने की बहुत-सी अजीबो-गरीब चीज़ें तैयार करके महेन्द्र को बड़ा मज़ा आया। लेकिन आशा महेन्द्र के उस मज़े में साथ न दे सकी। अपनी नाजानकारी पर उसे मन-ही-मन बड़ी लज्जा और कुढ़न हुई।

कमरे की चीज़ें इस कदर बिखर गयी थीं कि ज़रूरत पर कुछ खोज पाना ही कठिन हो गया था। महेन्द्र की डॉक्टरी वाली छुरी एक दिन तरकारी काटने के काम आई और

कूड़े के ढेर में जा छिपी; जिस पर वह नोट लिखा करता था, वह कॉपी पंखे का काम करके अन्त में रसोई की राख में आराम करने लगी।

इन अनहोनी घटनाओं से महेन्द्र के कौतूहल की सीमा न रही, लेकिन आशा को इससे तकलीफ होने लगी। बेतरतीबी के बहाव में सारी गृहस्थी को बहाकर हँसते हुए उसी के साथ बहते चलना उस बालिका को विभीषिका जैसा लगा।

एक दिन शाम को दोनों बरामदे में बैठे थे। सामने खुली छत। बारिश खुल जाने से कलकत्ता की दूर तक फैली इमारतों की चोटियाँ चाँदनी में नहा रही थीं। बगीचे से मौलसिरी के बहुत-से भीगे हुए फूल लाकर आशा माथा झुकाए माला गूँथ रही थी। महेन्द्र खींचातानी करके, रुकावट डालकर, उल्टा-सीधा सुनाकर नाहक ही झगड़ा करना चाह रहा था। बेवजह इस तरह सताए जाने के कारण आशा उसे झिड़कना चाहती तो किसी बनावटी उपाय से उसका मुँह दबाकर महेन्द्र उसकी आवाज़ को अँकुराते ही कुचल देता।

किसी पड़ोसी के पिंजरे की कोयलिया कूक उठी। महेन्द्र ने उसी दम अपने सिर पर झूलते हुए पिंजरे को देखा। अपनी कोयल पड़ोसी की कोयल की बोली चुपचाप कभी नहीं सह सकती—आज वह चुप क्यों है?

उत्कण्ठित होकर आशा ने कहा—"आज इसे हो क्या गया?"

महेन्द्र ने कहा—"तुम्हारी आवाज़ से लजा गयी है शायद।"

आशा ने निहोरा करके कहा—"मज़ाक नहीं, देखो न, उसे क्या हुआ है?"

महेन्द्र ने पिंजरे को उतारा। पिंजरे पर लिपटे हुए कपड़ों को हटाया। देखा, कोयल मरी पड़ी थी। अन्नपूर्णा के जाने के बाद खानसामा छुट्टी पर चला गया था। कोयल का किसी ने खयाल ही न किया था।

देखते-ही-देखते आशा का चेहरा फीका पड़ गया। उसकी उँगलियाँ हरकत न कर सकीं—फूल यों ही पड़े रह गए। ऐसा नहीं था कि चोट महेन्द्र को न लगी हो, लेकिन नाहक ही रंग में भंग होगा, इसलिए उसने हँसकर इसे टाल जाने की कोशिश की। बोला —"चलो, अच्छा ही हुआ। मैं इधर डॉक्टरी को निकलता और उधर यह कमबख्त 'कुहू-कुहू' करके तुम्हें जलाया करती थी।"

यह कहकर उसने आशा को बाँहों में बाँध कर अपने पास खींच लेना चाहा। लेकिन अपने को धीरे-धीरे उसके बन्धन से छुड़ाकर आशा ने आँचल से मौलसिरी के सब फूल गिरा दिए। फिर वह बोली—"बस, बहुत हुआ, छिः, अब देर क्यों? जल्दी जाकर माँ को ले आओ!"

9

जिस समय आशा अपनी सास के गाँव जाने के बारे में दु:ख प्रकट करते हुए अपने पति पर ज़ोर दे रही थी कि वह जा कर उसे घर वापस ले आए, उन्हें नीचे दुतल्ले से 'महेन्द्र भैया' की पुकार सुनाई पड़ी। साथ ही सीढ़ियों पर चढ़ते पैरों की आहट मिली। आवाज़ बिहारी की थी। "अरे रे, आओ-आओ..." महेन्द्र ने जवाब दिया। इतने लम्बे अन्तराल के बाद बिहारी की आवाज़ से उसका हृदय खिल उठा। विवाह के बाद बिहारी इन दोनों के सुख में बाधक बनकर कभी-कभी आता रहा है, लेकिन आज वही बाधा सुख के लिए निहायत ज़रूरी लगी।

बिहारी का आना आशा को भी अच्छा लगा। उसे एक राहत-सी महसूस हुई। वह ज़रा घूँघट खींचकर जल्दी से उठ बैठी। महेन्द्र बोला—"अरे, जा कहाँ रही हो, और कोई नहीं, बिहारी आ रहा है।"

आशा ने कहा—"भाई साहब के लिए नाश्ता ले आऊँ?"

काम का एक मौका आ जाने पर आशा का अवसाद कुछ हल्का हो गया।

सास की कुशल जानने के लिए घूँघट काढ़े वह खड़ी रही। बिहारी से अब भी वह बोलती-चालती नहीं।

अन्दर कदम रखते ही बिहारी ने सारे दृश्य को एक निगाह में समेटा और कहा —"तौबा-तौबा! कैसे कवित्व, कैसे प्रेमालाप के बीच आ टपका मैं! खैर, फिक्र न करो भाभी, मैं बैरंग वापस जाता हूँ।"

आशा ने महेन्द्र को कोहनी मार कर उसकी तरफ़ ताका। महेन्द्र ने पूछा—"माँ की क्या खबर है, बिहारी?"

बिहारी बोला—"माँ और चाची की चर्चा अभी क्यों भाई, काफ़ी समय है। ऐसी रात न तो सोने के लिए बनी है, न माँओं और चाचियों के लिए।"

कहकर बिहारी लौट पड़ा। महेन्द्र ने उसे ज़बर्दस्ती खींचकर बिठा लिया। बिहारी ने कहा—"देख लो भाभी, कसूर मेरा नहीं है—यह मुझे ज़बरन खींच लाया है—पाप इसने किया है, अभिशाप मुझ पर न पड़े।"

आशा से कोई जवाब देते नहीं बनता, इसलिए ऐसी बातों से वह खीझ उठती है। बिहारी जानकर उसे तंग करता है।

बिहारी ने कहा—"घर की हालत आँखों से देख रहा हूँ—अब भी क्या माँ को लाने का वक्त नहीं आया?"

महेन्द्र ने कहा—"बेशक! हम तो उन्हीं की राह देख रहे हैं।"

बिहारी ने कहा—"तो फिर उन्हें लिखते क्यों नहीं? यही जताते हुए उन्हें पत्र लिखने

में तुम्हें नाम मात्र का समय लगेगा, लेकिन उनकी खुशी का अन्त न रहेगा। भाभी, उन दो मिनटों के लिए महेन्द्र भैया को तुम्हें फुरसत देनी पड़ेगी, मेरी दरखास्त रही।"

आशा बिगड़कर चली गयी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

महेन्द्र बोला—"जाने किस शुभ घड़ी में तुम दोनों की पहली बार भेंट हुई थी—आखिर सुलह नहीं ही हो सकी—वही खट-पट।"

बिहारी ने कहा—"तुम्हें तुम्हारी माँ ने तो बर्बाद किया ही, पत्नी भी बर्बाद करने पर तुली है। यही मुझसे नहीं देखा जाता, इसी से जब-तब कुछ कह देता हूँ।"

"मगर इससे फायदा क्या होता है?" महेन्द्र ने पूछा।

"फायदा तुम्हारे लिए कुछ खास नहीं होता, लेकिन मेरे लिए थोड़ा-बहुत होता है।" बिहारी ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

10

बिहारी ने खुद बैठकर महेन्द्र से चिट्ठी लिखवाई और उस चिट्ठी को ले कर दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को लेने चला गया। राजलक्ष्मी की आँख में धूल झोंकना आसान न था। वे समझ गयीं, चिट्ठी बिहारी ने लिखवाई है—मगर फिर भी उनसे रहा न गया। वे तो जाने कब से लौटने को तैयार बैठी थीं, इसलिए उन्होंने लौटने का फैसला किया। उनके साथ-साथ बिनोदिनी भी चली आई।

लौटकर उन्होंने घर की जो बदतर हालत देखी—तमाम यों ही गन्दा पड़ा और तितर-बितर—तो बहू के प्रति उनका मन और भी खराब हो गया।

लेकिन बहू में यह कैसा परिवर्तन! वह छाया-सी उनके पीछे डोलती-फिरती। कहें, न कहें, हरदम हर काम में हाथ बँटाने को मुस्तैद। आज़िज आकर वे कह उठतीं —"छोड़ो-छोड़ो, मिट्टी पलीद करके रख दोगी तुम! जो काम आता नहीं, उसमें फिजूल हाथ क्यों डालती हो?"

दरअसल, राजलक्ष्मी अपने बेटे को ले कर सतर्क थीं। वह शायद अपनी माँ को कोस रहा था कि उनके वापस आने पर वह अपनी पत्नी को खो बैठा था, जिसे उसकी माँ घर-गृहस्थी के काम में बझाये रखती थीं। वे सोचतीं कि अन्नपूर्णा के मुकाबले उनका पलड़ा हल्का ही रहता। इसीलिए राजलक्ष्मी के जी में आया, 'हो न हो, अन्नपूर्णा के चले जाने से ही बहू की यह तरक्की हुई है।' लेकिन फिर मन में आया, 'महेन्द्र सोचेगा, चाची थीं तो मैं बीवी के साथ निष्कंटक मौज करता था और माँ का पहुँचना था कि विरह का दुःख शुरू हो गया। इससे यही साबित होगा कि चाची उसकी शुभैषी रहीं, माँ सुख का काँटा है। रहने दो, अपने को क्या पड़ी है?"

इधर कहीं महेन्द्र दिन को बुला भेजता तो बहू जाने में आनाकानी करती। राजलक्ष्मी ही झिड़का करतीं—"महेन्द्र बुला रहा है, तुम टाल जाती हो! ज़्यादा दुलार पाने का यही नतीजा होता है। जाओ, सब्जियाँ मैं देख लूँगी।"

फिर शुरू होता वही स्लेट-पेंसिल और 'चारूपाठ' का झूठ नाटक। प्रेम के अकारण अभियोग से एक-दूसरे को दोषी ठहराना—किसका प्रेम ज़्यादा वज़नी है, इस पर निरर्थक वाद-विवाद। वर्षा के दिन को रात और चाँदनी रात को दिन बनाना। सुख के क्षीण होने पर भी एक-दूसरे से अलग न होना। भोग-विलास का यही तो अभिशाप है कि सुख अधिक दिन नहीं रहता, मगर एक अजीब तरह का बन्धन जकड़ लेता है जिसे तोड़ना सम्भव नहीं होता।

ऐसे में एक दिन बिनोदिनी ने उनके जीवन में प्रवेश किया। वह खुद आशा के गले से लिपटकर बोली—"बहन, तुम्हारा सौभाग्य अक्षय हो...जुग-जुग! लेकिन चूँकि मैं दुखिया हूँ, इसलिए क्या मेरी तरफ़ एक नज़र ताकना भी गुनाह है?"

छुटपन से ही अपने रिश्तेदारों के यहाँ पराई-सी पली थी, इसलिए आशा लोगों के सामने सदा संकुचित रहा करती। उसका स्वभाव ही ऐसा था कि उसे हमेशा डर रहता कि कोई उसका तिरस्कार न करे। उधर, जुड़ी भौंहें और तीखी निगाह, अनिंद्य मुखड़ा और भरी हुई जवानी लिये जब बिनोदिनी आई, तो आशा की हिम्मत न हुई कि खुद बढ़कर उससे परिचय कर ले।

आशा ने गौर किया, राजलक्ष्मी से बिनोदिनी को किसी भी तरह का संकोच नहीं। और मानो आशा को दिखा-दिखाकर राजलक्ष्मी भी उसका काफ़ी आदर करतीं। यह भी देखा, घर के काम-काज में बिनोदिनी पटु है, प्रभुत्व मानो उसके लिए बहुत ही सहज है, स्वभाव-सिद्ध नौकर-नौकरानियों से काम लेने, झिड़कने-फटकारने और हुक्म देने में उसे ज़रा सी हिचक नहीं होती। यह सब देख-भालकर आशा बिनोदिनी के आगे अपने को बहुत छोटा समझने लगी।

वही सर्व-गुण सम्पन्न बिनोदिनी जब खुद उससे नेह की भीख माँगने आई, तो उसका आनन्द चौगुना हो उमड़ पड़ा। जादूगर के माया-तरु की तरह उसके प्रेम का बीज एक ही दिन में अँकुराया, पत्तों से लद गया और फल-फूल उठा।

आशा ने कहा—"हम-तुम सखियाँ हुईं, एक कोई नाम रख छोड़ें हम अपना।"

बिनोदिनी ने हँसकर पूछा—"क्या आखिर, बताओ ज़रा?"

आशा ने बहुत-से अच्छे-अच्छे नाम गिनाए—"हरसिंगार, कदम्ब, मौलसिरी..."

बिनोदिनी बोली—"ये सारे-के-सारे नाम बड़े पुराने पड़ गए। इन दुलार के नामों की अब कोई कद्र नहीं।"

आशा ने पूछा—"फिर तुम्हें कौन-सा पसन्द है?"

हँसकर बिनोदिनी ने कहा—"आँख की किरकिरी।"

आशा कोई मीठा-सा नाम ही चाहती थी, लेकिन बिनोदिनी की पसन्द से उसने दुलार की इस गाली को ही कबूल कर लिया। बाँहों से उसकी गर्दन लपेटकर बोली —"मेरी आँख की किरकिरी!"

और हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

11

आशा को एक सहेली की बहुत ज़रूरत थी। दरअसल, प्यार-प्रेम का समारोह सिर्फ़ दो आदमियों से नहीं पूरा पड़ता, अधूरेपन की कसक उसमें बनी ही रहती है। मीठी बातों की मिठास तभी सार्थक होती है, जब उसमें हिस्सा बँटाने को दूसरे भी मौजूद रहें। बिनोदिनी तो वैसे भी प्यार की प्यासी थी, इसलिए वह नयी-नवेली बहू के प्रेम की कथाओं को सुरा की तरह पीने लगी। उसका उत्तप्त, सूखा और प्यासा हृदय अपने असन्तुष्ट आवेगों को आशा के प्रेम की मीठी लेकिन नशीली कहानियों की मदिरा से बुझाने की कोशिश करता। यह नशीला रस उसके कानों से मस्तिष्क में चढ़ता चला जाता और उसके शरीर को भी उत्तेजित कर देता।

सूनी दोपहरी में जब माँ सो रही होतीं, घर के नौकर-चाकर निचले तल्ले के आरामगाह में छिप जाते, बिहारी की ताकीद से महेन्द्र कुछ देर के लिए कॉलेज गया होता और धूप से तपी नीलिमा के एक छोर से चील की तीखी आवाज़ बहुत धीमी सुनाई देती तो कमरे के फ़र्श पर अपने बालों को तकिये पर बिखेरे आशा लेट जाती और पेट के नीचे तकिया रखकर पट पड़ी बिनोदिनी गुन-गुन स्वर से कही जाने वाली उसकी कहानी में तन्मय हो जाती—उसकी कनपटी लाल हो उठती, साँस ज़ोर-ज़ोर से चलने लगती।

बिनोदिनी खोद-खोदकर पूछती और छोटी-से-छोटी बात भी निकाल लेती, एक ही बात कई बार सुनती—घटना खत्म हो जाती तो कल्पना करती; कहती—"अच्छा बहन, कहीं ऐसा होता तो क्या होता और यह होता तो क्या करतीं?" इन अनहोनी कल्पनाओं की राह में सुख की बातों को खींचकर दूर तक ले जाने पर आशा को भी एक अनोखा आनन्द मिलता।

बिनोदिनी कहती—"अच्छा, एक बात बता आँख की किरकिरी, तुझसे कहीं बिहारी बाबू का ब्याह हुआ होता तो?"

आशा—"राम-राम, ऐसा न कहो! बड़ी शर्म आती है मुझे। हाँ, तुम्हारे साथ होता तो क्या कहने! चर्चा तो तुम्हारे साथ भी चली थी।"

बिनोदिनी—"मुझसे तो जाने कितनों की, कितनी ही बातें चलीं। न हुआ, ठीक ही हुआ। मैं जैसी हूँ, ठीक हूँ।"

आशा प्रतिवाद करती। वह भला यह कैसे कबूल कर ले कि बिनोदिनी अपनी मौजूदा हालत से खुश है। उसने भोलेपन से कहा—"ज़रा यह तो सोच देखो, अगर मेरे पति से तुम्हारा ब्याह हो जाता! होते-होते ही तो रह गया।"

होते-होते ही रह गया। क्यों नहीं हुआ? आशा का यह बिस्तर, यह पलँग सभी तो उसी का इन्तज़ार कर रहे थे। उस सजे-सजाए शयन-कक्ष को बिनोदिनी देखती और इस बात को किसी भी तरह न भुला पाती। इस घर की वह महज़ एक मेहमान है—आज उसे जगह मिली है, कल छोड़ जाना होगा।

इधर कुछ दिनों से तीसरे पहर बिनोदिनी खुद अपनी अनूठी कुशलता से आशा का जूड़ा बाँध देती और जतन से श्रृंगार करके उसके पति के पास भेजा करती।

इस तरह वह खामखाह देर कर देना चाहती। "थोड़ी देर और रहो न मेरे पास," वह कहती, "आखिर तुम्हारे पति भाग तो जाएँगे नहीं। वे रामायण के स्वर्णमृग थोड़े ही हैं, वे तो तुम्हारे पालतू प्राणी हैं।"

नाराज़ होकर महेन्द्र कहता, "तुम्हारी यह सहेली तो टस-से-मस नहीं होना चाहतीं —घर कब जाएँगी?"

उतावली हो कर आशा कहती, "न-न, मेरी आँख की किरकिरी पर तुम नाराज़ क्यों हो। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारी चर्चा उसे कितनी अच्छी लगती है—किस जतन से वह सजा-सँवारकर मुझे तुम्हारे पास भेजा करती है।"

राजलक्ष्मी आशा को कुछ करने-धरने न देती थीं, लेकिन बिनोदिनी ने उनका मन बदला, आशा की तरफ़दारी की, और उसे काम में जुटाया। बिनोदिनी को आलस ज़रा भी नहीं था। दिन-भर किसी-न-किसी काम में लगी रहती। आशा को वह छुट्टी न देना चाहती। एक के बाद दूसरा, वह कामों का कुछ ऐसा क्रम बनाती कि आशा के लिए ज़रा भी चैन पाना नामुमकिन था। आशा का पति छत वाले सूने कमरे में बैठा चिढ़ के मारे छटपटा रहा है—यह सोचकर बिनोदिनी मन-ही-मन हँसती रहती। आशा अकुलाकर कहती, "भई आँख की किरकिरी, अब इजाज़त दो, वे नाराज़ हो जाएँगे।"

झट बिनोदिनी कहती, "बस, थोड़ी देर और। इस काम को खत्म करके चली जाओ! ज़्यादा देर न होगी।" कुछ देर बाद आशा फिर उद्विग्न होकर कहती—"न बहन, अब वे सचमुच ही नाराज़ होंगे। मुझे छोड़ दो, चलूँ मैं।"

बिनोदिनी कहती, "ज़रा नाराज़ ही हुए तो क्या। सुहाग में गुस्सा न मिले तो मुहब्बत में उसी तरह स्वाद नहीं मिलता—जैसे सब्ज़ी में नमक-मिर्च के बिना नहीं मिलता।"

बिनोदिनी खूब अच्छी तरह जानती थी कि नमक-मिर्च का मज़ा क्या होता है। फर्क बस इतना था कि उसके पास सब्ज़ी नहीं थी। उसके सारे शरीर में जैसे एक आग सुलगा करती, नस-नस में इच्छा हिलोरें लेती, आँखों से चिनगारियाँ छूटतीं। ऐसी सुख-भरी गृहस्थी, ऐसा प्रेमी पति—यह सब कुछ मेरा हो सकता था, वह सोचती। मेरा पति मेरा दास होता और मैं किसी साम्राज्ञी की तरह राज करती। एक अलग ही दुनिया होती और वह अलग ही किस्म का आदमी होता। और अब क्या है उसके पास। मेरी जगह एक अबोध गुड़िया, एक बेवकूफ बच्ची है उसके पास।

वह आशा को गले से लगा कर पूछती—"भई आँख की किरकिरी, मुझे बताओ न, कल तुम लोगों में क्या बातें हुईं। तुमने वह किया था, जो मैंने तुम्हें सिखाया था? सच कहती हूँ, तुम लोगों के प्यार की बातें सुनकर मैं तो एक अलग ही दुनिया में पहुँच जाती हूँ।"

12

एक दिन काफ़ी खीझ कर महेन्द्र ने अपनी माँ से कहा—"क्या यह अच्छी बात है, माँ? दूसरे के घर की एक जवान विधवा को घर रखकर एक भारी ज़िम्मेदारी तुमने कन्धे पर लाद ली है? जाने कब क्या मुसीबत आ खड़ी हो?"

राजलक्ष्मी ने कहा—"अरे, यह तो अपने विपिन की बहू है, इसे मैं परायी थोड़े ही समझती हूँ।"

महेन्द्र ने कहा—"जो कहो, लेकिन यह अच्छा नहीं है। मेरी राय में इसे रखना ठीक नहीं।"

राजलक्ष्मी खूब जानती थीं कि महेन्द्र की राय को ठुकराना आसान नहीं। इसलिए उन्होंने बिहारी से कहा—"अरे बिहारी, तू एक बार महेन्द्र को समझाकर देख! यह विपिन की बहू जब से यहाँ है, तभी से इस बुढ़ापे में मुझे थोड़ा आराम मिला है। वह पराई हो या जो हो, किसी से मुझे कभी ऐसी सेवा नहीं मिली।"

बिहारी ने कोई जवाब न दिया। वह जाकर महेन्द्र से बोला, "यार, बिनोदिनी की भी सोचते हो?"

महेन्द्र ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"सोचकर रात की नींद हराम है। अपनी भाभी से पूछ देखो, बिनोदिनी के बारे में सोचते-सोचते और सभी चीज़ों से ध्यान हट गया है।"

घूँघट की आड़ से आशा ने महेन्द्र को चुपचाप धमकाया। बिहारी ने कहा—"अच्छा, बंकिमचन्द्र के उपन्यास विषवृक्ष का एक और रूप!"

"एकदम," महेन्द्र बोला, "चुन्नी उसे यहाँ से बाहर निकालने के लिए जैसे तड़प रही है।"

घूँघट से आशा की आँखों ने फिर उसे झिड़का।

बिहारी ने कहा—"निकाल बाहर भी करो तो लौट आने में कितनी देर लगती है! अरे, इससे तो अच्छा है, विधवा का विवाह रचा दो, विष के दाँत हमेशा के लिए टूट जाएँगे।"

महेन्द्र बोला—"विवाह तो विषवृक्ष में कुन्द का भी कर दिया गया था।"

बिहारी ने कहा—"इस उपमा को अभी छोड़ो! बिनोदिनी की बात कभी-कभी मैं भी सोचा करता हूँ। तुम्हारे यहाँ तो ज़िन्दगी-भर यह रह नहीं सकती और इनके यहाँ का जंगल किसी के लिए भी वनवास है। सो, मैं देख आया हूँ। ऐसा कठोर दण्ड वह कैसे

सहेगी?”

रीति-रिवाज़ के चलते बिनोदिनी आज तक महेन्द्र के सामने नहीं गयी, पर बिहारी ने उसको देखा है। उसने सिर्फ इतना समझा है कि यह स्त्री जंगल में छोड़ने लायक नहीं है। लेकिन वह जानता था कि बाती घर के दीये में एक तरह से जलती है, और दूसरी तरह वह घर को आग भी लगा सकती है। इस शंका से बिहारी घबराता भी रहता था।

महेन्द्र ने इस बात पर बिहारी की खूब खिल्ली उड़ाई। बिहारी ने भी इसका जवाब दिया। लेकिन उसके मन ने समझा था कि यह स्त्री खिलवाड़ करने की चीज़ नहीं, मगर उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

राजलक्ष्मी ने बिनोदिनी को सावधान कर दिया। कहा—“देखना बेटी, बहू से इतनी मिठास न रखना! तुम गाँव-घर से गृहस्थ के यहाँ रही हो—आजकल के चाल-चलन को नहीं जानतीं। बुद्धिमती हो, समझ-बूझकर चलना!”

इसके बाद बिनोदिनी ने आशा को दूर-ही-दूर रखा। कहा—“मैं भई होती कौन हूँ! मेरी जैसी स्त्री से अगर आप अपनी इज़्ज़त बचाकर चलना नहीं चाहते तो कब क्या हो जाएगा, कौन कह सकता है?”

आशा निहोरे-विनती करती, गिड़गिड़ाती, रोती-पीटती, लेकिन बिनोदिनी एकदम अडिग। अपने प्रेम-प्यार की कहानियों से आशा आकण्ठ भर उठी, मगर बिनोदिनी ने तरजीह न दी।

इधर महेन्द्र में भी एक अजीब-सी शिथिलता घर कर गयी थी। जो अनियम और उच्छृंखलता पहले उसे कौतुक-सी लगती थी, वही अब धीरे-धीरे उसे दुःखाने लगी। आशा की सांसारिक अपटुता से उसे खीझ होती, लेकिन ज़बान खोलकर वह कुछ कहता नहीं था।

आशा खुद सच्चाई का सामना करने लगी थी। उनकी पहले की उद्दाम ज़िन्दगी अपना मज़ा खोने लगी थी और एक बेसुरापन महेन्द्र के जोश को ठण्डा करने लगा था, उस जोश को जो अब असली नहीं बनावटी लगता था।

आशा दुविधा में थी। उसका सहज ज्ञान कहता था कि महेन्द्र को अकेला छोड़ दे और वह यथासम्भव ऐसा करने का प्रयास भी करती। मगर फिर उसे बिनोदिनी के सिवा और कौन-सा आसरा था।

महेन्द्र अब जीवन की सच्चाइयों के प्रति जाग उठा और अपनी पढ़ाई में नये सिरे से दिलचस्पी लेने लगा। उसने किताबें झाड़-पोंछ कर निकालीं और कॉलेज की वर्दियों को भी धूप दिखा कर इस्त्री करवाया।

13

आशा ने जब देखा कि बिनोदिनी बिल्कुल ही पकड़ में नहीं आ रही तो उसे एक तरकीब सूझी। उसने एक दिन बिनोदिनी को उलाहना-सी देते हुए कहा, "भई आँख की किरकिरी, तुम मेरे पति के सामने क्यों नहीं आतीं, भागती क्यों फिरती हो?"

बिनोदिनी ने बहुत संक्षेप में, लेकिन तेज़ स्वर में कहा—"छिः!"

आशा बोली—"क्यों? माँ से मुझे पता चला है, तुम कोई परायी नहीं हो।"

गम्भीर होकर बिनोदिनी ने कहा—"संसार में अपना-पराया कोई नहीं होता। जो अपना मानता है, वही अपना है और जो पराया समझता है, वह अपना होते हुए भी पराया है।"

आशा के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था। वास्तव में उसके पति बिनोदिनी के साथ ज़्यादती करते हैं, सचमुच उसे गैर समझते हैं और नाहक ही उससे खीझा करते हैं।

उस दिन साँझ को आशा ने बड़े नाज़ो-अंदाज़ से पति के सामने छेड़ा—"तुम्हें मेरी आँख की किरकिरी से मिलना और उससे बातचत करनी होगी।"

महेन्द्र हँसकर बोला, "तुम्हारे साहस की बलिहारी!"

आशा ने पूछा—"क्यों, इसमें डर किस बात का?"

"अपनी सखी की जिस गज़ब की खूबसूरती का ज़िक्र किया करती हो वह तो खतरे से खाली नहीं।" महेन्द्र ने मज़ाक करते हुए कहा।

आशा ने कहा—"खैर, वह मैं देख लूँगी। तुम उससे बोलोगे या नहीं, इतना बता दो।"

बिनोदिनी को देखने का कौतूहल महेन्द्र को भी था। फिर भी यह आग्रह उसे ठीक नहीं लग रहा था।

हृदय के नाते के बारे में महेन्द्र के उचित-अनुचित का आदर्श औरों की अपेक्षा कुछ कड़ा था। पहले वह विवाह की बात नहीं सुनना चाहता था, इसलिए कि कहीं माँ के अधिकार पर आँच न आए। और अब आशा के सम्बन्ध की रक्षा वह इस तरह से करना चाहता था कि किसी पराई औरत के लिए मन में ज़रा-सा कौतूहल न पैदा हो। प्यार के मामले में वह बड़ा वैसा-सा है, लेकिन पक्का—इस बात का उसे मन-ही-मन नाज़ भी था। यहाँ तक कि वह चूँकि बिहारी को अपना दोस्त कहता, इसलिए दूसरे किसी को भी

वह मित्र नहीं मानना चाहता। कोई उसकी ओर खिंचकर आता भी तो वह ज़बर्दस्ती उसकी ओर से लापरवाही दिखाता और बिहारी के सामने उस बेचारे का मज़ाक उड़ाते हुए अपनी उदासी ज़ाहिर करता। बिहारी कहीं एतराज करता तो महेन्द्र कहता, "यह तुमसे हो सकता है। कहीं भी जाते हो, तुम्हें मित्रों की कमी नहीं रहती मगर मैं हर किसी को मित्र नहीं मान सकता।"

ऐसे महेन्द्र का मन जब इधर एक अपरिचिता की ओर कौतूहल और व्यग्रता से बरबस खिंच जाया करता तो अपने आदर्श के आगे वह नीचा हो जाता। सो वह बिनोदिनी को घर से हटाने के लिए अपनी माँ को तंग करने लगा।

महेन्द्र ने आशा की बात का जवाब देते हुए कहा—"रहने भी दो चुन्नी, तुम्हारी किरकिरी से गप-शप की फ़ुरसत कहाँ है अपने पास? पढ़ने के वक्त किताबों से नाता और फ़ुरसत की घड़ियों के लिए तुम हो—इस सबमें तुम्हारी सखी के लिए गुंजाइश ही कहाँ है जो उसे लाना चाहती हो?"

आशा ने कहा, "डरो मत, मैं तुम्हारी पढ़ाई पर ज़रा भी आँच नहीं आने दूँगी। मैं अपने ही समय में से कुछ किरकिरी को दे दूँगी।"

"तुम दे सकती हो," महेन्द्र ने कहा, "पर मैं नहीं देना चाहता।"

ऐसा लगता था कि महेन्द्र को बिनोदिनी के प्रति आशा के लगाव से एतराज था। उसे लगता कि इससे उसके प्रति आशा के लगाव में कमी आने की गुंजाइश पैदा हो सकती है। उसने आशा के सामने गर्व से कहा, "जो प्रेम तुम्हारे अन्दर मेरे लिए है वह उतना एकनिष्ठ नहीं है जितना वह जो मेरे अन्दर तुम्हारे लिए है।"

दोनों के बीच महेन्द्र बिनोदिनी के लिए सुई की नोक-भर भी जगह छोड़ने को तैयार नहीं था, यह बात उसके गर्व का विषय बन बैठी। उसका वह गर्व आशा से सहा नहीं जाता, पर आज उसने हार कबूल कर ली। कहा—"खैर, मेरी ही खातिर तुम मेरी किरकिरी से बोलो!"

आशा के आगे अपने प्रेम की दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करके अन्त में बड़ी कृपा करके वह बिनोदिनी से बात करने को राज़ी हुआ।

दूसरे दिन सुबह आशा गयी और सोयी हुई बिनोदिनी से लिपट गयी। बिनोदिनी बोली—"यह कैसा गज़ब! चकोरी आज चाँद छोड़कर मेघ के दरबार में?"

आशा ने कहा—"तुम लोगों की यह कविता मेरी समझ में नहीं आती, फिर घूरे में नाहक मोती क्या डालना! जो इन बातों का जवाब दे सकता है, चलकर एक बार उसे सुनाओ!"

बिनोदिनी ने पूछा—"आखिर वह रसिक है कौन?"

आशा ने कहा—"तुम्हारे देवर—मेरे पति। मज़ाक नहीं, तुमसे बातें करने के लिए वह मुझे परेशान कर रहे हैं।"

बिनोदिनी अपने मन में बोली—'बीवी के हुक्म से मेरी बुलाहट हुई है और मैं सिर पर पाँव रखकर भागी जाऊँगी—ऐसी समझा है मुझे!'

बिनोदिनी किसी भी तरह तैयार न हुई। आशा पति के सामने नीची हो गयी।

मन-ही-मन महेन्द्र इस पर बड़ा नाराज़ हुआ। 'मेरे सामने आने में एतराज! मुझे दूसरे मामूली लोगों-सा समझती हैं?' उसने सोचा, 'और कोई होता तो जाने कब, कितने बहानों से बिनोदिनी से मिलता, बोलता-चालता। लेकिन महेन्द्र ने इसकी कभी कोशिश तक न की, इसी से बिनोदिनी को क्या मेरा परिचय नहीं मिला? वह एक बार भली तरह जान लेती तो समझ जाती कि मुझमें और दूसरे किसी पुरुष में क्या फर्क है।'

दो दिन पहले बिनोदिनी ने भी कुढ़न से सोचा था, 'इतने दिनों से इस घर में हूँ और महेन्द्र एक बार मुझे देखने की कोशिश भी नहीं करता! बुआ के कमरे में होती हूँ तब भी वह किसी बहाने अपनी माँ के पास नहीं आता। ऐसी उपेक्षा और उदासीनता क्यों? मैं कोई जड़ पदार्थ हूँ! मैं आदमी नहीं...स्त्री नहीं! कहीं वह मुझे जान पाता तो पता चलता कि उसकी प्यारी चुन्नी और मुझमें क्या फर्क है!'

आशा ने तरकीब सुझाई—"तुम कॉलेज गए हो, यह कहकर मैं उसे अपने कमरे में ले आऊँगी कि अचानक बाहर से तुम आ जाना! बस, कोई बस न चलेगा।"

महेन्द्र ने पूछा—"आखिर किस गुनाह के लिए उसे इतनी बड़ी सज़ा मिल रही है?"

आशा बोली—"मुझे गुस्सा आ गया है—तुमसे मुलाकात करने में भी आपत्ति! उसकी अकड़ तोड़कर ही रहूँगी।"

महेन्द्र बोला—"तुम्हारी प्यारी सखी को देखे बिना मैं मरा नहीं जा रहा हूँ। मैं यों चोरों की तरह मिलना नहीं चाहता।"

आशा ने महेन्द्र का हाथ पकड़कर विनती की—"मेरे सिर की कसम तुम्हें, एक बार, बस एक बार तो तुम्हें यह करना ही पड़ेगा। जैसे भी हो, उसकी हेकड़ी तो भुलानी ही पड़ेगी। फिर तुम्हारा जैसा जी चाहे करना।"

महेन्द्र चुप रहा। आशा बोली—"मेरी इच्छा है, मान जाओ!"

महेन्द्र को भी ललक हो रही थी। इसीलिए बेहद उदासी दिखाकर वह सहमत हो गया।

शरद की धुली दोपहरी। महेन्द्र के कमरे में बिनोदिनी आशा को कार्पेट के जूते बनाना बता रही थी। आशा अनमनी-सी बार-बार बाहर ताक-ताककर फन्दों की गिनती में भूल करके अपना बेहद सीधापन दिखा रही थी।

आखिर तंग आकर बिनोदिनी ने उसके हाथ का कार्पेट झपटकर गिरा दिया और कहा—"यह तुम्हारे बस का नहीं, मैं चलती हूँ, काम पड़ा है।"

आशा ने कहा—"बस, ज़रा देर और देखो, अब भूल नहीं होगी।"

आशा ने बिनोदिनी से कहा और दोबारा बुनाई में लग गयी।

इतने में दबे पाँव महेन्द्र आया और दरवाज़े के पास बिनोदिनी के पीछे खड़ा हो गया। आशा सिलाई पर आँखें गाड़े हुए ही धीरे-धीरे हँसने लगी।

बिनोदिनी ने पूछा—"एकाएक हँसी किस बात पर आ गयी?"

आशा से और न रहा गया। वह खिलखिला पड़ी और बिनोदिनी के बदन पर कार्पेट फेंककर बोली, "तुमने ठीक ही कहा, यह मेरे बस का नहीं।" और बिनोदिनी से लिपटकर और ज़ोर से हँसने लगी।

बिनोदिनी पहले ही ताड़ गयी थी। आशा की चंचलता और हाव-भाव के कारण उससे कुछ भी छिपा न था। वह यह भी खूब जान गयी थी कि महेन्द्र कब चुपचाप उसके पीछे आकर खड़ा हो गया। निरी नादान बनकर उसने अपने को आशा के आसान जाल में फँसने दिया।

अन्दर आते हुए महेन्द्र ने कहा—"मैं बदनसीब ही इस हँसी से क्यों वंचित हूँ।"

चौंककर बिनोदिनी ने माथे पर कपड़े का पल्ला डाला और उठने लगी। आशा ने उसका हाथ धर दबाया।

महेन्द्र ने कहा—"या तो आप बैठिए, मैं चला जाता हूँ, या फिर आप भी बैठिए, मैं भी बैठता हूँ।"

जैसा कि आम तौर से औरतें करती हैं, छीना-झपटी, शोर-गुल करके बिनोदिनी ने शर्म की धूम नहीं मचाई। उसने सहज ही सुर में कहा—"आपके ही अनुरोध से बैठती हूँ, लेकिन मन-ही-मन शाप न दीजिएगा।"

महेन्द्र ने कहा—"शाप तो दूँगा। पर ऐसा दूँगा कि आप में देर तक चलने की शक्ति न रह जाए।"

बिनोदिनी ने कहा—"इस शाप से मैं नहीं डरती। क्योंकि आपका यह 'देर तक' ज़्यादा देर का नहीं होगा, शायद अब खत्म भी हो चला।"

और उसने फिर उठकर खड़ा होना चाहा। आशा ने उसका हाथ थाम लिया। कहा —"सिर की सौगंध तुम्हें, और कुछ देर बैठो!"

14

"अब सच-सच बताना, मेरी आँख की किरकिरी कैसी लगी तुम्हें?" आशा ने उत्कण्ठा से अपने पति से पूछा।

"बुरी नहीं।" महेन्द्र ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

आशा बहुत क्षुब्ध होकर बोली, "तुम्हें तो कोई अच्छी ही नहीं लगती।"

"सिर्फ एक को छोड़कर।" महेन्द्र ने कहा।

आशा ने कहा—"अच्छा, परिचय ज़रा जमने दो, फिर देखती हूँ, अच्छी लगती है या नहीं।"

"जमने दो?" महेन्द्र ने उद्विग्न हो कर कहा, "यानी ऐसा लगातार चला करेगा क्या?"

आशा ने कहा—"भलमनसाहत के नाते भी तो लोगों से बोलना-चालना पड़ता है। एक दिन की भेंट के बाद ही अगर मिलना-जुलना बन्द कर दो, तो क्या सोचेगी बेचारी? तुम्हारा हाल ही अजीब है। और कोई होता तो ऐसी स्त्री से दौड़कर मिला करता और तुम हो कि आफत आ पड़ी मानो!"

औरों से अपने इस फर्क की बात सुनकर महेन्द्र खुश हुआ। बोला—"अच्छा यही सही। मगर ऐसी जल्दबाज़ी क्या? मैं कहीं भागा तो नहीं जा रहा हूँ, न तुम्हारी सखी को भागने की जल्दी है—लिहाजा, बीच-बीच में भेंट हुआ ही करेगी और भेंट होने पर भलमनसाहत रखे, इतनी अक्ल तुम्हारे पति को है।"

महेन्द्र ने सोचा था, अब से बिनोदिनी किसी-न-किसी बहाने ज़रूर आ जाया करेगी। लेकिन गलत समझा था। वह पास ही नहीं फटकती कभी, अचानक जाते-आते भी कहीं नहीं मिलती।

अपनी स्त्री से वह इसका ज़िक्र भी न करता कि कहीं उसी का आग्रह न झलक पड़े। बीच-बीच में बिनोदिनी से मिलने की स्वाभाविक और मामूली-सी इच्छा को छिपाए और दबाए रखने की कोशिश में उसकी अकुलाहट बढ़ने लगी। फिर बिनोदिनी की उदासीनता उसे और उत्तेजित करने लगी।

बिनोदिनी से भेंट होने के दूसरे दिन प्रसंगवश यों ही मज़ाक में महेन्द्र ने आशा से पूछा—"तुम्हारा यह अयोग्य पति तुम्हारी आँख की किरकिरी को कैसा लगा?"

महेन्द्र को इसकी ज़बर्दस्त आशा थी कि पूछने से पहले ही आशा से उसे इसका

बड़ा ही अच्छा ब्यौरा मिलेगा। लेकिन सब्र करने का जब कोई नतीजा न निकला, तो ढंग से यह पूछ बैठा।

आशा मुश्किल में पड़ी। बिनोदिनी ने कुछ भी नहीं कहा। इससे आशा अपनी सखी से नाराज़ हुई थी। बोली—"ठहरो भी, दो-चार बार मिलने के बाद ही तो कह सकेगी। कल भेंट भी कितनी देर को हुई और बातें भी कितनी हो सकीं।"

महेन्द्र इससे भी कुछ निराश हुआ और बिनोदिनी के बारे में लापरवाही दिखाना उसके लिए और भी कठिन हो गया।

इसी बीच बिहारी आ पहुँचा। पूछा—"क्यों भैया, आज किस बात पर विवाद छिड़ा हुआ है?"

महेन्द्र ने कहा—"देखो न, तुम्हारी भाभी ने कुमुदिनी या प्रमोदिनी या जाने किससे तो जाने क्या नाता जोड़ा है। एक-दूसरे को अजीब-सा नाम भी दिया है। चाहती है मैं भी इनमें शामिल हो जाऊँ। लेकिन मुझे भी अगर उससे वैसा ही कुछ जोड़ना पड़े तो जीना मुश्किल जानो!"

आशा ने घूँघट के अन्दर से घोर अप्रसन्नता व्यक्त की। बिहारी कुछ देर चुपचाप महेन्द्र की ओर ताकता रहा और हँसता रहा। बोला—"भाभी, बात तो यह अच्छी नहीं। यह सब भुलाने की बातें हैं। तुम्हारी आँख की किरकिरी को मैंने देखा है, और भी अगर बार-बार देख पाऊँ, तो उसे दुर्घटना न समझूँगा, यह मैं कसम खाकर कह सकता हूँ। लेकिन इतने पर भी महेन्द्र जब कबूल नहीं करना चाहते तो दाल में कुछ काला है।"

महेन्द्र और बिहारी में बहुत भेद है, आशा को इसका एक और सबूत मिला।

अचानक महेन्द्र को फोटोग्राफी का शौक हो आया। पहले भी एक बार उसने सीखना शुरू करके छोड़ दिया था। उसने फिर से कैमरे की मरम्मत की, और तस्वीरें लेनी शुरू कर दीं। घर के नौकर-चाकरों तक के फोटो लेने लगा।

आशा ज़िद पकड़ बैठी—"मेरी सखी की भी तस्वीर लेनी पड़ेगी।"

बहुत मुख्तसर में महेन्द्र ने जवाब दिया—"अच्छा!"

और उससे मुख्तसर में उसकी आँख की किरकिरी ने कहा—"नहीं।" आशा को इसके लिए फिर एक तरकीब खोजनी पड़ी।

तरकीब यह थी कि आशा किसी तरह उसे अपने कमरे में बुलाएगी और सोते समय ही महेन्द्र उसकी तस्वीर खींच लेगा। इस तरह आशा अपनी जिद्दी सहेली की सारी हेकड़ी मिट्टी में मिला देगी।

मज़े की बात यह कि बिनोदिनी दिन में कभी सोती नहीं। लेकिन उस दिन आशा के कमरे में उसे झपकी आ गयी। बदन पर लाल ऊनी चादर डाले, खुली खिड़की की तरफ़ मुँह किए, हथेली पर सिर रखे वह ऐसी सुन्दर अदा से सोयी थी कि महेन्द्र ने कहा —"लगता है, फोटो खिंचाने के लिए तैयार हुई है।"

दबे पाँव महेन्द्र कैमरा लेकर आया। किस तरह से तस्वीर अच्छी आएगी, यह तय करने के लिए बिनोदिनी को बड़ी देर तक बहुत अच्छी तरह देख लेना पड़ा। यहाँ तक कि कला की खातिर छिपकर सिरहाने के पास उसके बिखरे बालों को ज़रा-सा हटा देना

पड़ा। नहीं जँचा तो उसे फिर से सुधार लेना पड़ा। कानोंकान उसने आशा से कहा —"पाँव के पास से चादर को ज़रा बायीं तरफ़ खिसका दो!"

भोली आशा ने उसके कानों में कहा—"मुझसे ठीक न बनेगा, कहीं नींद न टूट जाए। तुम्हीं खिसका दो।"

महेन्द्र ने चादर खिसका दी।

और तब उसने तस्वीर खींचने के लिए कैमरे में प्लेट डाली। डालना था कि खटका हुआ और बिनोदिनी हिल उठी, लम्बा निःश्वास छोड़ घबराकर उठ बैठी। आशा ज़ोर से हँस पड़ी। बिनोदिनी बेहद नाराज़ हुई। अपनी जलती हुई आँखों से महेन्द्र पर चिनगारियाँ बरसाती हुई बोली—"बहुत बुरी बात है।"

महेन्द्र ने कहा—"बेशक बुरी बात है। लेकिन चोरी भी की और चोरी का माल भी हाथ न लगा, इससे तो इहलोक और परलोक दोनों गए। इस बुराई को ही लेने दीजिए, उसके बाद मुझे सज़ा दीजिएगा।"

आशा भी बहुत आरजू-मिन्नत करने लगी। तस्वीर ली गयी। लेकिन पहली तस्वीर खराब हो गयी। लिहाज़ा दूसरे दिन दूसरी तस्वीर लिये बिना फोटोग्राफर न माना। उसके बाद मित्रता के चिह्न-स्वरूप दोनों सखियों की एक साथ एक तस्वीर लेने की बात आई। बिनोदिनी 'ना' न कह सकी। बोली—"लेकिन यही आखिरी है।"

यह सुनकर महेन्द्र ने उस प्लेट को बिगाड़ दिया। इस तरह कई बार तस्वीर खींचते और खिंचवाते परिचय काफ़ी आगे बढ़ गया।

15

राख में दबे अंगारे अगर बुझ रहे हों तो बाहर से कुरेदने-हिलाने पर दोबारा ताजा हो उठते हैं। इसी तरह आशा और महेन्द्र का आपसी लगाव, जो मन्द पड़ता जा रहा था, वह उनके बीच तीसरे व्यक्ति के आने से फिर तेज़ हो उठा।

आशा में हँसी-दिल्लगी की ताकत न थी, पर बिनोदिनी उससे थकती न थी, लिहाज़ा बिनोदिनी की आड़ में आशा को बहुत बड़ा आसरा मिल गया। महेन्द्र को हमेशा आनन्द की उमंग में रखने के लिए उसे लोहे के चने नहीं चबाने पड़ते थे।

विवाह होने के बाद कुछ ही दिनों में आशा और महेन्द्र एक-दूसरे के लिए अपने को उजाड़ने पर आमादा थे—प्रेम का संगीत शुरू ही पंचम के निषाद से हुआ था, सूद की बजाय पूँजी को ही खा जाने पर तुले थे।

लेकिन अब आशा को अपनी तरफ़ से कोशिश न करनी पड़ती। महेन्द्र और बिनोदिनी जब हँसी-मज़ाक करते होते, वह बस जी खोलकर हँसने में साथ देती। पत्ते खेलने में महेन्द्र आशा को बेतरह चकमा देता, तो आशा बिनोदिनी से फैसले के लिए गिड़गिड़ाती हुई शिकायत करती। महेन्द्र कोई मज़ाक कर बैठता या गैरवाजिब कुछ कहता तो आशा को यह उम्मीद होती कि उसकी तरफ़ से बिनोदिनी उपयुक्त जवाब दे देगी। इस तरह इन तीनों की मण्डली जम गयी।

मगर इससे बिनोदिनी के रोज़मर्रा के काम-धन्धों में किसी तरह की ढिलाई न आ पाई। रसोई, गृहस्थी के दूसरे काम-काज, राजलक्ष्मी की सेवा-जतन—सारा कुछ खत्म करके ही वह इस आनन्द में शमिल होती। महेन्द्र आज़िजी से कहता—"नौकर-महरी को काम नहीं करने देती हो, चौपट करोगी उन्हें तुम।"

बिनोदिनी कहती—"काम न करके खुद चौपट होने से यह बेहतर है। तुम अपने कॉलेज जाओ!"

महेन्द्र—"ऐसी बदली के दिन?"

बिनोदिनी—"न यह नहीं होने का...गाड़ी तैयार है, जाना पड़ेगा।"

महेन्द्र—"मैंने तो गाड़ी को मना कर दिया था।"

बिनोदिनी ने "मैंने कह रखा था।" कहकर महेन्द्र की पोशाक लाकर हाज़िर कर दी।

महेन्द्र—"तुम्हें राजपूत के घर पैदा होना चाहिए था, लड़ाई के समय अपने आदमी को कवच पहनातीं।"

मौज़-मज़े के लिए कॉलेज न जाना, पढ़ाई में ढिलाई करना—यह बिनोदिनी कतई न सह पाती थी। उसके कठोर शासन से दिन-दोपहर का विनोद एकबारगी उठ गया और साँझ का अवकाश महेन्द्र के लिए बड़ा ही रमणीक और मोहक हो उठा। उसका दिन मानो अवसान के इन्तज़ार में रहता।

पहले बीच-बीच में रसोई समय पर न बनती और महेन्द्र को कॉलेज न जाने का बहाना मिल जाता। अब बिनोदिनी सारा इन्तज़ाम खुद करके समय पर रसोई बनाती। खाना खत्म होता कि महेन्द्र को खबर कर दी जाती—"गाड़ी तैयार खड़ी है।" पहले कपड़ों का इस तरतीब से रहना तो दूर रहा, यही पता न होता था कि वे धोबी के यहाँ हैं कि अलमारी की ही किसी गुफा में पड़े हैं।

शुरू-शुरू में बिनोदिनी इन बेतरतीबियों के लिए महेन्द्र के सामने आशा को मीठी उलाहना दिया करती थी—महेन्द्र भी उस बेचारी की लाइलाज योग्यता पर स्नेह से हँस दिया करता। अन्त में सखी के नेह से उसने आशा की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। घर की शक्ल बदल गयी।

आशा अचकन का बटन नदारद पाती और झटपट कोई तरकीब न निकाल पाती कि बिनोदिनी आकर अचकन उसके हाथ से झपट लेती और बात-की-बात में सी देती। एक दिन महेन्द्र की परसी हुई थाली बिल्ली ने जूठी कर दी। आशा परेशान। देखते-ही-देखते बिनोदिनी ने रसोई से जाने क्या-क्या लाकर काम चला दिया। आशा दंग रह गयी।

अपने खाने-पहनने, काम और आराम में, हर बात में तरह-तरह से महेन्द्र को बिनोदिनी के सेवा-स्पर्श का अनुभव होने लगा। बिनोदिनी के बनाए ऊनी मोज़े और बिनोदिनी का बुना ऊनी गुलबन्द महेन्द्र के मन में बिनोदिनी से एक कोमल प्यार-भरा सम्बन्ध होने का एहसास कराता। इसी तरह आशा का भी सारा साज-सिंगार बिनोदिनी ने अपने हाथ में ले लिया और आशा अब बन-ठन कर शाम को पति से मिलने जाती। उसमें कुछ तो होता आशा का अपना और कुछ किसी और का—अपनी वेश-भूषा के रूप और आनन्द में वह अपनी सखी से मानो गंगा-यमुना-सी मिल गयी है।

बिहारी की अब वह कद्र न रही थी—उसकी बुलाहट न होती। उसने महेन्द्र को लिख भेजा—'कल इतवार है, दोपहर को आकर मैं माँ के हाथ का बना भोजन खाऊँगा।' महेन्द्र ने देखा, यह तो इतवार ही गोबर हो जाएगा। उसने जल्दी से लिख भेजा, 'इतवार को कुछ ज़रूरी काम से मुझे बाहर जाना पड़ेगा।'

फिर भी भोजन कर चुकने के बाद बिहारी खोज-खबर के लिए महेन्द्र के यहाँ चला आया। नौकर से पता चला, महेन्द्र कहीं बाहर नहीं गया है। "महेन्द्र भैया" कहकर उसने सीढ़ी से आवाज़ दी और कमरे में दाखिल हुआ। महेन्द्र बड़ा अप्रतिभ हो गया। "सिर में बेहिसाब दर्द है"—कहकर उसने तकिये का सहारा लिया। यह सुनकर और महेन्द्र के चेहरे का हाव-भाव देखकर आशा तो अचकचा गयी। उसने बिनोदिनी की तरफ़ इस आशय से ताका कि क्या करना चाहिए। बिनोदिनी खूब समझ रही थी—मामला संगीन नहीं है, फिर भी घबराकर बोली, "बड़ी देर से बैठे हो, थोड़ी देर लेट जाओ! मैं यूडीकोलोन ले आती हूँ।"

महेन्द्र बोला—"रहने दो, उसकी ज़रूरत नहीं।"

बिनोदिनी ने उस पर ध्यान न दिया। वह जल्दी से बर्फ-मिले पानी में यूडीकोलोन डालकर ले आई। आशा को गीला रूमाल देती हुई बोली—"लो, महेन्द्र बाबू के सिर पर बाँध दो!"

महेद्र बार-बार कहने लगा—"अरे छोड़ो-छोड़ो!" बिहारी हँसी रोककर चुपचाप यह नाटक देखता रहा। मन में गर्व करते हुए महेन्द्र ने कहा—"कमबख्त बिहारी देखे कि मेरी कितनी इज़्ज़त होती है!"

बिहारी खड़ा था। लाज से काँपते हाथों से आशा ठीक से पट्टी न बाँध पाई लुढ़ककर यूडीकोलोन की एक बूँद महेन्द्र की आँख में गिर गयी। बिनोदिनी ने आशा से रूमाल लेकर अपने कुशल हाथों से ठीक से बाँध दिया। सफेद कपड़े के दूसरे टुकड़े को यूडीकोलोन में भिगोकर धीमे-धीमे पट्टी पर निचोड़ने लगी। आशा घूँघट काढ़े पंखा झलती रही।

स्निग्ध स्वर में बिनोदिनी ने पूछा—"महेन्द्र बाबू, आराम मिल रहा है?" आवाज़ में इस तरह शहद घोलकर बिनोदिनी ने कनखियों से बिहारी की तरफ़ देखा। उसने पाया कि कौतुक से बिहारी की आँखें हँस रही हैं। उसको यह सब कुछ प्रहसन-सा लगा। बिनोदिनी समझ गयी, इस आदमी को ठगना आसान नहीं, इसकी पैनी निगाह से कुछ नहीं बच सकता।

बिहारी ने हँसकर कहा—"बिनोदिनी भाभी, इस तरह की सेवा-टहल से बीमारी जाने की नहीं, बल्कि और बढ़ जाएगी।"

बिनोदिनी ने कहा—"मैं मूर्ख स्त्री, मुझे इसका क्या पता! आपके चिकित्सा-शास्त्र में क्या ऐसा ही लिखा है, क्यों?"

बिहारी—"लिखा तो है ही। सेवा देखकर मेरा भी माथा दुखने लगा। लेकिन जिसका कपाल ही फूटा हो, उसे चिकित्सा के बिना ही चंगा हो जाना पड़ता है। महेन्द्र भैया के कपाल की बात और ही है।"

बिनोदिनी ने कपड़े का भीगा टुकड़ा रख दिया और कहा—"तो फिर मुझे क्या पड़ी है! दोस्त का इलाज दोस्त ही करे तो अच्छा है।"

बिहारी ने जो देखा था, वह उसे बहुत अप्रिय लगा था। हाल में वह अपनी पढ़ाई में इतना फँसा रहा था कि अपने मित्र का हाल-चाल नहीं ले पाया था। इसलिए उसे ज़रा भी पता न था कि इस बीच उन तीनों—बिनोदिनी, आशा और महेन्द्र—ने खुद को ऐसे जाल में उलझा लिया था। यह पहला मौका था जब बिहारी और बिनोदिनी, दोनों एक-दूसरे का अन्दाज़ा लगा पाए थे।

बिहारी ने थोड़े रूखे स्वर में कहा, "ठीक बात है। मैं ही अपने मित्र का इलाज करूँगा। मैं ही इस सिरदर्द का कारण हूँ और मैं ही इसे दूर भी करूँगा। अपना कीमती यूडीकोलोन मत बर्बाद कीजिए।" फिर उसने आशा की तरफ़ देखा और बोला, "बीमारी का इलाज करने से बेहतर है उसकी रोक-थाम करना।"

16

जाते समय बिहारी बहुत उद्विग्न था। उसने सोचा कि दूर-दूर रहने से अब काम नहीं चलने का। चाहे जैसे हो, इनके बीच अपने लिए भी जगह बनानी पड़ेगी। इनमें से किसी को यह पसन्द तो न होगा, लेकिन फिर भी मुझे यह करना पड़ेगा।

बुलावे या स्वागत की अपेक्षा किए बिना ही बिहारी महेन्द्र के व्यूह में दाखिल होने लगा। उसने बिनोदिनी से कहा—"बिनोद भाभी, इस शख्स को इसकी माँ ने बर्बाद किया, इसकी बीवी बर्बाद कर रही है—तुम भी उस जमात में शमिल न होकर इसे कोई नई राह सुझाओ।"

महेन्द्र ने पूछा—"यानी?"

बिहारी—"यानी मेरे-जैसा आदमी, जिसे कभी कोई नहीं पूछता..."

महेन्द्र—"उसको बर्बाद करो! बर्बाद होने की उम्मीदवारी इतनी आसान नहीं बच्चू कि दरखास्त दे दी और मंजूर हो गयी।"

बिनोदिनी हँसकर बोली—"बर्बाद होने का दम होना चाहिए बिहारी, बाबू!"

बिहारी ने कहा—"अपने—आप में वह खूबी न भी हो तो पराए हाथ से आ सकती है। एक बार देख ही लो पनाह देकर!"

बिनोदिनी—"यों तैयार होकर आने से कुछ नहीं होता—लापरवाह रहना होता है। क्या खयाल है, भई आँख की किरकिरी! अपने इस देवर का भार तुम्हीं उठाओ न!"

आशा ने उँगलियों से उसे ठेल दिया। बिहारी ने भी इस दिल्लगी में साथ न दिया।

बिनोदिनी से यह छिपा न रहा कि बिहारी को आशा से मज़ाक करना पसन्द नहीं। लेकिन यह बात उसे चुभ गयी कि वह आशा पर श्रद्धा रखता है और बिनोदिनी को हल्का बनाना चाहता है।

उसने आशा से फिर कहा—"तुम्हारा यह भिखारी देवर मुझे इंगित करके तुमसे ही दुलार की भीख माँगने आया है—कुछ दे दो न, बहन!"

आशा बहुत खीझ उठी। ज़रा देर के लिए बिहारी का चेहरा तमतमा उठा, दूसरे ही दम वह हँसकर बोला—"दूसरे पर यों टाल देना ठीक नहीं है। जब मेरी बारी होती है तो दूसरे को सौंप दिया जाता हूँ, जबकि महेन्द्र को तुम सीधे अपने हाथ में लेती हो।"

बिनोदिनी समझ गयी कि बिहारी सब बंटाधार करने आया है—इसके सामने हथियारबन्द रहना ज़रूरी है। महेन्द्र भी आजिज आ गया। बोला—"बिहारी तुम्हारे महेन्द्र

भैया किसी व्यापार में नहीं पड़ते, जो पास है, उसी से खुश हैं वे।"

बिहारी—"खुद न पड़ना चाहते हो चाहे, मगर किस्मत में लिखा होता है तो व्यापार की लहर बाहर से भी आ सकती है।"

बिनोदिनी—"ओहो, तो आप बाहर की लहर के आने की उम्मीद कर रहे हैं? बहरहाल, आपका तो हाथ खाली है, फिर आपके खयाल में आपकी लहर किधर से आयेगी?"

और व्यंग्य की हँसी हँसकर उसने आशा को दबाया। आशा कुढ़कर चली गयी। बिहारी मुँह की खाकर गुस्से में भी चुप रहा। वह जाने को तैयार हुआ, तो बिनोदिनी बोल उठी—"हताश होकर न जाइए बिहारी बाबू, मैं आँख की किरकिरी को भेजे देती हूँ।"

बिनोदिनी के उठने से बैठक टूट गयी। इससे महेन्द्र मन-ही-मन नाराज़ हुआ। महेन्द्र की नाराज़ शक्ल देखकर बिहारी का आवेग उमड़ आया।

बोला—"महेन्द्र भैया, अपना सत्यानाश करना चाहते हो, करो! तुम्हारी ऐसी ही आदत रही है। लेकिन जो सरल हृदय की साध्वी तुम्हारा विश्वास करके पनाह में है, उसका सत्यानाश तो न करो। अब भी कहता हूँ, ऐसा न करो!"

कहते-कहते बिहारी का गला रुँध गया।

दबे क्रोध से महेन्द्र ने कहा—"बिहारी, तुम्हारी बात बिल्कुल समझ में नहीं आती। बुझौअल रहने दो, साफ़-साफ़ कहो।"

बिहारी ने कहा—"मैं दो टूक ही कहूँगा। बिनोदिनी तुम्हें जान-बूझकर नाक से पकड़ कर खींच रही है और तुम बिना समझे पाप और पतन की तरफ़ कदम बढ़ा रहे हो?"

महेन्द्र गरज उठा—"सरासर झूठ है। तुम अगर भले घर की बहू-बेटी को गलत शुबहे की निगाह से देखते हो तो तुम्हारा घर के अन्दर आना ठीक नहीं।"

इतने में बिनोदिनी एक थाली में मिठाइयाँ लेकर आई और उसने उन्हें बिहारी के सामने रख दिया। बिहारी बोला—"अरे, यह क्या! मुझे बिल्कुल भूख नहीं।"

बिनोदिनी बोली—"ऐसी क्या बात! मुँह मीठा करके ही जाना होगा।"

बिहारी बोला—"मेरी दरखास्त मंजूर हुई शायद? आदर-सत्कार शुरू हो गया?"

बिनोदिनी होंठ दबाकर हँसी। कहा—"आप जब देवर ठहरे, तो रिश्ते का ज़ोर है ही। जहाँ दावा कर सकते हैं, वहाँ भीख क्या माँगना? आदर तो आप छीनकर ले सकते हैं। आप क्या कहते हैं, महेन्द्र बाबू?"

महेन्द्र अब तक इतना झल्ला उठा था कि उसने कोई टिप्पणी नहीं की।

बिनोदिनी ने देखा बिहारी कुछ खा नहीं रहा है तो बोली—"बिहारी बाबू, आप शर्म से नहीं खा रहे हैं या नाराज़गी से! या शायद मुझे किसी और को बुलाना पड़ेगा?"

बिहारी—"नहीं, ज़रूरत नहीं। जो मिला है, काफ़ी है।"

बिनोदिनी—"फिर मज़ाक? आप से तो पार पाना मुश्किल है। मिठाई से भी मुँह बन्द नहीं होता।"

रात को आशा ने महेन्द्र से बिहारी की शिकायत की। महेन्द्र और दिन की तरह हँसकर टाल नहीं गया, बल्कि उसने साथ दिया। सुबह ही महेन्द्र बिहारी के घर गया। बोला—"बिहारी, लाख हो, बिनोदिनी आखिर अपने घर की तो नहीं है। तुम सामने होते हो तो उसे कैसी झिझक होती है।"

बिहारी ने कहा—"अच्छा! तब तो यह ठीक नहीं। उन्हें अगर एतराज़ है, तो मैं सामने न जाऊँगा।"

महेन्द्र निश्‌चिंत हुआ। यह अप्रिय काम इस आसानी से बन जाएगा, वह सोच भी न सका था। बिहारी से वह डरता था।

बिहारी उसी दिन महेन्द्र के घर गया। जब उसने बिनोदिनी को देखा तो बोला —"बिनोद भाभी मुझे, माफ़ कर दो!"

बिनोदिनी—"कैसी माफ़ी?"

बिहारी—"महेन्द्र से मालूम हुआ, मैं यहाँ आकर सामने होता हूँ, इसलिए आप नाराज़ हैं। इसलिए मैं माफ़ी माँगकर रुखसत हो जाऊँगा।"

बिनोदिनी—"ऐसा भी होता है भला! मैं तो आज हूँ, कल नहीं रहूँगी—मेरी वजह से आप क्यों रुखसत होंगे? इतना झमेला होगा, यह जानती होती तो मैं यहाँ न आती...।" यह कहकर मुँह मलिन किए बिना बिनोदिनी आँसू छिपाने के लिए तेज़ी से चली गयी।

बिहारी के मन में आया—'झूठे सन्देह पर मैंने नाहक ही बिनोदिनी के मन को चोट पहुँचाई है।'

उस दिन शाम को मानो मुश्किल में पड़ी राजलक्ष्मी महेन्द्र के पास जाकर बोलीं —"महेन्द्र, विपिन की बहू घर जाने के लिए उतावली हो गयी है।"

महेन्द्र ने पूछा—"क्यों, यहाँ उन्हें कोई तकलीफ है?"

राजलक्ष्मी—"तकलीफ नहीं, वह कहती है, मुझ-जैसी विधवा ज़्यादा दिन दूसरे के घर रहेगी, तो लोग निन्दा करेंगे।"

महेन्द्र क्षुब्ध होकर बोला—"तो यह पराया घर है!"

बिहारी बैठा था। महेन्द्र ने उसे खीझी निगाह से देखा।

बिहारी ने सोचा था, 'कल मैंने जो कुछ कहा, उसमें निन्दा का आभास था—शायद उसी से बिनोदिनी का जी दुःखा।'

पति-पत्नी दोनों बिनोदिनी से रूठे रहे।

ये बोलीं—"हमें पराया समझती हो, बहन?"

वे बोले—"इतने दिन बाद भी हम तुम्हारे कुछ नहीं?"

बिनोदिनी ने कहा—"हमें क्या तुम आजीवन पकड़े रहोगी?"

महेन्द्र बोला—"ऐसी ज़ुर्रत कहाँ!"

आशा बोली—"फिर ऐसे क्यों हमारे जी को चुराया तुमने?"

उस दिन कुछ भी तय न हो सका। बिनोदिनी बोली—"नहीं बहन, बेकार है, दो दिनों के लिए ममता न बढ़ाना ही ठीक है।"

कहकर अकुलाई हुई आँखों से उसने एक बार महेन्द्र को देखा।

दूसरे दिन बिहारी ने आकर कहा—"बिनोद भाभी, यह जाने की ज़िद क्यों? क्या मैंने कोई कुसूर किया है—उसी की सज़ा है यह?"

मुँह फेरकर बिनोदिनी बोली—"कुसूर आप क्यों करने लगे, कुसूर है मेरी तकदीर का।"

बिहारी—"खैर आप अगर चली जाएँगी, तो मुझे यही लगता रहेगा कि मुझी से नाराज़ होकर चली गयीं आप।"

करुण आँखों से विनती करती हुई बिनोदिनी ने बिहारी की ओर ताका। कहा —"आप ही कहिए न, क्या मेरा रहना उचित है?"

बिहारी मुश्किल में पड़ गया। रहना उचित है, यह बात वह कैसे कहे?

बोला—"ठीक है, आपको जाना तो पड़ेगा ही, लेकिन दो-चार दिन रुककर जाएँ, तो क्या हर्ज है?"

अपनी दोनों आँखें झुकाकर बिनोदिनी ने कहा—"आप सब लोग रहने का आग्रह कर रहे हैं, आप लोगों की बात टालकर जाना मेरे लिए मुश्किल है, मगर आप लोग गलती कर रहे हैं।"

कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी पलकों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें तेज़ी से ढुलकने लगीं।

बिहारी इन मौन आँसुओं से व्याकुल होकर बोल उठा—"महज़ इन कुछ दिनों में ही आपने सबको मोह लिया है, इसी से आपको कोई छोड़ना नहीं चाहता। अन्यथा न सोचें बिनोद भाभी, ऐसी लक्ष्मी को चाहकर कौन विदा करेगा?"

आशा घूँघट काढ़े एक कोने में बैठी थी। घूँघट सरकारकर वह रह-रहकर आँखें पोंछने लगी।

इसके बाद बिनोदिनी ने कभी जाने की बात न चलाई।

यह जो अप्रिय प्रसंग बीच में आ उपस्थित हुआ था, उसकी स्मृति को एकबारगी मिटा देने की गरज से महेन्द्र ने सुझाव रखा कि अगले इतवार को सब लोग दमदम के उनके बाग पर पिकनिक के लिए चलें।

आशा बहुत खुश हो गयी, लेकिन बिनोदिनी किसी भी तरह राज़ी न हुई। उसके तैयार न होने से आशा और महेन्द्र मायूस हो गए। उन्हें लगा, "इन दिनों बिनोदिनी न जाने क्यों उनसे दूर-दूर रहना चाहती है!"

तीसरे पहर बिहारी आया। बिनोदिनी बोली—"ज़रा देखिए तो बिहारी बाबू महेन्द्र बाबू दमदम जा रहे हैं पिकनिक के लिए। मैं नहीं जाना चाहती तो सुबह से दोनों मुझसे रूठे हैं।"

बिहारी बोला—"नाराज़ होना उनका बेजा नहीं। आप साथ न गयीं तो इनकी जो पिकनिक होगी, ईश्वर करे दुश्मन की भी वैसी न हो।"

बिनोदिनी—"फिर आप भी चलिए न! आप चलें तो मैं भी चलूँगी।"

बिहारी—"ठीक तो है। मगर बात यों है कि कर्म, दरअसल कर्त्ता की इच्छा पर होता है। बाबू की क्या राय है?"

बाबू की क्या राय होती? उनकी तो इच्छा थी ही नहीं। इसके अलावा, बिहारी के प्रति इस पक्षपात से मालिक और मालकिन, दोनों ही भीतर-भीतर कुढ़ गए। बिहारी को साथ ले चलने की बात से महेन्द्र का आधा उत्साह जाता रहा। वह बिहारी को हर तरह से यह जता देने को आतुर था कि उसकी मौजूदगी बिनोदिनी को कभी पसन्द नहीं—लेकिन अब तो उसे छोड़ जाना असम्भव होगा।

महेन्द्र ने कहा—"बेजा क्या है, अच्छा ही तो है। लेकिन बिहारी तुम्हारा खास ऐब है कि जहाँ जाते हो, वहाँ कोई-न-कोई हंगामा करने से बाज नहीं आते। या तो वहाँ आस-पास के बच्चों की जमात जुटा लोगे या फिर गोरों से मार-पीट की नौबत। क्या कर बैठोगे क्या पता?"

बिहारी महेन्द्र की अनिच्छा को समझ गया। मन-ही-मन हँसा। बोला—"दुनिया में यही तो मज़ा है। क्या-से-क्या हो जाए, कहाँ कौन-सा फसाद खड़ा हो जाए—पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। तो बिनोद भाभी, तड़के ही चल देना पड़ेगा। मैं समय से हाज़िर हो जाऊँगा।"

सामान और नौकरों के लिए एक थर्ड क्लास और उन लोगों के लिए एक सेकेण्ड क्लास की बग्घी लाई गयी। खासा बड़ा एक पैक बक्स लिये बिहारी ठीक समय पर हाज़िर हो गया।

महेन्द्र उस बक्स को देख कर खीझ उठा। उसने कहा—"अरे, यह तुम क्या उठा लाए? नौकरों वाली गाड़ी में तो अब यह आयेगा नहीं।"

बिहारी बोला—'तुम परेशान मत हो, मैं अभी ठीक किए देता हूँ।"

बिनोदिनी और आशा गाड़ी पर सवार हुए। बिहारी का क्या करे, महेन्द्र ज़रा आगा-पीछा करने लगा। बिहारी ने अपना सामान गाड़ी के ऊपर पटका और आप कोचवान की बगल की सीट पर जा बैठा।

महेन्द्र के जी में जी आया। वह सोच रहा था, 'जाने बिहारी अन्दर ही बैठ जाएगा कि क्या करेगा!'

बिनोदिनी ने परेशान होकर पूछा—"गिर तो नहीं पड़ेंगे बिहारी बाबू?"

बिहारी बोल उठा—"आप फिक्र न करें, गिरना या बेहोश हो जाना—दोनों मेरी जन्मपत्री में नहीं।"

जैसे ही गाड़ी खिसकी, महेन्द्र ने कहा—"न हो तो मैं ही ऊपर जाता हूँ, बिहारी अन्दर आ जाए।"

आशा ने जल्दी से उसकी चादर खींची। कहा—"नहीं, तुम नहीं जा सकते।"

बिनोदिनी बोली—"आपको आदत नहीं, क्या पता गिर-विर पड़ें।"

जोश में आकर महेन्द्र ने कहा—"गिर पड़ूँगा? हर्गिज़ नहीं।"

और वह गाड़ी से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा।

बिनोदिनी—"तोहमत आप बिहारी बाबू पर लगाते हैं, मगर हंगामा मचाने में बेजोड़

तो आप ही हैं।"

महेन्द्र ने ज़रा मुँह लटकाकर कहा—"अच्छा, एक काम करें। मैं दूसरी गाड़ी लेकर चलता हूँ, बिहारी यहाँ आ जाए।"

आशा ने कहा, "तो मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगी।"

बिनोदिनी बोली—"और मैं? तब मैं क्या करूँगी? क्या मैं गाड़ी में से कूद पड़ूँ?" होते-होते झंझट आखिर निबट गया।

रास्ते-भर महेन्द्र बड़ा गम्भीर रहा।

गाड़ी दमदम के बगीचे में पहुँच गयी। नौकरों वाली गाड़ी बहुत पहले ही रवाना हुई थी, लेकिन अभी तक उसका पता न था।

शरद का सवेरा! बड़ा ही सुहाना। धूप निकल आई थी। ओस की बूँदें सूख चुकी थीं, पर निर्मल प्रकाश से पेड़-पौधे झिलमिला रहे थे। दीवार से लगी हरसिंगार की कतार थी। नीचे फूल बिछ गए थे। मह-मह खुशबू!

कलकत्ता की ईंट-पत्थर की ऊँची-ऊँची दीवारों के घेरे से बाहर आकर आशा वन की हिरनी-सी उमग उठी। बिनोदिनी के साथ उसने ढेरों फूल बीने, पेड़ से शरीफे तोड़े और नीचे बैठकर खाए। दोनों सखियों ने पोखर में देर तक स्नान किया। इस निरुद्देश्य आनन्द से इन दो नारियों ने पेड़ों की छाया और चारों तरफ़ छिटकी किरणों, पोखर के पानी और कुंजों के फूल-पत्तों को जैसे पुलकित सचेतन कर दिया।

दोनों सखियाँ नहा आयीं। देखा, नौकरों वाली गाड़ी अब भी नदारद है। महेन्द्र बँगले के बरामदे में बिछी एक चौकी पर बैठा-बैठा उदास होकर किसी विलायती कम्पनी का सूचीपत्र पढ़ रहा था।

बिनोदिनी ने पूछा—"और बिहारी बाबू?"

संक्षेप में महेन्द्र बोला—"पता नहीं।"

बिनोदिनी—"चलिए, उन्हें ढूँढें।"

महेन्द्र—"आखिर उन्हें कोई चुराकर तो ले नहीं जाएगा! ढूँढे बिना भी मिल जाएँगे।"

बिनोदिनी—"मगर हो सकता है, आपकी फ़िक्र से वे बेहाल हो रहे हों कि कहीं 'दुर्लभ रत्न' खो न गया हो। चलकर उन्हें दिलासा ही दे आएँ।"

तालाब के किनारे एक पक्का घाट था और विशाल बरगद का एक पेड़। उसी के चौंतरे पर बिहारी अपना पैक-बक्स खोलकर स्टोव पर चाय के लिए पानी गरम कर रहा था। जैसे ही लोग पहुँचे, उसने सबको चौंतरे पर बिठाकर एक-एक प्याला गरम चाय और तश्तरी में दो-एक मिठाइयाँ देकर उनकी खातिर की। बिनोदिनी बार-बार कहने लगी —"गनीमत है कि बिहारी बाबू सारा सरंजाम साथ ले आये हैं! वरना चाय न मिलती तो क्या हाल होता महेन्द्र बाबू का।"

चाय मिली, तो महेन्द्र जी उठा। फिर भी बोला—"यह सब बिहारी की ज़्यादती है। आए हैं हज़रत पिकनिक को और यहाँ भी बदस्तूर सारा इन्तज़ाम उठा लाए हैं। इससे मज़ा नहीं रहता!"

बिहारी ने उसका मज़ाक उड़ाते हुए कहा, "अच्छा, तुम्हें अगर ऐसा लग रहा है तो चाय का प्याला छोड़ दो। उसे पिये बिना ही मज़ा लो। हम तुम्हें नहीं रोकेंगे।"

दिन चढ़ आया, पर नौकरों का कहीं कोई अता-पता न था। इस बीच बिहारी ने जैसे जादू के बल पर अपनी पेटी से खाने की तरह-तरह की चीज़ें निकाल ली थीं—दाल, चावल और साग-तरकारी के साथ-साथ मिर्च-मसालों की छोटी-छोटी शीशियाँ भी थीं। बिनोदिनी बहुत प्रभावित हुई।

"कहना पड़ेगा बिहारी बाबू, आपने हम औरतों को भी मात कर दिया है। घरवाली तो आपकी अभी है नहीं, फिर कहाँ सीखा यह सब?"

"कमबख्त पेट के लिए सब कुछ सीखना पड़ता है, भाभी जी," बिहारी ने कहा, "वरना कौन है जो मेरी देख-भाल करे!"

बिहारी ने यह बात हँसी-हँसी में कह कर अपने प्रयासों को जान-बूझ कर हल्का बनाने की चेष्टा की थी, लेकिन बिनोदिनी का दिल बिहारी के प्रति गहरी करुणा से भर उठा। फिर बिनोदिनी और बिहारी, दोनों खाना बनाने में एक-दूसरे का हाथ बँटाने लगे। आशा ने संकोच के साथ अपनी सेवाएँ पेश कीं, मगर बिहारी ने उसे हाथ के इशारे से मना कर दिया। महेन्द्र ने अलबत्ता न तो मदद की और न मदद करने का प्रस्ताव ही किया। वह एक पेड़ से पीठ टिकाये, हिलते हुए पत्तों पर सूरज की किरणों का नृत्य निहारता रहा।

तब तक नौकर भी सामान ले कर आ पहुँचे थे। पता चला कि रास्ते में उनकी गाड़ी टूट गयी थी जिसकी वजह से उन्हें पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गयी थी। इस बीच खाना तैयार हो गया था। बिनोदिनी ने महेन्द्र से कहा, "मुझे नहीं लगता कि आप इन पत्तों को कभी गिन पायेंगे। बेहतर होगा, जाइए, जा कर नहा आइए।"

खाना-पीना खत्म होने के बाद बरगद के पेड़ के नीचे ताश खेलने की बात चली, लेकिन महेन्द्र का मन उसमें बिल्कुल न था। देखते-देखते, पेड़ की छाया में उसे नींद ने आ घेरा और आशा आराम करने के लिए कोठी के भीतर चली गयी।

बिनोदिनी ने माथे का पल्ला सँभालते हुए बिहारी से कहा, "अच्छा, तो अब मैं भी अन्दर जाती हूँ।"

"मगर क्यों?" बिहारी बोला, "हम लोग बातें क्यों न करें? मुझे अपने बारे में बताइए, अपने बचपन की बातें, लड़कपन के किस्से। भीतर कहाँ जाएँगी, यहीं बैठिए।"

दोपहरी की गर्म हवा पत्तों में सरसराती हुई बह रही थी। तालाब के किनारे लगे जामुन के पेड़ पर घने पत्तों के बीच एक कोयल रह-रह कर कूक उठती।

बिनोदिनी अपने बचपन के किस्से सुनाने लगी—माँ-बाप की बात, छुटपन की सखी-सहेलियों की चर्चा। बात करते-करते अचानक उसके माथे से पल्ला खिसक पड़ा। अपने बचपन की याद करते हुए उसकी तीखी भंगिमा अचानक कोमल और करुण हो उठी थी। इससे पहले बिनोदिनी की आँखों में कौतुक का तीखा कटाक्ष देख कर पैनी निगाहों वाले बिहारी के मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठती रही थीं लेकिन वह श्याम चमक जब एक शान्त सजल रेखा में बदल कर मन्द पड़ गयी, तो बिहारी ने मानो बिनोदिनी के भीतर की एक और ही नारी को देखा। आज मानो ज़रा देर के लिए रंगमंच का पर्दा उठ गया और अन्दर का एक मंगल दृश्य उसे दिखाई दिया। उसने देखा कि

बाहरी चमक-दमक के भीतर एक स्नेह-भरा हृदय अपनी सुधा से सबको सरस बनाये हुए है। बिहारी ने सोचा, 'बिनोदिनी बाहर से विलासिनी युवती तो है, पर उसके अन्तर्मन में पूजा कर रही एक नारी तपस्या में लीन है।' एक लम्बी साँस छोड़कर बिहारी ने मन-ही-मन कहा—'सही-सही अपने को मनुष्य आप भी नहीं जानता—अन्तर्यामी ही जानते हैं —परिस्थितिवश जो रूप बाहर बन जाता है, दुनिया उसी को सच समझती है।' बिहारी ने बातों के सिलसिले को टूटने न दिया, प्रश्नों से उसे जगाए रखा। बातों के इस अटूट सिलसिले से उसे दुर्लभ सन्तोष की अनुभूति हुई।

सुबह-सवेरे ही जागने के जुल्म से थके हुए महेन्द्र की नींद पाँच बजे खुली। वह अब भी खिन्न और खीझा हुआ था। बोला—"अब चल देना चाहिए।"

बिनोदिनी ने कहा—"थोड़ी देर और रुकें तो?"

"नहीं, रुकना सम्भव नहीं है," महेन्द्र राज़ी नहीं हुआ, "बाद में क्या पता शराब के नशे में धुत्त फौजी ही कहीं कुछ बखेड़ा न खड़ा कर दें।"

सामान सहेजने में अँधेरा हो आया। नौकरों ने इतने में खबर दी कि किराए की गाड़ी न जाने कहाँ गायब है। ढूँढे न मिली। पता चला कि गाड़ी बगीचे के बाहर खड़ी थी। दो गोरे ज़बर्दस्ती उसे लेकर रेलवे स्टेशन चल दिए।

दूसरी गाड़ी लाने के लिए नौकर भेजा गया। कुढ़ा हुआ महेन्द्र बार-बार मन में कहने लगा—'आज का दिन मुफ़्त में बर्बाद हो गया।' ऐसी नौबत आ गयी कि अपनी अधीरता वह छिपा न सका।

चाँद धीरे-धीरे पेड़ों के पीछे से उठ कर उस शान्त, थिर बगिया में एक स्वप्निल संसार की सृष्टि करने लगा। इस सपनीली दुनिया में बिनोदिनी को एक अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति होने लगी और आशा को चकित करते हुए उसने उसे बाँहों में भर लिया। आशा ने चौंक कर देखा कि बिनोदिनी की आँखों से निःशब्द आँसुओं की धारा बह रही थी। दुःखी हो कर उसने पूछा, "क्या हुआ मेरी आँख की किरकिरी? तुम रो क्यों रही हो?"

"चिन्ता मत करो सखी, मैं ठीक हूँ," बिनोदिनी ने आशा को आश्वस्त किया। "ये सुख के आँसू हैं। आज का दिन मेरे लिए अद्भुत रहा है।"

"सच?" आशा ने पूछा, "किस तरह?"

बिनोदिनी ने अजीब-सा उत्तर दिया। बोली, "ऐसा लगा मानो मैं मर गयी हूँ और परलोक पहुँच गयी हूँ जहाँ मेरी हृदय की कामना पूरी हो गयी।"

यह सब बेचारी आशा की समझ से बाहर था, सिवा इसके कि बिनोदिनी के जवाब में मृत्यु का कोई सन्दर्भ था, जो उसे व्यथित कर रहा था। आशा ने उद्विग्न हो कर कहा, "सुनो मेरी आँख की किरकिरी, तुम्हें ऐसी अवसाद-भरी बातें नहीं करनी चाहिए।"

नयी घोड़ा गाड़ियाँ किराये पर ली गयीं। बिहारी पहले की तरह कोचवान के बगल की सीट पर जा बैठा और वे वापस चल पड़े।

सारा रास्ता बिनोदिनी चुपचाप बाहर की तरफ़ देखती रही और एक शब्द भी नहीं बोली। चाँदनी में अवाक् पेड़ों की पाँत दौड़ते हुए घने छाया-प्रवाह की तरह उसकी आँखों

के सामने से होकर गुजरती रही। आशा गाड़ी के एक कोने में सो गयी और महेन्द्र सारी राह मुँह फुलाये, उदास बैठा रहा।

17

पिकनिक वाले प्रसंग के बाद महेन्द्र ने पाया कि उसके मन में बिनोदिनी के लिए नये सिरे से दिलचस्पी जाग उठी है। वह उसे अपनी पकड़ में लेने के लिए आतुर हो उठा। मगर बीच में एक रुकावट आ गयी। दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को फ्लू हो गया। बीमारी कुछ खास न थी, फिर भी उन्हें तकलीफ़ और कमज़ोरी काफ़ी थी। बिनोदिनी रात-दिन उनकी सेवा में लगी रहती।

महेन्द्र ने उसे चेतावनी दी—"माँ की सेवा-जतन में यों दिन-रात एक करोगी तो तुम खुद बीमार पड़ जाओगी। मैं कोई दूसरा खोज लेता हूँ जो इनकी सेवा-टहल कर दे।"

बिहारी ने कहा—"तुम नाहक परेशान हो, भैया! ये सेवा कर रही हैं, करने दो। दूसरा कोई ऐसी सेवा थोड़े ही करेगा।"

महेन्द्र बार-बार अपनी माँ को देखने के लिए उनके कमरे में आने-जाने लगा। एक आदमी काम कुछ नहीं करता, लेकिन हर घड़ी पीछे लगा रहता है, यह बात बिनोदिनी को अच्छी न लगी। तंग आकर उसने दो-तीन बार कहा—"महेन्द्र बाबू, यहाँ बैठे रहकर आप क्या कर रहे हैं? जाइए, कॉलेज से नाहक क्यों गैर-हाज़िर होते हैं?"

महेन्द्र उसके पीछे लगा डोलता है, इसका बिनोदिनी को नाज़ था। खुशी थी। लेकिन फिर भी ऐसा क्या, बीमार माँ के बिस्तर के पास भी क्षुब्ध बैठे रहना—उसका धीरज टूट जाता, घृणा होती। अपने ऊपर किसी काम की ज़िम्मेदारी रहने पर वह और किसी बात का खयाल नहीं करती। जब तक खिलाना-पिलाना, रोगी की सेवा, घर के काम-धंधे की ज़रूरत रहती—किसी ने उसे कभी ढीला-ढाला नहीं देखा और खुद भी काम-काज के समय वह निकम्मापन पसन्द नहीं करती।

कभी-कभी ज़रा देर को, माँ का हाल पूछने के लिए बिहारी आ जाया करता। कमरे में कदम रखते ही वह समझ जाता कि काहे की ज़रूरत है, कहाँ कौन-सी चीज़ की कमी है, उसकी आँखें तुरन्त ताड़ जातीं और लम्हे-भर में सब-कुछ ठीक करके वह कमरे से निकल जाता। बिनोदिनी समझ रही थी कि मेरी सेवा को बिहारी श्रद्धा की नज़र से देखता है। लिहाजा बिहारी के आने से उसे जैसे विशेष पुरस्कार मिलता था।

महेन्द्र नियम से कॉलेज जाने लगा। एक तो उसका मिजाज ही बड़ा कड़वा हो गया, उस पर यह कैसा परिवर्तन! समय पर खाना तैयार नहीं होता, कोचवान जाने कहाँ गायब रहता, मोजे का छेद धीरे-धीरे बड़ा होता जाता। ऐसी गड़बड़ में उसे पहले जैसा आनन्द नहीं आता था। जब जिस चीज़ की ज़रूरत हो, उसी क्षण उसे पा जाने का आराम कैसा

होता है, इसका स्वाद वह कई दिन पहले ही चख चुका था। अब उसकी कमी से आशा की अकुशलता में उसे पहले जो मज़ा आता था, वह खत्म हो गया। वह आशा पर झींखता—"चुन्नी, मैंने बाहर तुमसे कहा कि मेरे नहाने के पहले ही कुर्ते में बटन लगा रखना, अचकन, पतलून ठीक करके रखना—मगर यह कभी नहीं होता। नहाकर बटन लगाने और कपड़े ढूँढने में ही मेरा घण्टा-भर निकल जाता है।"

शर्मसार होकर आशा कहती—"मैंने नौकर से कह दिया था।"

"...नौकर से कह दिया था! खुद कर देतीं तो कौन-सा गुनाह हो जाता! कभी जो तुमसे कोई काम हो!"

आशा पर मानो गाज गिरी। ऐसी झिड़की उसे कभी नहीं सुननी पड़ी थी। उसकी ज़बान पर या मन में यह जवाब न आया कि मेरी इस जहालत के तुम्हीं तो ज़िम्मेदार हो। उसे तो मालूम ही न था कि घरेलू कुशलता अभ्यास से, अनुभव से आती है। वह सोचा करती थी कि अपनी समझ की कमी के कारण ही मैं कोई भी काम ठीक से नहीं कर पाती। जब-जब महेन्द्र ने बिनोदिनी की उपमा देकर आशा को धिक्कारा, उसने उसे विनम्रता से मान लिया था।

कभी-कभी आशा बीमार सास के आस-पास चक्कर काटती, कभी-कभी शर्मायी-सी दरवाज़े के पास खड़ी हो जाती। उसकी इच्छा होती कि अपने-आपको वह गृहस्थी के उपयुक्त बनाये, कुछ काम करके दिखाए, परन्तु उससे कोई भी कैसी मदद न लेता। इस कारण उसमें भीतर-ही-भीतर मनोवेदना बढ़ रही थी, लेकिन अपनी अस्पष्ट व्यथा और अजानी आशंका को वह साफ़ समझ न पाती। वह खूब महसूस कर रही थी कि उसके चारों तरफ़ का सब-कुछ बर्बाद हो रहा है। लेकिन यह सब कैसे बना था और नष्ट ही कैसे हो रहा है और कैसे इसका प्रतिकार हो—वह नहीं जानती थी। रह-रहकर यही कहने को जी चाहता कि मैं अयोग्य हूँ—मेरी मूढ़ता की तुलना नहीं हो सकती।

अब तक तो पति-पत्नी दोनों घर के एक कोने में दुबके कभी बोल-बतियाकर कभी यों ही चुपचाप मज़े में दिन बिताते रहे। मगर अब बिनोदिनी न होती तो आशा के साथ अकेले बैठकर महेन्द्र बात ही न कर पाता।

कुछ दिन बाद महेन्द्र ने एक नौकर को चिट्ठी लाते देखा। महेन्द्र ने नौकर से पूछा—"किसकी चिट्ठी है?"

"बिहारी बाबू की।"

"किसने दी है?"

"बहूजी ने।" नौकर का इशारा बिनोदिनी की तरफ़ था।

"देखूँ ज़रा।" चिट्ठी ले ली। जी में आया, फाड़कर उसे पढ़े। लेकिन फिर महेन्द्र ने उसे उलट-पलटकर देखने के बाद नौकर की तरफ़ फेंक दिया।

अगर महेन्द्र ने चिट्ठी पढ़ी होती तो उसे पता चल जाता कि वह उसी की माँ के बारे में थी। बिनोदिनी ने बिहारी को लिखा था कि महेन्द्र की माँ अपना निर्धारित पथ्य नहीं ले रही थीं। क्या उन्हें अब दाल दी जा सकती थी। बिनोदिनी महेन्द्र से उसकी माँ की बीमारी के बारे में चर्चा नहीं करती थी और पूरी तरह बिहारी पर निर्भर थी।

महेन्द्र की नाखुशी बरकरार रही। एक दिन बरामदे में कुछ देर चहलकदमी करके कमरे में आकर महेन्द्र ने देखा, दीवार पर टँगी एक तस्वीर की डोरी टूटने वाली है और इसकी वजह से तस्वीर टेढ़ी हो गयी है। आशा को डाँटते हुए महेन्द्र ने कहा—"तुम कुछ भी नहीं देखतीं। इसी तरह घर में सारी चीज़ें बर्बाद हो रही हैं।"

दूसरे मौके पर उसने देखा कि दमदम से लाये फूलों का जो गुच्छा बनाकर बिनोदिनी ने पीतल के फूलदान में सजाया था, वह आज भी वहीं सूखा पड़ा है। महेन्द्र कभी इन बातों पर गौर नहीं करता था, आज उसकी निगाह उस पर पड़ी। बोला—"जब तक बिनोदिनी आकर फेंक न दे, यह पड़ा ही रहेगा।"

उसने फूल-समेत फूलदान उठाकर बाहर फेंक दिया। ठन्-ठन् बजता वह सीढ़ी पर लुढ़कता जा पड़ा। 'आशा मेरे मन के लायक क्यों नहीं रहती, क्यों वह मेरे मन-मुताबिक काम नहीं करती?'

महेन्द्र ने देखा कि आशा पीली पड़ गयी थी और उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। फिर वह तेज़ी से कमरे के बाहर भाग गयी। महेन्द्र को पछतावा होने लगा। वह बाहर निकला। जाकर फूलदान उठा लाया। कोने में उसकी मेज़ पड़ी थी। वह कुर्सी पर बैठकर उसी टेबल पर कोहनी टिकाए हाथों पर सिर रखे देर तक बैठा रहा।

अँधेरा होने पर कमरे में बत्ती आई, लेकिन आशा नहीं। महेन्द्र छत पर ज़ोर-ज़ोर से चहल-कदमी करने लगा। रात के नौ बजे, महेन्द्र के सूने कमरे में आधी रात का सन्नाटा छा गया—आशा फिर भी न आई। महेन्द्र ने बुलावा भेजा। सकुचाई-सी आकर वह छत पर दरवाज़े के पास ठिठक गयी। महेन्द्र पास गया—उसे छाती से लगा लिया। पति के कलेजे से लगकर वह ज़ोरों से रो पड़ी—अपने को ज़ब्त न कर सकी, आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। कलेजे से लगाकर महेन्द्र ने उसके बालों को चूमा—मौन आसमान के सितारे चुपचाप देखते रहे।

रात को महेन्द्र ने बिस्तर पर बैठकर बताया—"कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है, कुछ दिनों के लिए मुझे कॉलेज के ही आस-पास कहीं डेरा लेना पड़ेगा।"

आशा सोचने लगी—"गुस्सा शायद अभी तक बना हुआ है? मुझ पर नाराज़ होकर तो नहीं जा रहे? आखिर गुणहीन मैं। पति को घर से रुखसत करके ही रही! मेरा तो मर जाना ही अच्छा था।"

लेकिन महेन्द्र के हाव-भाव में गुस्से का कोई लक्षण न दिखा। बड़ी देर तक वह चुप रहा। आशा के मुखड़े को कलेजे से लगाकर उसने उसके जूड़े को ढीला कर दिया। पहले प्यार से महेन्द्र इसी तरह आशा का जूड़ा खोल दिया करता था—आशा इस पर एतराज़ करती थी। आज मगर उसने चूँ भी न की। अचानक उसके कपाल पर आँसू की एक बूँद टपक पड़ी। महेन्द्र ने उसका मुँह अपनी ओर फेरकर स्नेह से रुँधे स्वर में पुकारा —"चुन्नी!"

आशा को कोई जवाब न मिला। अपने कोमल हाथों से उसने कसकर महेन्द्र को दबा लिया। महेन्द्र ने कहा—"मुझसे गलती हो गयी, माफ़ कर दो।"

अपने फूल-से सुकुमार हाथ से महेन्द्र के होंठों को दबाती हुई वह बोली—"छिः, ऐसा न कहो! तुमने कोई कसूर नहीं किया। कसूर मेरा है। मुझे तुम अपनी दासी की तरह

फटकारो। मुझे अपने चरणों में रहने लायक बना लो!"

जिस दिन जाना था, सुबह जगते समय महेन्द्र ने कहा—"चुन्नी, मेरी रतन, तुम्हें मैं अपने हृदय में सबसे ऊपर रखूँगा। कोई तुमसे आगे नहीं जा सकेगा।"

कलेजे को कड़ा करके सब तरह का त्याग करने को तैयार होकर उसने पति से अपनी एक निहायत मामूली-सी माँग की। बोली—"मुझे रोज़-रोज़ चिट्ठी लिखना!"

महेन्द्र ने पूछा—"तुम भी लिखोगी?"

आशा ने कहा—"मैं क्या लिखना जानती हूँ?"

उसके कान के पास की लट को सरकाता हुआ महेन्द्र बोला—"तुम 'चारूपाठ' के लेखक अक्षय कुमार दत्त से भी अच्छा लिख सकती हो!"

आशा ने कहा—"मज़ाक रहने दो, हाँ।"

जाने के पहले आशा उत्साह के साथ महेन्द्र का सामान सहेजने लगी। मोटे-मोटे गरम कपड़ों की तह बनाना कठिन था, बक्स में सबका समाना और भी कठिन। दोनों ने मिलकर दबा—दुबूकर जो एक बक्स में आ जाता, उसे दो बक्सों में रखा। फिर भी भूल से जो चीज़ें छूट गयीं, उनकी कई गठरियाँ अलग से बन गयीं। इससे आशा शर्म महसूस करती रही, तो भी आपस की छीना-झपटी और हँस-हँसकर एक-दूसरे को दोषी ठहराने में आनन्द के पिछले दिन लौट आए। ज़रा देर के लिए आशा यह भूल गयी कि यह तैयारी विदाई की है। साईस कम-से-कम दस बार जता गया कि गाड़ी तैयार है, मगर कौन सुनता है। अन्त में खिन्न होकर बोला—"जाओ, खोल दो घोड़ों को।"

सुबह से तीसरा पहर हो गया और अब साँझ होने को आई। तब कहीं एक दूसरे को सेहत का खयाल रखने की ताकीद करके, नियम से चिट्ठी लिखने का बार-बार वादा करके, भारी हृदय लिये दोनों जुदा हुए। महेन्द्र अपनी माँ से मिलने चला।

दो-दिन हुए, राजलक्ष्मी उठने-बैठने लगी हैं। शाम को बदन पर एक मोटी चादर लपेटे बिनोदिनी के साथ ताश खेल रही थीं। आज उन्हें कोई हरारत न थी। महेन्द्र कमरे में आया। बिनोदिनी की तरफ़ उसने बिल्कुल नहीं देखा। माँ से बोला—"माँ, कॉलेज में मेरी रात की ड्यूटी लगी है। यहाँ से आते-जाते नहीं बनता—कॉलेज के पास ही एक डेरा ले लिया है। आज से वहीं रहूँगा।"

राजलक्ष्मी को बुरा लगा कि महेन्द्र ने उन्हें पहले बताना ज़रूरी नहीं समझा। अन्दर से रूठकर बोलीं—"जाओ, पढ़ाई में हर्ज होगा तो रह भी कैसे सकते हो!"

बीमारी तो उनकी जाती रही थी, लेकिन जैसे ही उन्होंने सुना कि महेन्द्र जा रहा है, अपने को बीमार और कमज़ोर महसूस करने लगीं। बिनोदिनी से कहा—"ज़रा तकिया तो इधर खिसका दो, बिटिया!"

और वे तकिये का सहारा लेकर लेट गयीं। बिनोदिनी धीरे-धीरे उनके बदन पर हाथ फेरने लगी।

चिन्ता से महेन्द्र ने उनके माथे पर हाथ रखा कि उन्हें बुखार तो नहीं है; फिर वह उनकी कलाई पकड़ कर नब्ज़ देखने को हुआ तो उन्होंने झटके से कलाई हटा ली और कहा, "नाड़ी से क्या खाक पता चलता है। तू मेरी चिन्ता छोड़, मैं ठीक हूँ।"

यह कह कर उन्होंने करवट बदल कर मुँह दीवार की तरफ़ कर लिया। महेन्द्र ने बिनोदिनी से कुछ नहीं कहा, बस, माँ को प्रणाम करके चला गया।

18

महेन्द्र की प्रकट उदासीनता ने बिनोदिनी को सोच-विचार में डाल दिया। तरह-तरह की तरंगें उसके मन में उठने लगीं। 'आखिर माजरा क्या है?' उसने सोचा, 'मान या गुस्सा या डर, पता नहीं क्या? मुझे दिखाना चाहते हैं कि वे मेरी परवाह नहीं करते? बाहर जाकर रहेंगे? अच्छा, यही देखना है, कितने दिन?'

लेकिन खुद उसके मन में भी बेचैनी की लहर उठने लगी।

अब तक वह रोज ही महेन्द्र पर नया फंदा फेंका करती, उसे तरह-तरह के तीरों से वेधा करती थी। उस काम के चुक जाने से वह छटपटाने लगी। सारा नशा ही उतर गया। महेन्द्रविहीना आशा उसके लिए बिल्कुल स्वादरहित थी। आशा को महेन्द्र जितना प्यार करता था, वह बिनोदिनी के प्यार के भूखे हृदय को मथा करता था। जिस महेन्द्र ने उसके जीवन की सार्थकता को चौपट कर दिया, जिसने उस जैसी नारी की उपेक्षा करके आशा जैसी मंदबुद्धि बालिका को अपनाया—उस महेन्द्र को बिनोदिनी चाहती है या उससे चिढ़ती है, उसे इसकी सज़ा देगी या छोड़ देगी, वह नहीं जानती। महेन्द्र ने उसके हृदय में एक आग लहकाई है, वह आग ईर्ष्या की है या प्रेम की या दोनों की, यह वह सोच न पाती। वह मन-ही-मन तीखी हँसी हँसकर कहती—'मुझ-जैसी दशा किसी भी औरत की नहीं हुई होगी। मैं यही नहीं समझ सकी कि मैं मारना चाहती हूँ कि मरना।' लेकिन चाहे जिस वजह से भी हो, जलने के लिए या जलाने के लिए, महेन्द्र की उसे नितान्त आवश्यकता थी। गहरा निःश्वास छोड़ती हुई बिनोदिनी बोली—'बच्चू जाएगा कहाँ? उसे आना पड़ेगा। वह मेरा है।'

घर की सफाई के बहाने शाम को आशा महेन्द्र के कमरे में उसकी किताबें, उसकी तस्वीर आदि सामानों को छू-छा रही थी, अपने अँचरे से उन्हें झाड़-पोंछ रही थी। महेन्द्र की चीज़ों को बार-बार छूकर, कभी उठाकर कभी रखकर अपने बिछोह की साँझ बिता रही थी। बिनोदिनी खामोशी से धीरे-धीरे उसके पास आकर खड़ी हो गयी। आशा शर्मा गयी। छूना तो उसने छोड़ दिया और कुछ ऐसा जताया मानो वह कुछ खोज रही है। बिनोदिनी ने हँसकर पूछा—"क्या हो रहा है, बहन?"

होंठों पर हल्की हँसी लाकर आशा ने कहा—"कुछ भी नहीं।"

बिनोदिनी ने उसे गले लगाया। पूछा—"भई आँख की किरकिरी, यह बताओ, देवरजी इस तरह घर से चले क्यों गए?"

बिनोदिनी के इस सवाल से ही आशा शंकित हो उठी। कहा—"तुम्हें तो मालूम है।

जानती ही हो, काम का दबाव रहता है। अस्पताल में रात की ड्यूटी लगी है।"

दाहिने हाथ से आशा की ठुड्डी उठाकर, इस तरह सन्न होकर उसे देखा मानो उसका हृदय आशा के लिए करुणा से पिघल रहा हो। इसी तरह उसने आशा को देख कर लम्बी-लम्बी साँसें लीं।

आशा का दिल बैठ गया। वह अपने को अबोध और बिनोदिनी को चतुर समझा करती थी। बिनोदिनी के चेहरे का भाव देखकर उसके लिए सारा संसार अंधकारमय हो गया। बिनोदिनी से साफ-साफ़ कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ी। दीवार के पास एक सोफ़े पर बैठ गयी। बिनोदिनी भी बगल में बैठी। उसे अपने कलेजे से जकड़ लिया। सखी के इस आलिंगन से वह अपने-आपको सँभाल न सकी। दोनों के आँसू झरने लगे। दरवाज़े पर अन्धा भिखारी मँजीरा बजाता हुआ गा रहा था, 'तरने को अपने चरणों की तरणी दे माँ, तारा!'

बिहारी महेन्द्र की तलाश में आया था। दरवाज़े से ही उसने देखा, आशा रो रही है और बिनोदिनी उसे अपनी छाती से लगाए उसके आँसू पोंछ रही है। देखकर बिहारी वहाँ से खिसक गया। बँगले के अँधेरे कमरे में जाकर बैठ गया। दोनों हथेलियों से अपना सिर दबाकर सोचने लगा, 'आशा आखिर रो क्यों रही है? जो बेचारी स्वभाव से ही कोई कसूर करने में असमर्थ है, ऐसी नारी को भी जो रुलाए उसे क्या कहा जाए।' बिनोदिनी का उस तरह सांत्वना देना, उसका निःस्वार्थ सखी-प्रेम—यह सब देखकर वह अभिभूत हो गया।

बड़ी देर तक वह अँधेरे में बैठा रहा। अन्धे भिखारी का गाना जब बन्द हो गया तो वह पैर पटककर खाँसता हुआ महेन्द्र के कमरे की तरफ़ बढ़ा। द्वार पर पहुँचा भी न था कि आशा घूँघट काढ़कर अन्तःपुर की ओर भाग गयी।

अन्दर पहुँचते ही बिनोदिनी ने पूछा—"अरे, क्या आपकी तबीयत खराब है, बिहारी बाबू?"

बिहारी—"नहीं तो।"

बिनोदिनी—"फिर आँखें ऐसी लाल क्यों हैं?"

बिहारी ने इस बात का जवाब नहीं दिया। पूछा—"बिनोद भाभी, महेन्द्र कहाँ गया?"

बिनोदिनी गम्भीर होकर बोली—"सुना है, कॉलेज में काम ज़्यादा है। इसलिए उन्होंने वहीं कहीं पास में डेरा ले लिया है। अच्छा, मैं चलूँ!"

अनमना बिहारी दरवाज़े के सामने राह रोककर खड़ा हो गया था। चौंककर वह जल्दी से हट गया। शाम के वक्त बाहर से सूने कमरे में इस तरह बिनोदिनी से बात करना लोगों को अच्छा न लगेगा—अचानक उसे इसका ध्यान आया। तो भी जाते-जाते बिहारी इतना कह गया—"बिनोद भाभी, आशा का खयाल रखिएगा। सीधी है बेचारी। उसे किसी को न तो चोट पहुँचाना आता है, न चोट से अपने को बचाना।"

अँधेरे में बिहारी बिनोदिनी का चेहरा न देख पाया। देख पाता तो उसे नज़र आता कि वहाँ तीखी ईर्ष्या के भाव उभर आए थे। आज बिहारी पर नज़र पड़ते ही वह समझ गयी थी कि आशा के लिए उसका हृदय दुःखी है। बिनोदिनी आप कुछ नहीं! उसका जन्म

आशा को सुरक्षित रखने, उसकी राहों के काँटों को बीनने के लिए ही हुआ है! श्रीमान् महेन्द्र बाबू आशा से विवाह करें, इसीलिए किस्मत की मार से बिनोदिनी को बारासत के बर्बर बन्दर के साथ वनवास लेना पड़ेगा। और श्रीमान् बिहारी बाबू से आशा की आँखों में आँसू नहीं देखे जाते, सो बिनोदिनी को अपना दामन उठाए सदा तैयार रहना पड़ेगा! वह महेन्द्र और बिहारी को एक बार अपने पीछे की छाया के साथ धूल में पटककर बताना चाहती है कि यह आशा कौन है, और कौन है बिनोदिनी! दोनों में कितना फर्क है! दुर्भाग्य से बिनोदिनी अपनी प्रतिभा को किसी पुरुष-हृदय के राज्य में विजयी बनाने का अवसर नहीं पा सकी, इसलिए उसे घातक अस्त्र-शस्त्र ले कर संहारमूर्ति धारण करनी पड़ेगी।

बड़े ही मीठे स्वर में बिनोदिनी ने मुड़ कर बिहारी को कहा—"आप बेफिक्र रहें, बिहारी बाबू! मेरी आँख की किरकिरी के लिए इतनी चिन्ता करके आप नाहक इतना कष्ट न उठाएँ।"

19

नयी जगह पर आने के बाद जल्दी ही महेन्द्र को एक चिट्ठी मिली। उस पर पहचाने अक्षर देखकर वह चौंक गया। दिन में बहुत-से अधूरे कामों को पूरा करने में फँसे रहने की वजह से उसने उसे खोला नहीं—जेब में डाल लिया। कॉलेज के लेक्चर सुनते हुए, अस्पताल का चक्कर काटते हुए यक-ब-यक उसे ऐसा महसूस होता कि उसके दिल के घोंसले में मुहब्बत की एक चिड़िया सो रही है। उसे जगाया नहीं कि उसकी मीठी चहक कानों में गूँज उठेगी।

शाम को अपने सूने कमरे में महेन्द्र लैम्प की रोशनी में आराम से कुर्सी पर बैठा। अपनी देह के ताप से तपी उस चिट्ठी को बाहर निकला। देर तक उसने उसे खोला नहीं, मगर गौर से देखता रहा। उसे पता था कि खत में खास कुछ है नहीं। ऐसी सम्भावना ही नहीं कि आशा अपने मन की बात सुलझकर लिख सकेगी। उसके टेढ़े-मेढ़े अक्षरों और आड़ी-तिरछी पंक्तियों से उसके मन के भावों की कल्पना कर लेनी होगी। आशा के कच्चे हाथों, बड़े जतन से लिखे अपने नाम में महेन्द्र को एक रागिनी सुनाई पड़ी—"साध्वी नारी के मन के गहन बैकुण्ठ से उठने वाला पावन प्रेम-संगीत।"

दो ही चार दिनों की जुदाई से महेन्द्र के मन का वह अवसाद चला गया था। सरल आशा के नवीन प्रेम की स्मृति फिर ताजा हो गयी। पिछले दिनों गृहस्थी की रोज़मर्रा की असुविधाएँ उसे खिझाने लगी थीं, अब वह सब मिट गया, बस कर्म और कारणहीन एक विशुद्ध प्रेमानंद की जोत में आशा की मानसी मूर्ति उसके मन में जीवन्त हो उठी।

महेन्द्र ने लिफाफे को इत्मिनान से खोला। उसमें से चिट्ठी निकालकर अपने गाल और कपाल से लगाई। महेन्द्र ने जो खुशबू कभी आशा को भेंट की थी, अकुलाए निःश्वास-सी उसी की महक खत में से निकलकर महेन्द्र के प्राणों में पैठ गयी।

खत खोलकर पढ़ा। अरे जैसी टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियाँ हैं, वैसी भाषा तो नहीं है! अक्षर कच्चे, मगर उनसे बातों का मेल कहाँ? लिखा था—

"प्रियतम, जिसे भूलने के लिए घर से चल दिए, इस लिखावट से उसकी याद क्यों दिलाऊँ? जिस लता को तुमने उपेक्षा से उखाड़ कर माटी में फेंक दिया, क्या मुँह ले कर वह फिर तने को जकड़कर उठने की कोशिश करे! क्यों न वह मिट्टी में मिलकर मिट्टी ही बन जाए!

"लेकिन इससे तुम्हारा क्या नुकसान होगा नाथ, लम्हे-भर को याद ही आ गयी तो! उससे जी को चोट भी कितनी लगेगी! मगर तुम्हारी उपेक्षा काँटे-सी मेरी

पसलियों में चुभकर रह गयी है! तुम जिस तरह भूल बैठे, मुझे भी उसी तरह भुलाने की तरकीब बता दो।

"नाथ, तुमने मुझे प्यार किया था, यह क्या मेरा ही कसूर था! ऐसे सौभाग्य की मैंने स्वप्न में भी आशा की थी क्या? मैं कहाँ से आई, मुझे कौन जानता था? मुझे तुमने अगर नज़र उठाकर न देखा होता, मुझे अगर यहाँ मुफ्त की बाँदी बनकर रहना होता, तो भी मैं क्या तुम्हें दोष दे सकती थी? जाने मेरे किस गुण पर तुम खुद ही मुग्ध हो गये, प्रियतम क्या देखकर तुमने मेरा इतना मान बढ़ाया, इतना लाड़ किया? और आज अगर बिना मेघ के बिजली ही कड़की, तो उस बिजली ने सिर्फ़ झुलसा कर ही क्यों छोड़ दिया? तन-मन को बिल्कुल राख क्यों न कर डाला?

"इन दो दिनों में बेहद सब्र किया, बहुत सोचती रही, लेकिन एक बात न समझ सकी कि यहाँ रहकर भी क्या तुम मुझे ठुकरा नहीं सकते थे? मेरे लिए भी क्या घर छोड़कर जाने की ज़रूरत थी? क्या मैं तुम्हें इतना घेरे हूँ? मुझे अपने कमरे के कोने में, दरवाज़े के बाहर फेंक देने पर भी क्या मैं तुम्हारी नज़र में आती? यही था, तो तुम फिर गए क्यों? मेरे कहीं जाने का क्या कोई उपाय न था? बहकर आई थी, बहकर चली जाती...."

यह चिट्ठी कैसी है! भाषा किसकी थी, महेन्द्र को यह समझते देर न लगी। महेन्द्र उस पत्र को लिये-लिये स्तंभित रहा।

बड़ी देर तक सोचता रहा। खत को उसने कई बार पढ़ा। कुछ दिनों तक जो दूर के आभास की तरह रहा, आज वह साफ़ प्रकट होने लगा। उसकी ज़िन्दगी के आसमान के एक कोने में जो धूमकेतु छाया की तरह उभरा था, आज उसकी पूँछ आग की रेखाओं में जलती हुई साफ़-साफ़ दिखाई पड़ी।

चिट्ठी यह असल में बिनोदिनी की है। भोली आशा ने इसे अपनी बात समझकर लिखा है। पहले जिन बातों को उसने कभी सोचा नहीं, बिनोदिनी के लिखाने से वे ही बातें उसके मन में जाग उठीं। जो नई वेदना पैदा हुई, उसे इस खूबी के साथ आशा तो हर्गिज़ ज़ाहिर नहीं कर सकती थी। वह सोचने लगी, 'सखी ने मेरे मन की बात को ऐसा ठीक-ठीक कैसे समझ लिया! और, इतना ठीक से ज़हिर कैसे किया!' वह अपनी अन्तरंग सखी को और भी मजबूत सहारे की तरह पकड़ बैठी। क्योंकि जो बात उसके मन में है, उसकी भाषा उसकी सखी के पास है—इतनी बेबस थी वह!

महेन्द्र कुर्सी से उठा। भवों पर बल डाला। बिनोदिनी पर क्रोध करने की कोशिश की। मगर बीच में आशा पर गुस्सा आ गया। आशा की मूर्खता तो देखो, पति पर यह कैसा जुल्म! वह फिर बैठ गया और इस बात के सबूत में उस खत को फिर से पढ़ गया। अन्दर-ही-अन्दर खुशी होने लगी। यह समझकर उसने चिट्ठी को पढ़ने की बहुत चेष्टा की, मानो वह आशा की ही लिखी हो। लेकिन इसकी भाषा किसी भी तरह से भोली आशा की याद नहीं दिलाती। दो-चार पंक्तियाँ पढ़ते ही उफनती हुई झाग वाली मदिरा जैसा सुख से पागल कर देने वाला सन्देह मन को ढाँप लेता। प्रेम की इस प्रतीति ने महेन्द्र को मतवाला बना दिया। उसे महसूस होने लगा चाहे खुद के प्रति हिंसा करके ही मन को किसी और तरफ़ लगा दे। उसने मेज़ पर ज़ोरों का मुक्का मारा और उछलकर खड़ा हो गया। बोला

—‘हटाओ, चिट्ठी को जला डालें।’ चिट्ठी को वह लैम्प के करीब ले गया। जलाया नहीं, फिर एक बार पढ़ गया। अगले दिन नौकर कागज़ की बहुत-सी राख उठा ले गया था, लेकिन यह राख आशा की चिट्ठियों की न थी, उसके उत्तर की कई अधूरी कोशिशों की राख थी, जिन्हें अन्त में महेन्द्र ने जला दिया था।

20

इस बीच आशा की और एक चिट्ठी आ पहुँची—

"तुमने मेरे पत्र का जवाब नहीं दिया? अच्छा ही किया। सही बात लिखी तो नहीं जाती; तुम्हारा जो जवाब है, उसे मैंने मन में समझ लिया। भक्त जब अपने देवता को पुकारता है तो देवता क्या ज़बान से कुछ कहते हैं? लगता है, दुखिया की तुलसी को चरणों में जगह मिल गयी।

"लेकिन भक्त की पूजा से कहीं शिव की तपस्या टूटती हो तो मेरे हृदय के देवता, नाराज़ न होना! वरदान दो या न दो, आँखें उठाकर निहारो या न निहारो, जान सको या न जान सको—पूजा किए बिना भक्त की दूसरी गति नहीं। इसलिए आज भी दो पंक्तियाँ लिख भेजती हूँ—हे! मेरे पत्थर के देवता तुम अडिग ही रहो!"

महेन्द्र फिर जवाब लिखने बैठा। लेकिन पत्र को आशा के नाम लिखते हुए कलम की नोक पर जवाब बिनोदिनी का आ जाता। कुछ भी सोचता तो मन में छवि आशा की जगह पर बिनोदिनी की उभर आती। चालाकी से इधर-उधर की हाँकते हुए उससे लिखते नहीं बनता। लिख-लिखकर बहुत-से पन्ने फाड़ डाले। एक लिखा भी गया तो उसे लिफाफे में भरकर आशा का नाम लिखते हुए अचानक किसी ने उसकी पीठ पर चाबुक जमाया —'बेईमान! ऐसी विश्वासी बालिका से इस तरह दगा!' महेन्द्र ने पत्र को टुकड़े करके फेंक दिया और बाकी रात मेज़ पर दोनों हथेलियों में मुँह छिपाए अपने को मानो अपनी ही नज़र से छिपाने की कोशिश करता रहा।

तीसरा पत्र भी चला आया:

"रूठना जो कतई नहीं जानता, वह भी क्या प्यार करता है? अपने प्यार को अनादर और अपमान से बचाए न रख सकूँ तो वह तुम्हें दूँगी कैसे?

"शायद तुम्हारे मन को ठीक-ठीक समझ नहीं पाई हूँ, तभी इतनी हिम्मत कर सकी हूँ। तुम छोड़ गए तो भी मैंने ही बढ़कर चिट्ठी लिखी; जब तुम चुप हो गए थे, तब भी मन की कह गयी हूँ। मगर तुम्हारे साथ अगर गलती की है, तो वह भी क्या मेरा ही कसूर है? शुरू से आखिर तक सारी बातें एक बार दुहराकर देखो तो सही कि मैंने जो कुछ समझा था, वह तुम्हीं ने नहीं समझाया क्या?

"चाहे जो हो, गलत हो या सही, जो लिखा है, वह मिटने का नहीं, जो दिया है, वह वापस नहीं ले सकूँगी, यही शिकायत है। छिः-छिः ऐसी शर्म भी नारी के नसीब में आती है। लेकिन इससे यह हर्गिज़ न समझना कि जो प्यार करती है, वह अपने

प्यार को बार-बार अपमानित कर सकती है। साफ़ बताओ कि मेरी चिट्ठी की चाहत नहीं हो तो बताओ और इसका जवाब न मिला तो यहीं तक बस।"

महेन्द्र से और न रहा गया। मन में बोला—'खूब नाराज़ होकर ही घर लौट रहा हूँ। बिनोदिनी का खयाल है, मैं उसे भूलने के लिए घर से भाग खड़ा हुआ हूँ।' उसकी इस हेकड़ी को भुलाने के लिए ही महेन्द्र ने उसी दम घर लौट जाने का संकल्प किया।

इतने में अचानक ही बिहारी आ गया। उसे देखते ही महेन्द्र के मन की उमंग दुगुनी हो गयी। अब तक सन्देहों के चलते बिहारी से उसे ईर्ष्या होती रही थी और दोनों में गाँठ पड़ती जा रही थी। दोनों के बीच मित्रता भी मुश्किल होने लगी थी। चिट्ठी पढ़ने के बाद बदली हुई मनःस्थिति में उसने खुले दिल से बिहारी का स्वागत किया, हाथ से पकड़ कर अपने पास बैठा लिया।

लेकिन बिहारी का चेहरा आज उतरा हुआ था। महेन्द्र ने सोचा, 'बेचारे ने इस बीच बिनोदिनी से ज़रूर मुलाकात की होगी और वहाँ से ठोकर खाकर आया है!' उसने पूछा —"क्यों भाई, इस बीच मेरे घर गए थे कभी?"

बिहारी ने कहा—"वहीं से होकर आ रहा हूँ अभी।"

मन-ही-मन बिहारी की पीड़ा का अनुमान करके महेन्द्र को अच्छा न लगा। उसने मन में कहा—'अभागा! किसी महिला ने कभी उसे नहीं चाहा।' फिर भी उसने बातचीत शुरू करते हुए पूछा—"कैसे हैं सब?"

इस बात का जवाब देने की बजाय बिहारी ने पूछा—"घर छोड़कर अचानक यहाँ?"

महेन्द्र ने कहा—"इधर लगातार नाइट-ड्यूटी पड़ रही है—वहाँ दिक्कत हो रही थी।"

बिहारी बोला—"नाइट-ड्यूटी तो इसके पहले भी पड़ी है, मगर घर छोड़ते तो नहीं देखा कभी?"

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"क्यों, कोई शक हो रहा है।"

बिहारी बोला—"मज़ाक न करो। तुम्हें कहीं नहीं रहना है। चलो इसी वक्त घर चलो।"

घर जाने को तो वह तैयार ही बैठा था; मगर बिहारी ने आग्रह किया तो वह मना कर गया, गोया घर जाने की उसे ज़रा भी इच्छा नहीं। बोला—"पागल हुए हो, मेरे एक साल पर पानी फिर जाएगा।"

बिहारी ने कहा—"देखो महेन्द्र भैया, मैं तुम्हें तब से देखता आया हूँ, जब तुम छोटे-से थे। मुझे फुसलाने की कोशिश न करो! तुम ज़ुल्म कर रहे हो।"

महेन्द्र—"ज़ुल्म कर रहा हूँ, किस पर, जज साहब!"

बिहारी नाराज़ होकर बोला—"तुम सदा दिल की तारीफ करते आए हो, अब तुम्हारा दिल कहाँ गया?"

महेन्द्र—"फिलहाल तो अस्पताल में है।"

बिहारी—"चुप रहो! तुम यहाँ हँस-हँसकर मुझसे मज़ाक कर रहे हो और वहाँ तुम्हारी आशा तुम्हारे कमरे में रोती फिर रही है।"

आशा के रोने की बात सुनकर अचानक महेन्द्र को धक्का लगा। अपने नये नशे में उसे इसकी सुध न थी कि दुनिया में और भी किसी का सुख-दुःख है। वह चौंका! पूछा —"आशा क्यों रो रही है?"

बिहारी ने अपनी आँखों जो कुछ देखा, आदि से अन्त तक कह सुनाया। उसे याद आ गया कैसे बिनोदिनी से लिपटकर आशा की आँखें बह रही थीं। उसका गला रुँध गया। महेन्द्र को खूब पता था कि आशा का मन वास्तव में किधर है!

महेन्द्र बोला—"खैर चलो। गाड़ी बुला लो!"

21

महेन्द्र घर पहुँचा। उसका चेहरा देखते ही आशा के मन का सारा सन्देह कुहरे के समान एक ही क्षण में फट गया। अपनी चिट्ठियों की बात सोचकर महेन्द्र के सामने मारे शर्म के वह सिर न उठा सकी। इस पर महेन्द्र ने शिकवा किया—"ऐसे आरोप लगाकर तुमने चिट्ठियाँ लिखीं कैसे!"

और उसने जाने कितनी बार पढ़ी हुई वे तीनों चिट्ठियाँ अपनी जेब से निकालीं। आशा ने गिड़गिड़ाकर कहा—"तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, इन चिट्ठियों को फाड़ फेंको!"

महेन्द्र से उन चिट्ठियों को ले लेने के लिए वह उतावली हो गयी। महेन्द्र ने उसे रोककर चिट्ठियों को जेब के हवाले किया। कहा—"मैं काम से गया और तुमने मेरा मतलब ही नहीं समझा? मुझ पर सन्देह किया?"

छलछलाती आँखों से आशा बोली—"अबकी बार मुझे माफ़ कर दो! आइन्दा ऐसा न होगा।"

महेन्द्र ने कहा—"कभी नहीं?"

आशा बोली—"कभी नहीं।"

महेन्द्र ने उसे अपने पास खींचकर चूम लिया। आशा बोली—"लाओ, चिट्ठियाँ दे दो, फाड़ डालूँ!"

महेन्द्र बोला—"रहने दो उन्हें।"

आशा ने समझा—'मेरी सज़ा के रूप में इन्होंने चिट्ठियाँ रख ली हैं।'

चिट्ठियों के चलते आशा का मन बिनोदिनी की तरफ़ से ज़रा फिर गया। पति लौट आए, यह खबर वह बिनोदिनी से कहने न गयी, बल्कि उससे कतराती रही। बिनोदिनी इसे ताड़ गयी और काम के बहाने बिल्कुल दूर ही रही।

महेन्द्र ने सोचा—'अजीब है! सोचा था, अबकी बार बिनोदिनी को मज़े से देख पाऊँगा, लेकिन उलटा ही हुआ। फिर उन चिट्ठियों का मतलब?'

महेन्द्र ने अपने मन को इसके लिए सख्त बनाया था कि नारी के दिल को अब कभी समझने की कोशिश नहीं करेगा। सोच रखा था, 'बिनोदिनी पास आना भी चाहेगी तो मैं दूर-दूर रहूँगा।' लेकिन फिर उसके जी में आया, 'न, यह तो ठीक नहीं हो रहा है—सचमुच ही हम लोगों में कोई विकार आ गया है। खुले दिल से बिनोदिनी के साथ बातचीत, हँसी-दिल्लगी करके सन्देह की इस घुटन को मिटा डालना ही ठीक है।' उसने आशा से कहा

—"लगता है, मैं ही तुम्हारी सखी की आँख की किरकिरी हो गया। उनकी तो अब झाँकी भी नहीं दिखाई पड़ती।"

उदास होकर आशा बोली—"जाने उसे क्या हो गया है!"

इधर राजलक्ष्मी आकर रोनी-सी होकर बोलीं—"बेटी, अब तो विपिन की बहू को रोकना मुश्किल हो रहा है।"

"क्यों माँ, क्या गड़बड़ हो गयी अब?" महेन्द्र बेचैन हुआ, लेकिन उसने अपनी बेचैनी प्रकट नहीं की।

राजलक्ष्मी बोलीं—"मुझे क्या पता। बेटा, वह तो अबकी बार अपने घर जाने के लिए अड़ गयी है। तुझे तो किसी की खातिरदारी आती नहीं। एक पराई लड़की अपने घर आई है, उसका अगर घर के लोगों जैसा आदर-मान न हो तो रहे कैसे?"

बिनोदिनी सोने के कमरे में बिछौने की चादर सी रही थी। महेन्द्र वहाँ गया। आवाज़ दी—"किरकिरी!"

बिनोदिनी सँभलकर बैठी। पूछा—"जी, महेन्द्र बाबू!"

महेन्द्र ने कहा—"अजीब मुसीबत है! ये हज़रत महेन्द्र बाबू कब से हो गए!"

अपनी सिलाई में आँखें गड़ाए हुए ही बिनोदिनी बोली—"फिर क्या कहकर पुकारूँ आपको?"

महेन्द्र ने कहा—"जिस नाम से अपनी सखी को पुकारती हो—'आँख की किरकिरी'!"

और दिन की तरह बिनोदिनी ने मज़ाक करके कोई जवाब न दिया। वह अपनी सिलाई में लगी रही।

महेन्द्र ने कहा—"लगता है, वही सच्चा रिश्ता है, तभी तो दुबारा जुड़ पा रहा है।"

बिनोदिनी ज़रा रुकी। सिलाई के किनारे से बढ़ रहे धागे के छोर को दाँतों से काटती हुई बोली—"मुझे क्या पता, आप जानें!"

और दूसरे जवाबों को टालकर गम्भीरता से पूछ बैठी—"कॉलेज से एकाएक कैसे लौट आए?"

महेन्द्र बोला—"केवल लाश की चीर-फाड़ से कब तक चलेगा?"

बिनोदिनी ने फिर दाँत से सूत काटा और उसी तरह सिर झुकाए हुए बोली—"तो अब ज़िन्दों की ज़रूरत है?"

महेन्द्र ने सोचा था, 'आज बिनोदिनी से बड़े सहज ढंग से हँसी-मज़ाक करूँगा' लेकिन बोझ इतना हो गया कि लाख कोशिश करके भी हल्का जवाब ज़बान पर न आ सका। बिनोदिनी आज कैसी दूरी रखकर चल रही है, यह देखकर महेन्द्र उद्वेलित हो गया। इच्छा होने लगी, एक झटके से इस रुकावट को मटियामेट कर दे। उसने बिनोदिनी की कटी हुई वाक्य-चिकोटी का कोई जवाब न दिया—अचानक उसके पास जा बैठा। बोला—"तुम हम लोगों को छोड़कर जा क्यों रही हो? कोई अपराध हो गया है मुझसे!" बिनोदिनी इस पर ज़रा खिसक गयी। सिलाई से सिर उठाकर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें महेन्द्र की ओर लगाकर कहा—"काम-धन्धा तो हर किसी को है। आप सब

छोड़कर कहीं और रहने चले दिए। वह क्या किसी अपराध से कम है।"

महेन्द्र को कोई अच्छा जवाब ढूँढे न मिला। ज़रा देर चुप रहकर पूछा—"ऐसा क्या काम पड़ा है कि गए बिना होगा ही नहीं?"

बड़ी सावधानी से सुई में धागा डालती हुई वह बोली—"काम है या नहीं, यह मैं ही जानती हूँ। आपको उसकी फेहरिस्त क्या दूँ!"

महेन्द्र खिड़की से बाहर चिन्तित-सा बड़ी देर तक एक नारियल की फुनगी पर नज़र टिकाए चुप बैठा रहा। बिनोदिनी चुपचाप सिलाई करती रही। चुप्पी का यह हाल कि फ़र्श पर सुई गिरे तो आवाज़ सुनाई दे! बड़ी देर बाद महेन्द्र अचानक बोल उठा। हठात् जो निस्तब्धता भंग हुई, बिनोदिनी चौंक पड़ी। उसकी उँगली में सुई चुभ गयी।

महेन्द्र ने पूछा—"किसी भी तरह से न रुक सकोगी?"

सुई चुभी उँगुली का खून चूसती हुई बिनोदिनी ने कहा—"विनती किस बात की? मैं रही न रही, आपको क्या फर्क पड़ता है।"

कहते-कहते उसका गला भर आया। फिर झुककर वह सिलाई में लग गयी। लगा, उसकी पलकों की कोर में आँखों की हल्की-सी रेखा झलक पड़ी है। माघ का अपराह्न उधर शाम के अँधेरे में खोने लगा था।

लम्हे-भर में महेन्द्र ने बिनोदिनी का हाथ दबाकर रुँधे और सजल स्वर में कहा, "अगर इससे मेरा कुछ बिगड़ता हो तो रुकोगी।"

बिनोदिनी ने झट से हाथ छुड़ा लिया। थोड़ा सरककर बैठ गयी। महेन्द्र चौंका। अपनी अन्तिम बात अपने ही कानों में व्यंग्य-जैसी गूँजती रही। दोषी जीभ को उसने दाँत से काटा फिर कुछ कहते न बना।

घर में सन्नाटा छाया था, तभी आशा आ गयी। बिनोदिनी झट कह उठी, "खैर, तुम लोगों ने जब मेरी अकड़ इतनी बढ़ा रखी है, तो मेरा भी फर्ज़ है कि तुम लोगों की एक बात मान लूँ। जब तक विदा नहीं करोगे, मैं यहीं रहूँगी।"

पति की कामयाबी से फूली न समाती हुई आशा सखी से लिपट गयी। बोली—"तो फिर यही पक्का रहा! तीन बार कबूल करो कि जब तक हम विदा नहीं करते, तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।"

बिनोदिनी ने तीन बार कबूल किया। आशा ने कहा—"भई किरकिरी, रहना तो पड़ा, फिर नाको-चने क्यों चबवाए? अन्त में मेरे पति से हार माननी ही पड़ी?"

बिनोदिनी हँसकर बोली—"भाई साहब, हार मैंने मानी कि तुमने मानी?"

महेन्द्र को जैसे काठ मार गया हो। लग रहा था, जैसे उसका अपराध पूरे कमरे में बिखरा पड़ा है। उसने गम्भीर होकर कहा—"हार तो मेरी ही हुई है।"

और वह कमरे से बाहर चला गया।

और दूसरे ही क्षण फिर अन्दर आया। आकर बिनोदिनी से कहा—"मुझे माफ़ कर दो!"

बिनोदिनी बोली—"क्या कुसूर किया है तुमने, लालाजी?"

महेन्द्र बोला—"तुम्हें यों ज़बर्दस्ती यहाँ रोक रखने का हमें कोई अधिकार नहीं।"

बिनोदिनी हँसकर बोली—"ज़बर्दस्ती कहाँ की है? प्यार से सीधी तरह ही तो रहने को कहा—यह ज़बर्दस्ती थोड़े है।"

आशा सोलहों आने सहमत होकर बोली—"हर्गिज़ नहीं।"

बिनोदिनी ने कहा—"भाई साहब, तुम्हारी इच्छा है, मैं रहूँ। मेरे जाने से तुम्हें तकलीफ होगी—यह तो मेरी खुशकिस्मती है। क्यों भई किरकिरी, ऐसे सहृदय दुनिया में मिलते कितने हैं? और दुःख में दुःखी, सुख में सुखी भाग्य से कोई मिला, तो मैं ही उसे छोड़कर जाने को क्यों उतावली होऊँ?"

पति को चुप रहते देख आशा ज़रा खिन्न मन से बोली—"बातों में तुमसे कौन जीते? मेरे स्वामी तो हार मान गए, अब ज़रा रुक भी जाओ।"

महेन्द्र फिर तेज़ी से बाहर हो गया। उधर बिहारी कुछ देर राजलक्ष्मी से बातचीत करके महेन्द्र की ओर आ रहा था। दरवाज़े पर ज्यों ही बिहारी पर नज़र पड़ी, महेन्द्र बोल उठा—"भाई बिहारी, मुझ-सा नालायक दुनिया में दूसरा नहीं।"

उसने कुछ ऐसे कहा कि वह बात कमरे में पहुँच गयी।

अन्दर से उसी दम पुकार हुई—"बिहारी बाबू?"

बिहारी ने कहा—"अभी आया, बिनोद भाभी!"

कमरे में जाते ही बिहारी ने तुरन्त आशा की तरफ़ देखा—घूँघट में से जितना-भर दिखाई पड़ा, उसमें विषाद या वेदना की कोई निशानी ही न थी। आशा उठकर जाने लगी। बिनोदिनी उसे पकड़े रही। कहा—"यह तो बताएँ भाई साहब, मेरी आँख की किरकिरी से आपका सौत का नाता है क्या? आपको देखते ही वह भाग क्यों जाना चाहती है?"

आशा ने शर्माकर बिनोदिनी को झिड़का।

बिहारी ने हँसकर कहा—"इसलिए कि विधाता ने मुझे वैसा खूबसूरत नहीं बनाया है।"

बिनोदिनी—"देख लिया भई किरकिरी, बिहारी बाबू किस कदर बचाकर बात करना जानते हैं! इन्होंने तुम्हारी पसन्द को दोष नहीं दिया, दिया विधाता को। लक्ष्मण-जैसे सुलक्षण देवर को पाकर तुझे आदर करना न आया, तेरी ही तकदीर खोटी है।"

बिहारी—"इस पर तुम्हें अगर तरस आए बिनोद भाभी, तो फिर मुझे शिकवा ही क्या रहे!"

बिनोदिनी—"समुद्र तो है ही, फिर भी बादलों के बरसे बिना चातक की प्यास क्यों नहीं मिटती?"

आशा को आखिर रोककर न रखा जा सका। वह ज़बर्दस्ती हाथ छुड़ाकर चली गयी। बिहारी भी जाना चाह रहा था। बिनोदिनी ने कहा—"महेन्द्र बाबू को क्या हुआ है, कह सकते हैं आप?"

बिहारी ठिठक पड़ा। बोला—"मुझे तो कुछ पता नहीं, कुछ हुआ है क्या?"

बिनोदिनी—"पता नहीं, मुझे तो ठीक नहीं दिखता।"

उत्सुक होकर बिहारी कुर्सी पर बैठ गया। पूरी तरह सुन लेने के खयाल से वह उन्मुख होकर बिनोदिनी की ओर ताकता रहा। बिनोदिनी कुछ न बोली। मन लगाकर चादर सीने लगी।

कुछ देर रुककर वह बोला, "तुमने महेन्द्र में खास कुछ देखा क्या?"

बिनोदिनी बड़े सहज भाव से बोली—"क्या जानें, मुझे तो ठीक नहीं दिखता। मुझे तो अपनी किरकिरी के लिए फ़िक्र होती है।"—और एक लम्बी उसाँस लेकर वह सिलाई छोड़कर जाने लगी।

बिहारी ने व्यस्त होकर कहा—"ज़रा बैठो, भाभी!"

बिनोदिनी ने कमरे के सारे खिड़की-किवाड़ खोल दिए। लालटेन की बत्ती बढ़ा दी और सिलाई का सामान लिये बिस्तर के उस छोर पर जा बैठी। बोली— "मैं तो यहाँ सदा रहूँगी नहीं—मेरे चले जाने पर मेरी किरकिरी का खयाल रखना—वह बेचारी दुःखी न हो।"

कहकर मन के उद्वेग को ज़ब्त करने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

बिहारी बोल पड़ा—"भाभी, तुम्हें रहना ही पड़ेगा। तुम्हारा अपना कहने को कोई नहीं—इस भोली लड़की को सुख-दुःख में बचाने का भार तुम लो—कहीं तुम छोड़ गयीं, तो फिर कोई चारा नहीं।"

बिनोदिनी—"भाई साहब, दुनिया का हाल तुमसे छिपा नहीं, मैं यहाँ सदा कैसे रह सकती हूँ? लोग क्या कहेंगे?"

बिहारी—"लोग जो चाहें कहें, तुम ध्यान ही मत दो! तुम देवी हो, एक असहाय लड़की को दुनिया की ठोकरों से बचाना तुम्हारे ही योग्य काम है। मैंने भी पहले तुम्हारे बारे में गलत धारणा बनायी थी जिसके लिए सचमुच मुझे खेद और पछतावा है। अब मुझे एहसास हो गया है, तुम कितनी उदार हो और इसीलिए मैं तुम्हारा बहुत आदर करता हूँ।"

बिहारी यह देख नहीं पाया था कि बिनोदिनी की ज़बान पर कुछ था और मन में कुछ और। इसके बावजूद बिनोदिनी का रोआँ-रोआँ पुलकित हो उठा। बिहारी के इस भक्ति-उपहार को वह मन से भी गलत मानकर ठुकरा न सकी, हालाँकि वह छलना कर रही थी। ऐसा व्यवहार उसे कभी किसी से न मिला था। बिनोदिनी के आँसू देखकर बिहारी मुश्किल से अपने आँसू ज़ब्त करके महेन्द्र के कमरे में चला गया। बिहारी को यह बात बिल्कुल समझ में न आई कि महेन्द्र ने अचानक अपने-आपको नालायक क्यों कह दिया। कमरे में जाकर देखा, महेन्द्र नहीं था। पता चला, वह टहलने निकल गया है। पहले बेवजह वह घर से कभी बाहर नहीं जाया करता था। जाने-पहचाने लोगों के घर से बाहर उसे बड़ी परेशनी होती। बिहारी सोचता हुआ धीरे-धीरे अपने घर चला गया।

बिनोदिनी आशा को अपने कमरे में ले आई। उसे छाती से लगाकर छलछलाई आँखों से कहा—"भई किरकिरी मैं बड़ी अभागिन हूँ, बड़ी बदशकुन।"

आशा दुःखी मन से बोली—"ऐसा क्यों कहती हो, बहन?"

सुबकते बच्चे की तरह वह आशा की छाती में मुँह गाड़कर बोली—"मैं जहाँ भी रहूँगी, बुरा ही होगा। मुझे छोड़ दे बहन, छुट्टी दे! मैं अपने जंगल में चली जाऊँ।"

महेन्द्र से बिहारी की मुलाकात न हो सकी, इसलिए कोई बहाना बनाकर फिर वह वहाँ आया ताकि आशा और महेन्द्र के बीच की आशंका वाली बात को और कुछ साफ़ तौर से जान सके।

वह बिनोदिनी से यह अनुरोध करने का बहाना लिये आया कि कल महेन्द्र को अपने यहाँ भोजन के लिए आने को कहे। उसने आवाज़ दी—"बिनोद भाभी।" और बाहर से ही बत्ती की मद्धम रोशनी में गीली आँखों वाली दोनों सखियों को आलिंगन में देखकर वह ठिठक गया। अचानक आशा के मन में हुआ कि हो न हो, आज बिहारी ने ज़रूर बिनोदिनी से कुछ निन्दा की बात कही है, तभी वह जाने की बात कर रही है। यह तो बिहारी बाबू की बड़ी ज़्यादती है। जाने क्यों ये अच्छे मिजाज़ के नहीं हैं। कुढ़कर आशा बाहर निकल आई और बिहारी भी बिनोदिनी के प्रति मन की भक्ति को और बढ़ा कर बैरंग वापस हो गया।

रात को महेन्द्र ने आशा से कहा—"चुन्नी, मैं सुबह की गाड़ी से बनारस चला जाऊँगा।"

आशा का कलेजा धक् से रह गया। पूछा..."क्यों?"

महेन्द्र बोला—"काफ़ी दिन हो गए, चाची से भेंट नहीं हुई।"

महेन्द्र की यह बात सुनकर आशा शर्मिन्दा हो गयी। उसे यह इससे भी पहले सोचना चाहिए था। अपने सुख-दुःख के आकर्षण में वह अपनी स्नेहमयी मौसी को भूल गयी।

महेन्द्र ने कहा—"अपने स्नेह की एकमात्र थाती को वह मेरे ही हाथों सौंप गयी हैं—उन्हें एक बार देखे बिना मुझे चैन नहीं मिलता।"

कहते-कहते महेन्द्र का गला भर आया। स्नेह-भरे मौन आशीर्वाद और अव्यक्त मंगल-कामना से वह बार-बार अपना दायाँ हाथ आशा के माथे पर फेरने लगा। अचानक ऐसे उमड़ आए स्नेह का मर्म आशा न समझ सकी। उसका हृदय केवल पिघलकर आँखों से बहने लगा। आज ही शाम को स्नेह-वश बिनोदिनी ने उसे जो कुछ कहा था, याद आया। इन दोनों में कहीं योग भी है या नहीं, वह समझ न सकी। लेकिन उसे लगा, 'यह मानो उसके जीवन की कोई सूचना है। अच्छी बुरी, कौन जाने!'

भय से व्याकुल होकर उसने महेन्द्र को बाँहों में जकड़ लिया। महेन्द्र उसके नाहक सन्देह के आवेश को समझ गया। बोला—"चुन्नी, तुम पर तुम्हारी पुण्यवती मौसी का आशीर्वाद है। तुम्हें कोई खतरा नहीं। तुम्हारी ही भलाई के लिए वह अपना सर्वस्व छोड़कर चली गयी—तुम्हारा कभी कोई बुरा नहीं हो सकता।"

इस पर आशा ने निडर होकर अपने मन के भय को निकाल फेंका। पति के इस आशीर्वाद को उसने अक्षय-कवच के समान ग्रहण किया। मन-ही-मन उसने मौसी के चरणों की धूल को बार-बार अपने माथे से लगाया और एकाग्र होकर बोली—"तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे स्वामी की रक्षा करे।"

दूसरे दिन महेन्द्र चला गया। जाते समय बिनोदिनी से कुछ न बोला। बिनोदिनी मन में कहने लगी—'गलती खुद की और गुस्सा मुझ पर! ऐसा साधु-पुरुष तो मैंने नहीं देखा। लेकिन ऐसी साधुता ज़्यादा दिन नहीं टिकती!'

22

बहुत दिनों के बाद अचानक महेन्द्र को आते देखकर स्वाभाविक रूप से एक ओर तो अन्नपूर्णा गद्गद हो गयीं और दूसरी ओर उन्हें यह शंका हुई कि शायद अपनी सास से आशा की फिर कुछ चख-चख हो गयी है—महेन्द्र उसी की शिकायत पर सलाह लेने आया है। छुटपन से ही महेन्द्र मुसीबत पड़ने पर अपनी चाची की शरण में जाता रहा है। कभी किसी पर उसे गुस्सा आया तो चाची ने उसे शान्त कर दिया और कभी उसे कोई तकलीफ हुई तो चाची ने धीरज से सहने की नसीहत दी। लेकिन विवाह के बाद से जो सबसे बड़ा संकट महेन्द्र पर आ पड़ा, उसके प्रतिकार की कोशिश तो दूर रही—सांत्वना देने तक में वे असमर्थ रहीं। इसके बारे में जब वे यह समझ गयीं कि चाहे जैसे भी वे हाथ डालें, घर की अशान्ति दुगुनी हो जाएगी तो उन्होंने घर ही छोड़ दिया। बीमार बच्चा जब पानी के लिए चीखता-रोता है और पानी देने की मनाही होती है, तो दुखिया माँ जैसे दूसरे कमरे में चली जाती है, अन्नपूर्णा ठीक वैसे ही काशी चली गयी थीं। सुदूर तीर्थ में रहकर धर्म-कर्म में ध्यान लगाकर उन्होंने पुराने दु:खों को कुछ भुलाया था। महेन्द्र क्या फिर उन्हीं झगड़े-झंझटों की चर्चा से उनके छिपे घाव पर चोट करने आया है?

लेकिन महेन्द्र ने आशा और अपनी माँ के सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं की। फिर तो उनकी शंका दूसरी ओर बढ़ी। जिस महेन्द्र के लिए आशा को छोड़कर कॉलेज तक जाना गवारा न था, वह चाची की खोज-खबर लेने के लिए काशी कैसे आ पहुँचा? तो क्या आशा के प्रति उसका आकर्षण ढीला पड़ रहा है?

उन्होंने पूछा—"मेरे सिर की कसम महेन्द्र, ठीक-ठीक बताना, चुन्नी कैसी है?"

महेन्द्र बोला—"वह तो खासे मज़े में है, चाची!"

"आजकल वह करती क्या है, बेटे! तुम लोग अभी तक वैसे ही बच्चों-जैसे हो या घर-गृहस्थी का भी ध्यान रखते हो अब?"

महेन्द्र ने कहा—"बचपना तो बिल्कुल बन्द है, चाची! सारे झंझटों की जड़ तो किताब थी—चारूपाठ—वह जाने कहाँ गायब हो गयी, अब ढूँढे भी नहीं मिलती, कहीं।"

"और, बिहारी क्या कर रहा है?"

महेन्द्र ने कहा—"अपना जो काम है, उसे छोड़कर वह सब-कुछ कर रहा है। पटवारी-गुमाश्ते उसकी जायदाद की देख-भाल करते हैं। वे क्या देख-भाल करते हैं, खुदा जाने। बिहारी का हमेशा यही हाल रहा। उसका अपना काम दूसरे लोग देखते हैं, दूसरों का काम वह खुद देखता है।'

अन्नपूर्णा ने पूछा—"विवाह नहीं करेगा क्या?"

महेन्द्र ज़रा हँसकर बोला—"कहाँ ऐसा कुछ तो दिखाई नहीं पड़ता।"

अन्नपूर्णा को अन्तर के गोपन-स्थान में एक चोट-सी लगी। वे जानती थीं कि उनकी भानजी को देख कर बिहारी एक बार बड़े उत्साह से ब्याह करने को तैयार हो गया था, लेकिन उसकी इच्छा आखिरी वक्त पर अचानक रौंद दी गयी थी।

महेन्द्र ने कभी मज़ाक से, कभी गम्भीर होकर अपनी गृहस्थी का मौजूदा हाल उन्हें सुनाया, बस बिनोदिनी का कोई ज़िक्र उसने नहीं किया।

कॉलेज अभी खुला था। महेन्द्र की ज़्यादा दिन काशी में रहने की गुंजाइश न थी। लेकिन सख्त बीमारी के बाद अच्छी आबोहवा में सेहत सुधरने की जो तृप्ति होती है, काशी में अन्नपूर्णा के पास महेन्द्र को हर रोज़ उसी तृप्ति का अनुभव हो रहा था—लिहाज़ा दिन बीतने लगे। अपने आप ही से विरोध की जो स्थिति हो गयी थी, वह मिट गयी। कई दिनों तक अन्नपूर्णा के साथ रहकर दुनियादारी के फर्ज़ ऐसे सहज और सुख देने वाले लगे कि महेन्द्र को उनके हौआ लगने की पिछली बात हँसी उड़ाने जैसी लगी। उसे लगा—बिनोदिनी कुछ नहीं। यहाँ तक कि उसकी शक्ल भी वह साफ़-साफ़ याद नहीं कर पाता था। आखिरकार बड़ी दृढ़ता से महेन्द्र मन-ही-मन बोला—'आशा को मेरे हृदय से बाल-भर भी खिसका सके, ऐसा तो मैं किसी को, कहीं भी नहीं देख पाता।'

उसने अन्नपूर्णा से कहा—"चाची, मेरे कॉलेज का हर्ज हो रहा है, अब इस बार तो मैं चलूँ! तुम संसार की माया छोड़कर यहाँ आ बसी हो अकेले में, फिर भी अनुमति दो कि बीच-बीच में तुम्हारे चरणों की धूल ले जाया करूँ!"

काशी से लौटकर महेन्द्र ने आशा को जब मौसी के भेजे गए स्नेहोपहार—एक सिन्दूर की डिबिया और सफेद पत्थर का एक लोटा—दिये तो उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। मौसी का वह स्नेहमय धीरज और उन पर अपनी तथा सास की फज़ीहतों की बात याद आते ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा। उसने महेन्द्र से कहा—"बड़ी इच्छा हो रही है कि एक बार मैं भी काशी जाऊँ और मौसी की क्षमा तथा चरणों की धूल ले आऊँ। क्या यह मुमकिन नहीं?"

महेन्द्र ने आशा के मन की पीड़ा को समझ और इस बात पर राज़ी भी हुआ कि वह कुछ दिनों के लिए अपनी मौसी के पास जाए। लेकिन फिर अपनी पढ़ाई का हर्ज़ करके खुद उसे काशी ले जाने में उसे हिचक होने लगी।

आशा ने कहा—"मेरी बड़ी चाचीजी तो जल्दी ही काशी जाने वाली हैं। उनके साथ चली जाऊँ तो क्या हर्ज़ है?"

महेन्द्र ने जाकर राजलक्ष्मी से कहा—"माँ, बहू एक बार चाची से मिलने के लिए काशी जाना चाहती है।"

राजलक्ष्मी ने व्यंग से कहा—"बहू जाना चाहती है, तो ज़रूर जाए। जाओ, उन्हें ले जाओ!"

बिहारी राजलक्ष्मी से मिलने आया, तो वह बोलीं—"अरे, बिहारी, सुना तूने? अपनी बहू काशी जा रही है?"

बिहारी बोला—"क्या कह रही हो माँ, महेन्द्र भैया फिर पढ़ाई हर्ज़ करके जाएँगे?"

राजलक्ष्मी बोलीं—"न—न, महेन्द्र क्यों जाएँगे? महेन्द्र यहीं रहेंगे। बहू अपने बड़े

चाचा के साथ जाएगी।"

बिहारी भीतर-ही-भीतर परेशान हुआ। वह सोचने लगा, "आखिर माजरा क्या है। महेन्द्र काशी गया तो आशा यहाँ रही और वह लौटा, तो अब आशा काशी जा रही है। दोनों में कुछ ऐसा हुआ है। आखिर ऐसा कितने दिन चलेगा? दोस्त होकर भी हम इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सकते—दूर से खड़े-खड़े तमाश देखते रहेंगे?"

माता के व्यवहार से बहुत कुढ़कर महेन्द्र अपने कमरे में आकर बैठा था। बिनोदिनी ने इस बीच महेन्द्र से भेंट नहीं की थी, सो आशा उसे बगल के कमरे से यहाँ ले आने के लिए अनुरोध कर रही थी।

ऐसे में बिहारी आया। उसने महेन्द्र से पूछा—"आशा भाभी का काशी जाना तय हुआ है?"

महेन्द्र बोला—"क्यों न हो, कोई अड़चन है?"

बिहारी बोला—"अड़चन की बात कौन कह रहा है! मगर अचानक तुम्हारे दिमाग में यह आया कैसे?"

महेन्द्र ने कहा—"अपनी मौसी को देखने की इच्छा, परदेस में रहने वाले आत्मीय के लिए व्याकुलता—मानव-चरित्र में होती है।"

बिहारी ने पूछा—"साथ तुम जा रहे हो?"

पूछते ही महेन्द्र के दिमाग में आया, 'बड़े चाचा के साथ भेजना ठीक नहीं—बिहारी इसी पर बात करने आया है।'—ज़्यादा बोल-चाल से कहीं गुस्सा न फट पड़े, इसीलिए उसने संक्षेप में कहा—"नहीं।"

बिहारी महेन्द्र को पहचानता था। वह नाराज़ है, यह बिहारी से छिपा न था। वह यह भी जानता था कि उसने जिद पकड़ ली, तो उसे टस-से-मस नहीं किया जा सकता। इसलिए उसने फिर उसके जाने का ज़िक्र ही न किया। सोचा—'बेचारी आशा अगर जी में कोई पीर ही छिपाए जाती हो तो बिनोदिनी के साथ जाने से उसे थोड़ी-सी राहत मिलेगी।' उसने धीरे-से कहा—"उनके साथ बिनोद भाभी जाएँ, तो अच्छा न रहेगा?"

महेन्द्र चीख उठा—"बिहारी, अपने मन की बात खोलकर ही कहो! मेरे साथ टेढ़े-टेढ़े चलने की क्या ज़रूरत है? मैं समझ रहा हूँ, तुम्हें शुबहा है कि मैं बिनोदिनी को प्यार करता हूँ। गलत है। प्यार मैं नहीं करता। मुझे बचाने के लिए पहरा देते फिरने की ज़रूरत नहीं। अपने को सँभालो! बल्कि मैं तो कहता हूँ कि तुम आशा से प्रेम करते हो।"

जहाँ पर काफ़ी दर्द हो, वहाँ अगर कोई बेरहमी के साथ पाँवों से मसल डाले तो चोट खाया हुआ आदमी चोट करने वाले पर जिस तरह बिना कुछ विचारे टूट पड़ना चाहता है—उसी तरह रुद्ध गले से बदरंग पड़ा चेहरा लिये बिहारी कुर्सी से उठकर महेन्द्र की ओर लपका—और, सहसा रुककर किसी तरह बोल पाया—"ईश्वर तुम्हें क्षमा करें, मैं चला।"

लड़खड़ाता हुआ वह कमरे से बाहर निकल गया। बगल के कमरे से बिनोदिनी झपटकर आई—"बिहारी बाबू!"

दीवार का सहारा लिए हँसने की कोशिश करते हुए बिहारी ने कहा—"क्या है,

बिनोद भाभी!"

बिनोदिनी बोली—"किरकिरी के साथ मैं भी काशी जाऊँगी।"

बिहारी ने कहा—"नहीं-नहीं भाभी, यह न होगा। मैं विनती करता हूँ, मेरे कहने से कुछ मत करना। मैं यहाँ का कोई नहीं होता, यहाँ की किसी भी बात में मैं दखल नहीं देना चाहता। तुम देवी हो, जो तुम्हें ठीक जँचे, वही करना! मैं चला।"

बिनोदिनी को नम्रता से नमस्कार करके बिहारी जाने लगा।

बिनोदिनी बोली—"मैं देवी नहीं हूँ भाई साहब, सुनो तो सही। तुम चल दोगे, तो किसी का भला न होगा। फिर मुझे दोष मत देना!"

बिहारी चला गया। महेन्द्र ठगा-सा बैठा रहा।

बिनोदिनी बिजली-सी कटाक्ष करती हुई बगल के कमरे में चली गयी जहाँ आशा मारे शर्म के मरी-सी जा रही थी। बिहारी उसे प्यार करता है—महेन्द्र के मुँह से ऐसा सुनकर वह मुँह नहीं उठा पा रही थी। लेकिन उस समय उस पर बिनोदिनी को दया न आई। आशा ने अगर निगाह उठाकर देखा होता, तो वह डर जाती। उसे नज़र आता कि बिनोदिनी के सिर पर जैसे खून सवार था। यह झूठ था कि महेन्द्र बिनोदिनी से प्रेम नहीं करता था और यह भी कि हर कोई उस निर्जीव गुड़िया आशा से प्यार करता था।

आवेश में वही जो एक बार महेन्द्र के मुँह से निकल पड़ा था कि मैं नालायक हूँ, उसके बाद जब वह आवेश जाता रहा तो अपने उस अचानक उबल पड़ने की वहज से बिहारी से वह सकुचा गया था। उसे लग रहा था कि उसकी सारी बातें खुल गयी हैं। वह बिनोदिनी को प्यार नहीं करता, फिर भी बिहारी का खयाल है, प्यार करता है। जो कुढ़न बढ़ रही थी, आज वह अचानक भभक पड़ी।

लेकिन बगल के कमरे से बिनोदिनी दौड़ती आई, और उसने बिहारी को रोकने की कोशिश की और बिहारी के कहे मुताबिक वह काशी जाने को तैयार हो गयी—यह सब महेन्द्र की कल्पना के भी बाहर था। इस दृश्य ने महेन्द्र को एक चोट पहुँचाकर अभिभूत कर दिया। उसने कहा था कि वह बिनोदिनी को प्यार नहीं करता; लेकिन जो कुछ सुना, जो कुछ देखा, उसने उसे चैन न लेने दिया।

23

महेन्द्र के मन में अब एक उथल-पुथल मची हुई थी। उसने सोचा, गलत, मैं बिनोदिनी को प्यार नहीं करता। शायद प्यार न भी करता हूँ, मगर कहना कि नहीं करता हूँ यह तो और भी कठिन है। किस औरत को इससे चोट नहीं पहुँचेगी? इसके प्रतिवाद की गुंजाइश कैसे हो?

महेन्द्र ने बक्स से निकालकर उसकी तीनों चिट्ठियों को फिर से पढ़ा। वह मन-ही-मन बोला—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि बिनोदिनी मुझे प्यार करती है। मगर कल वह बिहारी के सामने इस तरह क्यों आई? शायद मुझे दिखाने के ही लिए। मैंने जब साफ़ जता दिया कि मैं उसे प्यार नहीं करता, तो फिर किसी मौके से मेरे सामने प्यार को ठुकराए नहीं तो और क्या करे? हो सकता है, मुझसे इस तरह ठुकराई जाने पर वह बिहारी को प्यार भी करने लगे।"

महेन्द्र का इस तरह क्षोभ बढ़ चला कि अपनी उतावली से वह आप ही अचरज में पड़ गया। डर उठा। मान लो बिनोदिनी ने सुन ही लिया कि महेन्द्र उसे प्यार नहीं करता तो इसमें दोष भी क्या?

आँधी आने पर नाव की जंजीर जैसे लंगर को कसकर पकड़ती है, वैसे ही अकुलाहट में महेन्द्र ने आशा को और भी कसकर पकड़ा।

रात को महेन्द्र ने आशा का मुँह अपनी छाती से लगाकर पूछा—"चुन्नी, ठीक बताओ, तुम मुझे कितना प्यार करती हो?"

आशा सोचने लगी—"यह सवाल कैसा! बिहारी के बारे में जो शर्मनाक बात निकली है, क्या उसी से उस पर सन्देह की ऐसी छाया पड़ी?"

वह शर्म से मुई-सी होकर बोली—"छिः, आज यह क्या पूछ रहे हो तुम! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, साफ़ बताओ, मेरे प्यार में तुम्हें कब क्या कमी दिखाई दी?"

उसे सताकर उसका माधुर्य निचोड़ने की नीयत से महेन्द्र बोला—"फिर तुम काशी क्यों जाना चाहती हो?"

आशा बोली—"मैं नहीं जाना चाहती। कहीं भी नहीं जाऊँगी मैं।"

महेन्द्र—"लेकिन चाहा तो था पहले?"

आशा बहुत दुःखी होकर बोली—"तुम्हें पता है, मैंने क्यों चाहा था?"

महेन्द्र निर्ममता से आशा को तकलीफ पहुँचाता रहा। बोला, "मुझे यहाँ अकेला

छोड़ कर तुम अपनी मौसी के पास ज़्यादा मज़े में रहतीं।"

आशा बोली—"हर्गिज़ नहीं, मज़े से रहने के लिए नहीं जाना चाहती थी मैं।"

महेन्द्र ने कहा—"सच कहूँ चुन्नी, और किसी से विवाह किया होता तो तुम इससे कहीं ज़्यादा सुखी होतीं।"

सुनते ही चौंककर आशा महेन्द्र से छिटक पड़ी और तकिये में मुँह गाड़कर काठ की मारी-सी पड़ी रही। कुछ ही क्षण में उसकी रुलाई रोके न रुकी। सांत्वना देने के लिए महेन्द्र ने उसे कलेजे से लगाने की कोशिश की, पर आशा तकिये से चिपकी रही। पतिव्रता के ऐसे रूठने से महेन्द्र सुख, गर्व और धिक्कार से क्षुब्ध होने लगा।

बिनोदिनी सोचने लगी, 'आखिर ऐसी तोहमत लगाए जाने पर बिहारी ने प्रतिवाद क्यों नहीं किया? उसने झूठा प्रतिवाद भी किया होता, तो मानो बिनोदिनी को खुशी होती। ठीक ही हुआ कि महेन्द्र ने बिहारी पर ऐसी चोट की। यह उसका पावना ही था। आखिर बिहारी-जैसा आदमी आशा को प्यार क्यों करेगा? इस चोट ने बिहारी को दूर जो हटा दिया, मानो वह अच्छा ही हुआ'—बिनोदिनी निश्चिन्त हो गयी।

लेकिन मृत्यु-बाण से बिंधे बिहारी का रक्तहीन पीला मुखड़ा बिनोदिनी के हर काम में उसके पीछे-पीछे घूमता-सा रहा। बिनोदिनी के अन्दर जो एक सेवा परायण नारी-प्रकृति थी, वह उस कातर चेहरे को देखकर रोने लगी।

दो-तीन दिन तक वह सभी कामों में अनमनी रही। आखिर उससे न रहा गया। उसने एक सान्त्वना पत्र लिखा—

"भाई साहब, तुम्हारा जो सूखा चेहरा देखा, है, तब से मैं हृदय से यही कामना करती हूँ कि तुम भले-चंगे हो जाओ, जैसे तुम थे, वैसे ही हो जाओ—तुम्हारी वह सहज हँसी फिर कब देखूँगी—वे उदार बातें फिर कब सुनूँगी; एक पंक्ति में अपनी कुशल मुझे लिख भेजो!—तुम्हारी बिनोदिनी भाभी।"

दरबान के मार्फ़त चिट्ठी उसने बिहारी को भेज दी।

बिहारी आशा को प्यार करता है, इस बात को महेन्द्र इस रूखाई और इस बेहयाई से ज़बान पर ला सकता है।—बिहारी ने यह कभी स्वप्न में भी न सोचा था। क्योंकि उसने खुद भी कभी ऐसी बात को दिल में जगह न दी थी।

लेकिन बात जब एक बार मुँह से निकल पड़ी, तो एकबारगी उसे मार तो नहीं डाला जा सकता। उसमें सच्चाई का बीज जितना था, वह देखते-ही-देखते अँकुराने लगा।

अब उसने खुद को कसूरवार समझा। मन-ही-मन बोला—'मेरा गुस्सा करना तो शोभा नहीं देता, महेन्द्र से माफ़ी माँगकर विदा लेनी होगी। उस रोज़ मैं कुछ इस तरह चला आया था, मानो महेन्द्र दोषी है, मैं विचारक हूँ...अपनी यह गलती मुझे कबूल करनी पड़ेगी।'

बिहारी समझ रहा था, आशा चली गयी है। एक दिन शाम को वह धीरे-धीरे जाकर महेन्द्र के दरवाज़े पर जाकर खड़ा हुआ। राजलक्ष्मी के दूर के रिश्ते के मामा साधुचरण पर नज़र पड़ी। कहा—"कई दिनों से इधर आ नहीं सका—सब कुशल तो है?"

साधुचरण ने कुशल कही। बिहारी ने पूछा—"बहू काशी कब गयीं?"

साधुचरण ने कहा—"कहाँ, गयी कहाँ? उनका जाना अब न होगा।"

यह सुनकर बिहारी सब-कुछ भूलकर अन्दर जाने को बेचैन हो उठा। पहले वह जैसे सहज भाव से खुशी-खुशी अपनों-सा परिचित सीढ़ियों से अन्दर जाया करता था, सबसे हँसता-बोलता था, जी में कुछ होता न था, आज उसकी मनाही थी, दुर्लभ था वह—इसकी याद आते ही उसका मन पागल हो गया। बस एक बार, केवल अन्तिम बार उसी तरह अन्दर जाकर परिवार के सदस्य-सा राजलक्ष्मी से और घूँघट में छिपी आशा भाभी से दो बातें—मात्र कर आना उसके लिए परम आकांक्षा का विषय बन बैठा।

साधुचरण ने कहा—"अरे, अँधेरे में खड़े क्यों रह गए, अन्दर आओ!"

बिहारी तेज़ी से दो-चार डग की तरफ़ बढ़ा और मुड़कर बोला—"नहीं, चलूँ मैं, काम है।" और जल्दी से लौट गया।

उसी रात बिहारी पश्चिम की ओर कहीं चला गया।

बिहारी घर पर नहीं मिला—दरबान बिनोदिनी की चिट्ठी लेकर लौट आया। महेन्द्र ड्योढ़ी के सामने वाले बगीचे में टहल रहा था। उसने पूछा—"किसकी चिट्ठी है?"

दरबान ने बताया। महेन्द्र ने उससे चिट्ठी ले ली। एक बार तो जी में आया, चिट्ठी वह बिनोदिनी को दे आए—कुछ कहे नहीं, सिर्फ़ बिनोदिनी का लज्जित चेहरा देख आए। उसे इसमें ज़रा भी शक न था कि खत में लज्जा की बात ज़रूर है। याद आया, पहले भी एक बार उसने बिहारी को चिट्ठी भेजी थी। आखिर खत में है क्या, यह जाने बिना मानो उससे रहा ही न गया। उसने अपने आपको समझाया, 'बिनोदिनी उसी की देख-रेख में है, उसके भले-बुरे का वही ज़िम्मेदार है। लिहाज़ा ऐसे सन्देह वाले खत को खोलकर देखना वाज़िब है। बिनोदिनी को गलत रास्ते पर हर्गिज़ नहीं जाने दिया जा सकता।'

खोलकर महेन्द्र ने उस छोटी-सी चिट्ठी को पढ़ा। वह सहज भाषा में लिखी थी, इसलिए उसमें मन का सच्चा उद्वेग फूट पड़ा था। महेन्द्र ने उसे बार-बार पढ़ा। खूब सोचा, मगर समझ नहीं सका कि बिनोदिनी का झुकाव है किस तरफ़। उसे रह-रहकर यही आशंका होने लगी, चूँकि मैंने यह कहकर उसका अपमान किया है कि मैं उसे प्यार नहीं करता, इसीलिए रूठकर वह अपने मन को और तरफ़ लगाना चाहती है।

इसके बाद महेन्द्र के लिए धीरज रखना असम्भव हो उठा। जो लड़की अपने-आपको उसके हाथों सौंप देने के लिए आई थी, वह महज ज़रा-सी गलती से उसके कब्जे से निकल जाएगी। यह सोचकर महेन्द्र भीतर-ही-भीतर सुलगने लगा। मन में सोचा, 'बिनोदिनी मन-ही-मन अगर मुझे चाहती है, तो उसकी खैर जानो— क्योंकि वह एक जगह बँधी रहेगी। अपने मन का तो मुझे पता है, मैं उस पर कभी जुल्म नहीं कर सकूँगा...वह मुझे निश्चिन्त होकर प्यार कर सकती है। मैं आशा को प्यार करता हूँ, मुझसे उसे कोई खतरा नहीं। यदि वह और किसी तरफ़ खिंची तो कौन जानता है क्या अनर्थ होगा?'

महेन्द्र ने निश्चय किया, 'अपने को प्रकट किए बिना किसी-न-किसी तरह फिर से बिनोदिनी को अपनी ओर खींचना ही पड़ेगा।'

अन्दर जाते ही महेन्द्र ने देखा, बिनोदिनी बीच में ही खड़ी उत्सुकता से किसी का इन्तज़ार कर रही है और महेन्द्र का मन डाह से जल उठा। बोला—"नाहक इन्तज़ार में

खड़ी हैं, भेंट नहीं होने की। यह लीजिए, आपकी चिट्ठी लौट आई।"

कहकर उसने चिट्ठी उसकी ओर फेंक दी।

बिनोदिनी बोली—"खुली क्यों है?"

महेन्द्र जवाब दिए बिना ही चला गया। बिहारी ने चिट्ठी खोलकर पढ़ी और कोई जवाब न देकर चिट्ठी वापस भेज दी—यह सोचकर बिनोदिनी की सारी नसें सुलग उठीं। उसने चिट्ठी ले जाने वाले दरबान को बुलवा भेजा। वह और कहीं चला गया था—न मिला। चिराग की कोर से जैसे गरम तेल की बूँदें टपक पड़ती हैं— बन्द कमरे में बिनोदिनी की दमकती हुई आँखों से आँसू टपक गए। उसने अपनी चिट्ठी के टुकड़े कर डाले, फिर भी उसे चैन न मिला। स्याही की उन दो-चार लकीरों को भूत और वर्तमान से पोंछ डालने की गुंजाइश क्यों नहीं? गुस्से में आई मधुमक्खी जिस प्रकार हर सामने पड़ने वाले को काट खाती है—उसी प्रकार क्षुब्ध बिनोदिनी अपने चारों ओर की दुनिया को जला डालने पर आमादा हो गयी। मैं जो भी चाहती हूँ, उसी में रुकावट? किसी बात में कामयाबी नहीं! ठीक है, उसने सोचा, अगर मुझे सुख नहीं मिलेगा तो जो भी रास्ते में आएगा, उसे वह बेरहमी से कुचल देगी। प्रतिशोध ले कर ही रहेगी।

24

उस दिन फागुन की पहली बासन्ती बयार बह रही थी। बड़े दिनों के बाद आशा शाम को छत पर चटाई बिछाकर बैठी और मद्धिम रोशनी में एक मासिक पत्रिका में छपी हुई एक धारावाहिक कहानी पढ़ने लगी। एक जगह कहानी का नायक काफ़ी दिनों बाद पूजा की छुट्टी में अपने घर लौट रहा था कि डकैतों के चंगुल में फँस गया। आशा का दिल धड़क उठा। इधर ठीक उसी समय नायिका सपना देखकर रोती हुई जग पड़ी। आशा के आँसू रोके न रुके। वह कहानियों की बड़ी उदार समालोचक थी। जो भी कहानी पढ़ती, वह उसे अच्छी लगती। बिनोदिनी को बुलाकर कहती, "भई आँख की किरकिरी, मेरे सिर की कसम रही, इस कहानी को पढ़ देखना। ऐसी ही है! पढ़कर रोते-रोते बेदम!"

बिनोदिनी इन कहानियों को पढ़ने का कभी कष्ट न करती। उलटे वह आशा के उत्साह पर ठण्डे छींटे ही मार देती। बिनोदिनी की अच्छे-बुरे की कसौटी से आशा के उमंग, उत्साह को बड़ी चोट पहुँचती।

महेन्द्र को वह कहानी पढ़ाने का निश्चय करके गीली आँखों से उसने पत्रिका बन्द की। इतने में महेन्द्र आ गया। महेन्द्र बोला—"छत पर अकेली किस भाग्यवान को याद कर रही हो?"

आशा नायक-नायिका की बात भूल गयी। उनसे पूछा—"आज तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है क्या?"

महेन्द्र—"नहीं, तबीयत ठीक है।"

आशा—"फिर तुम मन-ही-मन जो कुछ सोच रहे हो मुझे साफ़-साफ़ बताओ।"

आशा के डिब्बे में से एक पान निकालकर खाते हुए महेन्द्र ने कहा—"मैं यह सोच रहा था कि तुम्हारी बेचारी मौसी ने न जाने कब से तुम्हें नहीं देखा। अचानक ही एक दिन तुम वहाँ पहुँच जाओ तो वे कितनी खुश हो जाएँ।"

आशा ने कोई जवाब न दिया। उसकी ओर ताकती रही। वह समझ न सकी कि एकाएक फिर क्यों यह बात महेन्द्र के मन में आई।

आशा को चुप देखकर महेन्द्र ने पूछा—"तुम्हारी जाने की इच्छा नहीं होती क्या?"

इस बात का जवाब देना कठिन था। मौसी से मिलने की इच्छा भी होती है और महेन्द्र को छोड़कर जाने का दिल भी नहीं चाहता। आशा बोली—"कॉलेज की छुट्टियाँ होने पर जब तुम चलोगे तो मैं भी साथ चलूँगी।"

महेन्द्र—"छुट्टियों में भी जाने की गुंजाइश नहीं है। इम्तहान की तैयारी करनी है।"

आशा—"फिर रहने दो। न ही गयी तो क्या?"

महेन्द्र—"रहने क्यों दें? तुमने जाना चाहा था, जाओ!"

आशा—"नहीं, मेरी इच्छा जाने की नहीं है।"

महेन्द्र—"अभी-अभी उस दिन तो ऐसी ज़बर्दस्त इच्छा थी और अचानक ही वह इच्छा गायब हो गयी!"

आशा नज़रें झुकाए बैठी रही।

बिनोदिनी से सुलह के लिए मौका ढूँढते हुए महेन्द्र का मन भीतर-ही-भीतर अधीर हो उठा था। आशा को चुपचाप देखकर नाहक ही उसे गुस्सा आ गया। बोला— "मुझ पर तुम्हें किसी तरह का शुबहा हुआ है क्या कि आँखों की निगरानी में रखना चाहती हो मुझे?" आशा की स्वाभाविक नम्रता, कोमलता और धीरज महेन्द्र की बर्दाश्त से बाहर हो गया। अपने-आप बोला—"मौसी के यहाँ जाने की इच्छा है।— यह कहो कि मैं जाकर ही रहूँगी, जैसे भी हो। कभी हाँ, तो कभी नहीं, कभी चुप— यह क्या करती रहती हो?"

महेन्द्र की ऐसी रूखाई से आशा अचरज में पड़ी डर गयी, लाख कोशिश करने पर भी उसे कोई जवाब न सूझा। वह समझ ही न पाती थी कि क्यों महेन्द्र कभी तो इतना आदर करता है और फिर अचानक बेरहम-सा बन जाता है। इस तरह आशा के लिए महेन्द्र जितना ही दुर्बोध बनता जाता, आशा उतना ही धड़कते कलेजे से, भय और प्यार से उसे ज़्यादा जकड़ती जाती।

वह महेन्द्र पर शक करती है, उसे आँखों की निगरानी में रखना चाहती है। यह कोई कठोर उपहास है कि निर्मम सन्देह! कसम खाकर इसका प्रतिवाद करना ज़रूरी है कि उसे हँसकर टाल जाए?

आशा को अब भी चुप देखकर अधीर महेन्द्र तेज़ी से उठकर चला गया। फिर कहाँ तो रहा कहानी का नायक और कहाँ गयी नायिका। सूर्यास्त की आभा अँधेरे में खो गयी, साँझ वाली बासन्ती बयार जाती रही और सर्द हवा चलने लगी। फिर भी आशा उसी चटाई पर लेटी रही।

जब बहुत देर बाद वह कमरे में गयी, तो देखा, महेन्द्र उसे बुलाये बिना सो गया है। मन में आया, स्नेहमयी मौसी की तरफ़ से उसे उदासीन देखकर महेन्द्र मन-ही-मन शायद उससे घृणा करता है। खाट पर जाकर आशा ने उसके दोनों पैर पकड़ लिये। इससे महेन्द्र करुणा से विगलित हो गया और उसने उसे खींच लेने की कोशिश की। लेकिन आशा बिल्कुल न उठी। उसने कहा—"मुझसे कोई कुसूर हुआ हो, तो मुझे माफ़ करो!"

महेन्द्र ने पिघलकर कहा—"तुम्हारा कोई कुसूर नहीं है, चुन्नी! मैं ही बड़ा पाखण्डी हूँ, इसलिए नाहक ही मैंने तुम्हें चोट पहुँचाई।"

इस पर आशा की आँखें बरसती हुई महेन्द्र के पैरों को भिगोने लगीं। महेन्द्र उठ बैठा। अपनी बाँहों में उसे कसकर पास में सुलाया। रुलाई का वेग कुछ कम हुआ तो आशा बोली—"भला मौसी को देखने जाने को जी नहीं चाहता मेरा? लेकिन तुम्हें छोड़कर जाने का मन नहीं होता। इसी से जाना नहीं चाहती। तुम इससे नाराज़ मत हो।"

आशा के गीले गालों को धीरे-धीरे पोंछते हुए महेन्द्र ने कहा—"भला यह भी कोई

नाराज़ होने की बात है? तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकतीं, इस पर मैं नाराज़ होऊँ? खैर, तुम्हें कहीं नहीं जाना पड़ेगा।"

आशा ने कहा—"नहीं, मैं काशी ज़रूर जाऊँगी।"

महेन्द्र—"क्यों?"

आशा—"तुमने कहा कि मैं तुम पर सन्देह कर रही हूँ इसीलिए नहीं जाती। जब यह बात एक बार तुम्हारे मुँह से निकल गयी तो कुछ दिनों के लिए मुझे जाना ही पड़ेगा।"

महेन्द्र—"पाप मैंने किया है और प्रायश्चित तुम्हें करना पड़ेगा?"

आशा—"मैं नहीं जानती—लेकिन कहीं-न-कहीं पाप मुझसे हुआ है, नहीं तो ऐसी बात उठती ही नहीं। जिन बातों को मैं ख्वाब में भी नहीं सोच सकती, आखिर वे बातें क्यों सुननी पड़ रही हैं?"

महेन्द्र—"इसलिए कि मैं कितना बुरा हूँ, इसका तुम्हें पता नहीं।"

आशा ने परेशान होकर कहा—"फिर तुमने वही कहा? ऐसा न कहो, मगर काशी अब मैं ज़रूर जाऊँगी।"

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"तो जाओ! लेकिन तुम्हारी नज़रों की ओट में मैं अगर बिगड़ जाऊँ तो?"

आशा बोली—"इतना डराने की ज़रूरत नहीं...मानो मैं इस विचार से ही घबरा रही हूँ।"

महेन्द्र—"लेकिन सोचना चाहिए। लापरवाही से अपने ऐसे स्वामी को अगर तुम बिगाड़ दो तो दोष किसे दोगी?"

आशा—"दोष कम-से-कम तुम्हें न दूँगी, बेफ़िक्र रहो!"

महेन्द्र—"ऐसे में अपना दोष मान लोगी?"

आशा—"हजार बार मान लूँगी।"

महेन्द्र—"ठीक है। तो कल मैं तुम्हारे बड़े चाचाजी से मिलकर सब तय कर आऊँगा।"

इसके बाद महेन्द्र ने कहा, "रात बहुत हो गयी।" करवट बदलकर वह सो गया।

ज़रा देर बाद फिर इधर पलटकर अचानक कह उठा—"चुन्नी, रहने भी दो। न भी जाओगी तो क्या हो जाएगा?"

आशा बोली—"फिर मनाही क्यों? अब अगर एक बार मैं जा न पाई, तो मेरे बदन से तुम्हारी वह झिड़की हमेशा लगी रहेगी। दो ही चार दिन के लिए सही, मुझे भेज दो!"

महेन्द्र बोला—"अच्छा।"

वह फिर करवट बदलकर सो गया।

काशी जाने से एक दिन पहले आशा ने बिनोदिनी के गले से लिपटकर कहा— "भई किरकिरी, मेरा बदन छूकर एक बात बताओ!"

बिनोदिनी ने आशा का गाल दबा दिया। कहा—"कौन-सी?"

आशा—"पता नहीं आजकल तुम कैसी तो हो गयी हो। मेरे पति के सामने तुम

निकलना ही नहीं चाहतीं।"

बिनोदिनी—"क्यों नहीं चाहती, यह क्या तू नहीं जानती? उस दिन महेन्द्र बाबू ने बिहारी बाबू से जो कुछ कहा, तूने अपने कानों नहीं सुना? जब ऐसी बातें होने लगीं तो फिर कमरे से क्या निकलना!"

आशा यह समझ रही थी कि ठीक नहीं है और ये बातें कैसी शर्मनाक हैं, फिलहाल उसने अपने मन से यह भी समझा है। तो भी बोली—"बातें तो ऐसी जाने कितनी उठती हैं, उन्हें अगर बर्दाश्त नहीं कर सकतीं तो फिर प्यार क्या! तुम्हें यह सब भूलना पड़ेगा!"

बिनोदिनी—"ठीक है, भूल जाऊँगी।"

आशा—"मैं कल काशी जा रही हूँ। तुम्हें इस बात का खयाल रखना होगा कि उन्हें कोई तकलीफ़ न हो। जैसे भागती-फिरती हो, ऐसा करने से न चलेगा।"

बिनोदिनी चुप रही। उसकी हथेली दबाकर आशा ने कहा—"मेरे सिर की कसम, यह वचन तो तुम्हें देना ही पड़ेगा।"

बिनोदिनी बोली—"अच्छा, वचन देती हूँ।"

25

एक ओर चाँद डूबता है, दूसरी ओर सूरज उगता है। आशा चली गयी लेकिन महेन्द्र के नसीब में अभी तक बिनोदिनी के दर्शन नहीं। महेन्द्र डोलता-फिरता, जब-तब किसी बहाने माँ के कमरे में पहुँच जाता—लेकिन बिनोदिनी उसे पास आने का कोई मौका ही न देती।

महेन्द्र को ऐसा उदास देखकर राजलक्ष्मी सोचने लगीं—'बहू चली गयी, इसीलिए महेन्द्र को कुछ अच्छा नहीं लगता है।'

अब महेन्द्र के सुख-दुःख के लिहाज से माँ मानो पराई हो गयी है। हालाँकि दिमाग में इस बात के आते ही उन्हें बहुत कष्ट हुआ! फिर भी वह महेन्द्र को उदास देखकर चिन्तित हो गयीं।

उन्होंने बिनोदिनी से कहा—"इस बार इनफ्लूएंजा के बाद मुझे दमा-जैसा कुछ हो गया है। बार-बार सीढ़ियाँ चढ़कर मुझसे ऊपर जाते नहीं बनता। महेन्द्र के खाने-पीने का खयाल तुम्हीं को रखना है, बिटिया! उसकी हमेशा की आदत है, किसी के जतन के बिना महेन्द्र रह नहीं सकता। देखो तो, बहू के जाने के बाद उसे पता नहीं क्या हो गया है। और बहू की भी बलिहारी, वह चली गयी!"

जब राजलक्ष्मी यह सब उससे कह रही थीं, तब बिनोदिनी ने मुँह फेर लिया था और बिछौने की चादर ठीक करने लगी थी। यह देख कर राजलक्ष्मी ने कहा— "तुम्हें कौन-सी बात परेशान कर रही है, बिनोदिनी? जो मैं तुमसे कह रही हूँ उसे करने में क्या झिझक है? लोग चाहे जो कहें पर तुम हमारे घर में पराई नहीं हो, इतना तो तुम जानती ही हो।"

बिनोदिनी बोली—"ज़रूरत क्या है, बुआ! मेरे खयाल से तो ठीक नहीं होगा।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"अच्छा, तो जाने दो। मुझसे जो हो सकेगा, वही करूँगी।"

और वह उसी समय जा कर महेन्द्र के ऊपर वाले कमरे की झाड़-पोंछ करने के लिए उठीं। बिनोदिनी कह उठी—"तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, तुम मत जाओ! मैं ही जाती हूँ। मुझे माफ़ करो बुआ, जैसा तुम कहोगी, करूँगी।"

राजलक्ष्मी लोगों की बातों की कतई परवाह नहीं करतीं। पति की मृत्यु के बाद से दुनिया और समाज में उन्हें महेन्द्र के सिवा और कुछ नहीं पता। बिनोदिनी ने जब समाज की निन्दा का इशारा किया तो वे खीझ उठीं। जन्म से महेन्द्र को देखती आई हैं, उसके जैसा भला लड़का मिलता कहाँ है? जब कोई उसकी आलोचना करता तो राजलक्ष्मी से रहा न जाता उन्हें लगता कि इसी पल उस आदमी की ज़बान गल क्यों नहीं जाती!

महेन्द्र कॉलेज से लौटा और आज अपने कमरे को देखकर ताज्जुब में पड़ गया। दरवाज़ा खोलते ही चन्दन और धूप की खुशबू से घर महक उठा। मसहरी में रेशमी झालर, बिछौने पर धप-धप धुली चादर और पुराने तकिये की बजाय दूसरा रेशमी फूल-कढ़ा चौकोर तकिया—उसकी खूबसूरत कढ़ाई बिनोदिनी की काफ़ी दिनों की मेहनत का फल था। आशा उससे पूछा करती थी—"ये चीज़ें तू बनाती आखिर किसके लिए है किरकिरी?" बिनोदिनी हँसकर कहती—"अपनी चिता के लिए, सखी। मरण के सिवा अपने सुहाग के लिए है भी कौन?"

दीवार पर महेन्द्र की जो तस्वीर थी, उसके फ्रेम के चारों कोनों पर बड़ी कुशलता से रेशमी गाँठें बाँधी गयी थीं—नीचे की तिपाई पर फूलदानों में गुलदस्ते— मानो महेन्द्र की प्रतिमूर्ति को किसी अजाने भक्त की पूजा मिली हो। कुल मिलाकर कमरे की शक्ल ही बदल गयी थी। खाट पहले जहाँ थी, वहाँ से थोड़ी खिसकी हुई थी। कमरे को दो हिस्सों में बाँट दिया गया था। खाट के पास की दो बड़ी अलमारियों में कपड़े डालने से एक ओट जैसी हो गयी थी, जिससे फ़र्श पर बैठने का बिछौना और रात को सोने की खाट अलग-अलग हो गयी थीं। काँच की जिस अलमारी में आशा की शौकिया सजावट थी, खिलौने थे, उसमें के काँच पर अन्दर से लाल कपड़ा जड़ दिया गया था। अब कुछ न दिखता था। कमरे के पुराने इतिहास की जो भी निशानी थी, नये हाथ की नई सजावट से वह ढँक गयी थी।

थका-माँदा महेन्द्र फ़र्श के साफ़-सुथरे बिछौने पर लेट गया। तकियों पर सिर रखते ही एक मीठी-सी खूशबू मिली—तकिये की रुई के साथ नागकेसर का पराग और कुछ इत्र डाला गया।

महेन्द्र की आँखें झप आईं। लगा, इस तकिये पर जिन हाथों की कला-कुशलता की छाप पड़ी है, मानो उसी की चम्पा-कली-सी उँगलियों की सुगन्ध आ रही है।

इतने में चाँदी की तश्तरी में फल-फूल और काँच के गिलास में बर्फ़ डला अनन्नास का शर्बत लिये नौकरानी आई।

महेन्द्र ने बड़ी तृप्ति से खाया। बाद में चाँदी के डिब्बे में पान लेकर बिनोदिनी आई। बोली—"इधर कई दिन मैं खाने के समय न आ पाई, माफ़ करना! और जो चाहे सो करो, मगर मेरे सिर की कसम रही, मेरी आँख की किरकिरी को यह मत लिख भेजना कि तुम्हारी देख-भाल ठीक से नहीं हो रही है। जहाँ तक मुझसे बनता है, करती हूँ।"

बिनोदिनी ने पान का डिब्बा महेन्द्र की तरफ़ बढ़ाया। पान में भी आज केवड़े की खुशबू थी।

महेन्द्र ने कहा—"सेवा-जतन के मामले में कभी-कभी ऐसी कमी रहना भी अच्छा है।"

बिनोदिनी बोली—"क्यों भला?"

महेन्द्र ने कहा—"बाद में उलाहना देकर ब्याज समेत वसूलने की गुंजाइश रहती है।"

"समझी। तो यह बताइए महाजनजी, सूद कितना हुआ?"

महेन्द्र ने कहा—“खाने के समय हाज़िर न रहीं, तो बाद में हाज़िर होने के बाद भी बकाया रह जाएगा।”

बिनोदिनी बोली—“ऐसा कड़ा हिसाब है तुम्हारा कि देखती हूँ, तुम्हारे हाथों पड़ जाने पर छुटकारा नहीं।”

महेन्द्र ने कहा—“हिसाब कड़ा तो उसे कहते हैं जब वसूला जा सके। अगर वसूल ही न पाओ तो हिसाब रखने से क्या फायदा?”

बिनोदिनी ने कहा—“वसूल करने योग्य है भी क्या! मगर कैद तो कर ही रखा है।”

और मज़ाक को एकाएक गम्भीर बनाते हुए उसने एक लम्बी साँस छोड़ी।

महेन्द्र ने भी गम्भीर होकर कहा—“तो यह कैदखाना है, क्यों?”

ऐसे में रोज़ की तरह बैरा तिपाई पर बत्ती रख गया।

अचानक आँख पर रोशनी पड़ी तो हाथ की ओट करके नज़र झुकाए बिनोदिनी ने कहा—“क्या पता भई, बातों में तुमसे कौन जीते? मैं चली।”

महेन्द्र ने अचानक कसकर उसका हाथ पकड़ लिया। कहा—“बन्धन जब मान ही लिया, तो फिर जाओगी कहाँ?”

बिनोदिनी बोली—“छिः छोड़ो! जिसके भागने का कोई रास्ता नहीं, उसे बाँधने की कोशिश कैसी!”

ज़बर्दस्ती हाथ छुड़ाकर बिनोदिनी चली गयी। महेन्द्र सुगंधित तकिये पर सिर रखे बिछावन पर पड़ा रहा। उसके कलेजे में खलबली मच गयी। सूनी साँझ, सूना कमरा—नव बसन्त की बयार—बिनोदिनी का मन मानो पकड़ में आया-आया; लगा महेन्द्र अब अपने को संयमित नहीं कर पाएगा। जल्दी से उसने बत्ती बुझ दी, दरवाज़ा बन्द कर लिया और समय से पहले ही बिस्तर पर सो गया।

बिछावन भी तो यह भी पिछले वाला नहीं। चार-पाँच गद्दे पड़े थे। काफ़ी नर्म। एक खुशबू यहाँ भी। अगरु की, खस की या जाने काहे की थी, ठीक-ठीक समझ में न आई। महेन्द्र बार-बार इस-उस करवट लेटने लगा—मानो कोई भी पुरानी एक निशानी मिले कि उसे जकड़ ले। मगर कुछ भी हाथ न आया।

रात के नौ बजे दरवाज़े पर दस्तक पड़ी। बाहर से बिनोदिनी ने कहा—“लालाजी, आपका भोजन! दरवाज़ा खोलिए!”

महेन्द्र जल्दी से उठा और दरवाज़ा खोलने के लिए कुंडी पर हाथ लगाया। लेकिन दरवाज़े को खोला नहीं, फ़र्श पर पट पड़ गया। बोला—“नहीं, मुझे भूख नहीं है।”

बाहर से बिनोदिनी की घबराहट-भरी आवाज़ आई—‘तबीयत तो खराब नहीं है? पानी ला दूँ? और कुछ चाहिए?”

महेन्द्र ने कहा—“नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए।”

बिनोदिनी बोली—“आपको हमारी कसम। क्या हुआ बताओ! अच्छा चलो तबीयत खराब है तो कुंडी तो खोलो।”

महेन्द्र ने ज़ोर से कहा—“उँहूँ! नहीं खोलूँगा। तुम जाओ।”

महेन्द्र फिर जाकर अपने बिस्तर पर लेट गया और आशा की स्मृति को सूनी सेज पर टटोलने लगा।

लाख कोशिश करने पर भी जब नींद न आई, तो दवात-कलम लेकर आशा को खत लिखने बैठा। लिखा, 'आशा, अब और ज़्यादा दिन मुझे अकेला मत छोड़ो—तुम्हारे न रहने से ही मेरी सारी प्रवृत्तियाँ ज़ंजीर तोड़कर मुझे न जाने कहाँ खींच ले जाना चाहती हैं। वह रोशनी कहाँ जिससे राह देख-देख कर चलूँ? वह रोशनी तो तुम्हारी विश्वास-भरी आँखों की प्रेमपूर्ण दृष्टि है। मेरी मंगल, ध्रुव, तुम जल्दी चली आओ! मुझे अविचल बनाओ, मुझे बचाओ, मेरे हृदय को भर दो।'

महेन्द्र न जाने कब तक लिखता रहा। दूर, और दूर के कई गिरजों की घड़ियों में तीन बजे। कलकत्ता की सड़कों पर गाड़ियों की घड़घड़ाहट थम चुकी थी। मुहल्ले के उस छोर पर किसी नटी के कंठ से विहाग की जो तान उठ रही थी, वह भी सारी दुनिया पर फैली हुई शन्ति और नींद में बिल्कुल डूब गयी। आशा को हृदय से याद करके और मन के आवेग को लम्बे पत्र में ज़ाहिर करके महेन्द्र को काफ़ी राहत मिली और लेटते ही उसे नींद आने में देर न लगी।

सुबह उसकी नींद खुली तो काफ़ी देर हो गयी थी। कमरे में धूप आ रही थी।

महेन्द्र जल्दी से उठ बैठा, रात का तनाव हल्का हो गया था। देखा, रात की लिखी चिट्ठी दवात से दबी तिपाई पर पड़ी है। उसे फिर से पढ़ गया। उसे लगा—'अरे, यह किया क्या मैंने! यह तो मानो उपन्यास का वृत्तांत हो गया। गनीमत कहो कि इसे भेजा नहीं। क्या सोचती आशा मन में! आधी बातें तो वह समझती ही नहीं।'

रात को जो आवेग बे-हिसाब बढ़ गया था, उसकी याद आते ही महेन्द्र शर्मसार हो गया। चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिए। सरल भाषा में आशा को एक छोटा-सा पत्र लिखा—

> "और कितनी देर करोगी तुम? तुम्हारे बड़े चाचा के आने में अगर विलम्ब हो, तो मुझे वैसा लिखो। मैं खुद आकर तुम्हें ले जाऊँगा। अकेले मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

26

महेन्द्र के वापस जाने के कुछ ही दिन बाद जब आशा काशी पहुँची तो अन्नपूर्णा को भारी चिन्ता हुई। क्या दोनों पति-पत्नी के बीच सचमुच कुछ गड़बड़ हो गयी थी? वह आशा से तरह-तरह के सवाल पूछने लगीं ताकि उन्हें कुछ पता लग सके। उन्होंने आशा से बिनोदिनी के बारे में पूछा—

"क्यों री चुन्नी, तेरी वह आँख की किरकिरी कैसी है, तेरी राय में जिसके मुकाबले दूसरी गुणवंती नहीं?"

"सच मौसी, मैंने बढ़ाकर बिल्कुल नहीं कहा है। जैसी बुद्धि, वैसा ही रूप! काम-काज में उतनी ही कुशल।"

"तेरी तो सखी ठहरी। तू तो गुणवंती बताएगी ही। घर के और दूसरे लोग क्या कहते हैं?"

"माँ तो उसकी तारीफ़ करते नहीं थकतीं कभी। जब भी वह अपने घर जाने को कहती है, माँ परेशान हो उठती हैं। उसके जैसी सेवा कोई नहीं कर सकता। घर की नौकर-नौकरानी भी बीमार पड़ जाएँ, तो माँ और बहन की तरह उनकी सेवा करती है।"

"और महेन्द्र की क्या राय है?"

"उन्हें तो तुम जानती ही हो, निहायत अपना कोई न हो तो उन्हें नहीं जँचता। हर कोई मेरी किरकिरी को चाहता है, सिवा मेरे पति के। उनसे अब तक ठीक पटरी नहीं बैठी।"

"सो क्यों?"

"जोर-ज़बर्दस्ती मैं कभी मिला भी देती हूँ, पर बोल-चाल लगभग बन्द ही समझो! कितने कम बोलने वाले हैं, मालूम ही है तुम्हें! लोग समझते हैं, दंभी हैं। मगर बात वैसी नहीं, दो-एक खास-खास आदमियों के सिवा औरों को वह बर्दाश्त नहीं कर पाते।"

अंतिम बात कहकर आशा को अचानक लाज लगी—दोनों गाल तमतमा उठे। अन्नपूर्णा निश्चिन्त और प्रसन्न होकर मन-ही-मन हँसीं। बोलीं—"ठीक कहती हो, महेन्द्र जब आया था यहाँ, उसका नाम कभी उसकी ज़बान पर भी न आया।"

आशा ने दुःखी होकर कहा—"यही उनमें खामी है। जिसे नहीं चाहते वह मानो है ही नहीं। उसे मानो न कभी देखा, न जाना।" शान्त स्निग्ध मुस्कान से अन्नपूर्णा ने कहा —"और जिसे चाहता है, मानो जन्म-जन्मांतर उसी को देखता-जानता रहा है, यह भाव भी उसमें है, है न चुन्नी?"

आशा ने उत्तर न देकर नज़र झुका ली।

अन्नपूर्णा ने पूछा—"और बिहारी का क्या हाल है, चुन्नी? क्या वह कभी शादी नहीं करेगा?"

सुनते ही आशा का चेहरा गम्भीर हो गया। वह सोच ही न पाई कि क्या जवाब दे।

आशा को निरुत्तर देखकर अन्नपूर्णा घबरा गयीं। पूछा—"सच-सच बता चुन्नी, बिहारी बीमार-वीमार तो नहीं है।"

इस निःसन्तान महिला के लिए बिहारी एक प्यारे बेटे की तरह था। उनका एकमात्र दुःख यही था कि वे बिहारी का घर बसाने में सफल नहीं हो पाई थीं। यह खयाल कि बिहारी अपने सहारे, बिल्कुल अकेला रहता था, उन्हें परेशान किए रहता था।

आशा ने कहा—"देख मौसी, बिहारी लालाजी की बात मुझसे कभी मत करना।"

अचरज से अन्नपूर्णा ने कहा—"क्यों?"

आशा बोली—"यह मैं नहीं बता सकती।" कहकर वह कमरे से बाहर चली गयी।

अन्नपूर्णा चुपचाप बैठी सोचने लगीं—हीरे जैसा लड़का बिहारी, कैसे इतना बदल गया है कि उसका नाम सुनते ही चुन्नी उठकर बाहर चली गयी। किस्मत का फेर!

साँझ को अन्नपूर्णा पूजा पर बैठी थीं कि कोई गाड़ी बाहर आकर रुकी। गाड़ीवान घरवाले को पुकारता हुआ दरवाज़े पर थपकी देने लगा। पूजा करती हुई अन्नपूर्णा बोल उठीं—"अरे लो! मैं तो भूल ही गयी थी एकबारगी। आज कुंज की सास और उसकी बहन की दो लड़कियों के आने की बात थी इलाहाबाद से। शायद आ गयीं सब। चुन्नी बत्ती लेकर दरवाज़ा खोल ज़रा!"

लालटेन लिये आशा ने दरवाज़ा खोल दिया। देखा, बाहर बिहारी खड़ा था। आशा को वहाँ देख कर आश्चर्य से वह बोल उठा—"अरे, यह क्या भाभी, मैंने तो सुना था, तुम काशी नहीं आओगी?"

आशा के हाथ से लालटेन छूट गयी। उसे मानो भूत दिख गया। एक साँस में वह दुतल्ले पर भागी और घबराकर चीख पड़ी—"मौसी! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ मैं, इनसे कह दो, आज ही चले जाएँ।"

पूजा के आसन पर अन्नपूर्णा चौंक उठीं। कहा—"अरे, किन से कह दूँ चुन्नी, किन से?"

आशा ने कहा—"बिहारी बाबू यहाँ भी आ गए!"

और बगल के कमरे में जाकर उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

नीचे खड़े बिहारी ने सब सुन लिया। वह उल्टे पाँवों भाग जाने को तैयार हो गया—लेकिन पूजा छोड़कर अन्नपूर्णा जब नीचे उतर आईं तो देखा, बिहारी दरवाज़े के पास ज़मीन पर बैठा है—उसके शरीर की सारी शक्ति चली गयी है।

वह रोशनी नहीं ले आई थीं। अँधेरे में बिहारी के चेहरे का भाव न देख सकीं, बिहारी भी उन्हें न देख सका।

अन्नपूर्णा ने आवाज़ दी—"बिहारी!"

बिहारी का बेबस शरीर एड़ी से चोटी तक बिजली की चोट से चौंक पड़ा। बोला —“चाची, बस और एक शब्द भी न कहो, मैं चला।”

बिहारी ने ज़मीन पर ही माथा टेका, अन्नपूर्णा के पाँव भी न छुए। माँ जिस तरह गंगासागर में बच्चे को डाल आती है, अन्नपूर्णा ने उसी तरह रात के उस अँधेरे में चुपचाप बिहारी का विसर्जन किया—पलटकर उसे पुकारा नहीं। देखते-ही-देखते गाड़ी बिहारी को लेकर ओझल हो गयी।

आशा ने उसी रात महेन्द्र को पत्र लिखा—

“आज शाम को एकाएक बिहारी लाला यहाँ आए थे। बड़े चाचा कब तक कलकत्ता लौटेंगे, ठिकाना नहीं। तुम जल्दी आकर मुझे यहाँ से ले जाओ?”

27

उस दिन रात तक जागते रहने और भारी आवेग के थपेड़े झेलने के कारण सुबह महेन्द्र में एक अवसाद तारी था। फागुन आधा बीत चुका था—गर्मी पड़नी शुरू हो गयी थी। और सवेरे महेन्द्र अपने सोने के कमरे के एक ओर बैठकर पढ़ता था। आज वह तकिये के सहारे फ़र्श पर पड़ा रहा। काफ़ी समय बीत गया, पर वह नहाने नहीं गया। रास्ते में फेरीवाले आवाज़ लगाते हुए गुज़रने लगे। दफ्तर जाने वाली गाड़ियों की अविराम घड़घड़ाहट सुनायी देने लगी। पड़ोसी का नया मकान खड़ा हो रहा था। मज़दूरिनें छत की कुटाई की ताल पर एक स्वर से गाने लगीं। हल्की गर्म दक्खिनी बयार से महेन्द्र की दुखती नसें शिथिल हो आई थीं। कोई कठिन निश्चय, कोई दुरूह चेष्टा, मन से जूझना आज के इस अलसाए गिरे-गिरे से बसंत के दिन सम्भव न था।

"लाला जी, आज हो क्या गया तुम्हें? नहाओगे नहीं, खाना तैयार है। अरे, सो रहे हो। तबीयत खराब है? सिर दुःख रहा है?"—और, पास आकर बिनोदिनी ने उसके माथे पर हाथ रखा।

अधमुंदी आँखों और लड़खड़ाई आवाज़ में महेन्द्र ने कहा—"आज तबीयत कुछ अच्छी नहीं—नहाऊँगा नहीं आज।"

बिनोदिनी बोली—"न नहाओगे तो थोड़ा-सा खा लो!"

ज़िद करके बिनोदिनी उसे रसोई में ले गयी और बड़े जतन और आग्रह से खिलाया।

खा-पीकर महेन्द्र फिर आकर लेट गया। बिनोदिनी उसके सिरहाने बैठकर धीरे-धीरे सिर दबाने लगी! आँखें बन्द किए महेन्द्र ने कहा—"तुमने अभी खाया नहीं है, भई किरकिरी! जाओ, खा लो!"

मगर बिनोदिनी न गयी। अलसाई दोपहरी के गर्म झोंकों से घर के पर्दे उड़ने लगे, दीवार के पास वाले नारियल के पेड़ की बेमानी सरसराहट कमरे में सुनायी देने लगी। महेन्द्र का कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा और बिनोदिनी का घना निःश्वास उसी ताल पर महेन्द्र के कपाल पर पड़े बालों को नचाता रहा। किसी के भी गले से एक शब्द न निकला। महेन्द्र सोचने लगा—'ओर-छोर-हीन इस संसार के अनंत स्त्रोत में बहा जा रहा हूँ, ज़रा देर के लिए कभी कहीं नाव अगर किनारे पर लगे तो उससे किसी का क्या आता-जाता है, न भी लगे तो भी क्या!'

सिरहाने बैठी महेन्द्र का सिर सहलाती बिनोदिनी का सिर विह्वल यौवन के भार से धीरे-धीरे झुका जा रहा था और अन्त तक उसकी लटों की नोक महेन्द्र के कपोल को छूने

लगी। हवा से हिलती हुई लटों के कोमल स्पर्श से उसका सारा शरीर रह-रहकर काँप उठने लगा, साँस मानो कलेजे के पास रुक गयी, बाहर निकलने की राह न मिली। महेन्द्र झटपट उठ बैठा। बोला—"मेरी क्लास है, कॉलेज चलूँ, पहले ही देर हो गयी है।"

कह कर वह बिनोदिनी की तरफ़ ताके बिना खड़ा हो गया।

बिनोदिनी बोली—"परेशान न हो, कपड़े मैं ला देती हूँ।"

जाकर वह महेन्द्र के कॉलेज जाने के कपड़े ले आई।

महेन्द्र जल्दी-जल्दी चला गया, लेकिन कॉलेज में मन न लगा। देर तक पढ़ने में जी लगाने की कोशिश की मगर बेकार। आखिर जल्दी ही घर लौट आया।

कमरे में दाखिल हुआ तो देखा, छाती के नीचे तकिया रखे ज़मीन पर लेटी बिनोदिनी कोई किताब पढ़ रही है—घने काले बालों का ढेर उसकी पीठ पर बिखरा पड़ा है। महेन्द्र के जूतों की आवाज़ शायद उसे सुनाई नहीं दी। पैर दबाकर महेन्द्र उसके करीब जा खड़ा हुआ। पढ़ते-पढ़ते उसने बिनोदिनी को एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए देखा।

महेन्द्र ने कहा—"अरी ओ करुणामयी, कल्पना की दुनिया के लिए हृदय की फिजूलखर्ची मत करो! क्या पढ़ रही हो ज़रा बताओ तो सही?"

घबराकर बिनोदिनी उठ बैठी। किताब अपने आँचल में छिपा ली। महेन्द्र ने झपटकर छीनने की कोशिश की। देर तक हाथापाई, छीना-झपटी के बाद महेन्द्र ने बिनोदिनी से किताब छीन ली। देखा बंकिम बाबू की लिखी 'विषवृक्ष' थी। जल्दी-जल्दी साँस लेती हुई गुस्से में मुँह फेरकर बिनोदिनी चुप हो रही।

महेन्द्र के मन में बेहद उथल-पुथल मची थी। बड़ी कोशिश के बाद वह हँसकर बोला —"बस, बड़ा धोखा हुआ। मैंने सोचा था, कुछ बड़ी ही गोपनीय चीज़ होगी और पहाड़ खोदने के बाद निकला क्या, चुहिया! बंकिम बाबू का 'विषवृक्ष'?"

बिनोदिनी बोली—"मेरे पास भला क्या गोपनीय हो सकता है, सुनूँ तो ज़रा।"

महेन्द्र फट से कह उठा—"अरे, मान लो कहीं बिहारी की चिट्ठी आई होती!"

पल में बिनोदिनी की निगाह से बिजली छिटक पड़ी। अब तक मानो कामदेव कमरे के कोने में खिलवाड़ कर रहा था—वह मानो दूसरी बार जलकर राख हो गया। जलती हुई एक लपट की तरह बिनोदिनी लम्हे-भर में उठ खड़ी हुई। उसकी कलाई पकड़कर महेन्द्र ने कहा—"माफ़ करो, मैंने मज़ाक किया था।"

बिनोदिनी ने झटके से अपनी कलाई छुड़ा ली और कहा—"मज़ाक आखिर किसका! उनसे मैत्री के योग्य होते तो मैं मज़ाक सह लेती। तुम्हारा दिल बड़ा छोटा है—मैत्री करने की शक्ति नहीं, ऊपर से करने चले मज़ाक!"

बिनोदिनी चलने लगी। महेन्द्र ने दोनों हाथों से उसके पैर थाम लिये।

ठीक इसी समय सामने एक छाया दिखी। महेन्द्र ने चौंककर उसके पैर छोड़ दिए। देखा, बिहारी खड़ा था।

बिहारी ने अपनी स्थिर दृष्टि से दोनों को जलाते हुए शान्त और धीर स्वर से कहा —"बड़े बेमौके आ पहुँचा मैं। खैर! ज़्यादा देर ठहरना नहीं है। एक बात कहनी थी। मैं काशी गया था। पता नहीं था कि भाभी वहाँ हैं। अनजाने उनके प्रति यह कसूर हो गया।

उनसे माफ़ी माँगने का अवसर नहीं है, सो तुमसे माँगने आया हूँ। जाने-अनजाने अगर कभी मेरे मन को कोई पाप छू गया हो, तो उसके लिए उन्हें कोई दुःख न सहना पड़े, तुमसे यही मेरी विनती है।"

अचानक बिहारी के सामने उसकी कमज़ोरी ज़ाहिर हो गयी, इससे महेन्द्र का मन दहक उठा। अभी उदार बनने का मौका न था। वह ज़रा हँस कर बोला, "एक कहावत है —चोर की दाढ़ी में तिनका। तुम्हारा ठीक वही हाल है। मैंने न तो तुम्हें दोष मानने को कहा, न इनकार करने को। फिर माफ़ी माँगकर साधु बनने क्यों आए?"

बिहारी कुछ देर खड़ा रहा। फिर जवाब देने की ज़ोरदार कोशिश से उसके होंठ काँप उठे, तो बिनोदिनी बोल पड़ी—"बिहारी बाबू, तुम कोई जवाब मत दो—कुछ मत कहो! यह आदमी जो कुछ भी ज़बान पर लाया, वह उसी के माथे का कलंक हो रहा है—वह कलंक तुम्हें नहीं छू पाया है।"

जाने बिनोदिनी का कहा बिहारी के कानों तक पहुँचा या नहीं—वह जैसे स्वप्न में चलता हुआ वहाँ से सीढ़ियों पर होकर नीचे उतरने लगा।

बिनोदिनी उसके पीछे-पीछे गयी। कहा—"लाला जी, मुझसे तुम्हें कुछ भी नहीं कहना है? झिड़कना हो तो झिड़को!"

बिहारी फिर भी जब कुछ न बोला और आगे ही बढ़ने लगा तो बिनोदिनी ने आगे आकर दोनों हाथों से उसके दाएँ हाथ को कसकर पकड़ लिया। बेहद नफ़रत से उसे झटककर बिहारी चला गया। उसे यह भी न मालूम हुआ कि उस झटके से बिनोदिनी गिर पड़ी। गिरने की आवाज़ सुनकर महेन्द्र दौड़ा आया। बिनोदिनी की बायीं कोहनी फूट गयी थी। लहू बह रहा था।

महेन्द्र बोला—"उफ, काफ़ी कट गया है!" और अपने महीन कुर्ते से थोड़ा-सा कपड़ा फाड़कर महेन्द्र ने वहाँ पट्टी बाँध देनी चाही।

बिनोदिनी ने झट अपना हाथ हटा लिया। कहा—"ऊँहूँ, छोड़ दो। लहू बहने दो!"

महेन्द्र ने कहा—"पट्टी बाँधकर एक दवा देता हूँ— दर्द जाता रहेगा, घाव जल्दी ठीक हो जाएगा।"

बिनोदिनी खिसक गयी। बोली—"मैं दर्द मिटाना नहीं चाहती—इस घाव का निशान हमेशा रहे।"

महेन्द्र ने कहा—"आज बेताब होकर दूसरे के सामने मैंने तुम्हारी हेठी की है, माफ़ कर सकोगी मुझे?"

बिनोदिनी बोली—"माफ़ी किस बात की? ठीक किया है। मैं क्या किसी से डरती हूँ? मैं किसी को नहीं मानती! जो मुझे धक्का देकर गिरा जाते हैं, वही क्या अपने सब हैं और जो पैर पकड़कर खींचते हुए रोक रखना चाहते हैं, वे कोई नहीं?"

महेन्द्र उन्मत्त-सा गद्गद स्वर में बोला—"बिनोदिनी! तो मेरे प्रेम को तुम पैरों से ठुकराओगी नहीं?"

बिनोदिनी ने कहा—"सिर-आँखों पर रखूँगी। ज़िन्दगी में मुझे इतना ज़्यादा तो नहीं मिला कि मैं 'नहीं चाहिए' कहकर लौटा दूँ।"

महेन्द्र ने फिर तो दोनों हाथों से उसके दोनों हाथ थामकर कहा—"तो फिर मेरे कमरे में चलो! आज मैंने तुम्हारा दिल दुखाया है—तुम भी मुझे चोट पहुँचाकर चली आई हो, यह मलाल जब तक मिट नहीं जाता, मुझे न खाने में चैन है, न सोने में।"

बिनोदिनी बोली—"आज नहीं। आज छोड़ दो मुझे। अगर मैंने तकलीफ़ पहुँचाई हो तो माफ़ करना!"

महेन्द्र बोला—"तुम भी माफ़ कर दो मुझे, वरना रात मैं सो नहीं सकूँगा।"

बिनोदिनी बोली—"मैंने माफ़ कर दिया।"

उसी दम बिनोदिनी से प्यार और क्षमा का कोई प्रमाण पाने के लिए महेन्द्र व्यग्र हो उठा। लेकिन उसके मुँह की ओर नज़र पड़ते ही वह ठिठक गया। बिनोदिनी नीचे उतर गयी और वह भी छत पर टहलने लगा। आज अचानक बिहारी के सामने उसकी चोरी पकड़ी गयी, इससे उसके मन में मुक्ति की एक खुशी आई। चोरी-चुपके में एक घिनौनापन है, वह घिनौनापन मानो एक आदमी के पास प्रकट होने से बहुत हद तक जाता रहा। मन-ही-मन वह बोला—'खुद को भला बताकर मैं अब यह झूठ नहीं चलाना चाहता—लेकिन मैं प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ—यह बात झूठी नहीं है।' अपने प्रेम के गर्व से उसकी अकड़ इतनी बढ़ गयी कि खुद को मानकर वह अकड़ में गर्व का अनुभव करने लगा। बिनोदिनी की छवि ने उस पल उसके दिल से और सब कुछ हटा कर साफ़ कर दिया था—सारा संसार, तारों-जड़ा आकाश, उसका जीवन, उसके कर्तव्य—बिनोदिनी ने सब धो-पोंछ दिया था।

28

दूसरे दिन सोकर उठते ही महेन्द्र का मन एक मीठे आवेग से भर उठा। प्रभात की सुनहली किरणों ने मानो उसकी सभी चिन्ता-वासना पर सोना चढ़ा दिया। कितनी प्यारी है पृथ्वी, कितना अच्छा आकाश! फूल के पराग जैसी हवा मानो उसके मन को उड़ा ले जाने लगी।

सवेरे-सवेरे मृदंग-मजीरे लिये वैष्णव भिखारी ने गाना शुरू कर दिया था। दरबान उसे खदेड़ने लगा। महेन्द्र ने दरबान को झिड़का और भिखारी को एक रुपया दे दिया। बैरा बत्ती लेकर लौट रहा था। लापरवाही से उसने बत्ती गिरा दी। चूर-चूर हो गयी। महेन्द्र को देखकर तो उसके प्राण कूच करने लगे। महेन्द्र ने लेकिन डाँट नहीं बताई। कहा —"वहाँ अच्छी तरह से झाड़ू लगा दे, किसी को काँच न चुभ जाए।"

आज कोई नुकसान उसे नुकसान जैसा न लगा।

अब तक प्रेम पर्दे के पीछे नेपथ्य में छिपा बैठा था। अब सामने आकर उसने पर्दा उठा दिया है। मानो सारे संसार पर से पर्दा उठ गया। रोज़-रोज़ की देखी-सुनी दुनिया की सारी तुच्छता गायब हो गयी। पेड़-पौधे, राह चलते लोग, शहर की चहल-पहल...आज सब-कुछ जैसे अनोखा हो! संसार-व्यापी यह नवीनता अब तक आखिर थी कहाँ!

उसे महसूस होने लगा, आज बिनोदिनी से और दिनों-जैसा साधारण मिलन न होगा। आज सुबह से वह बेताब घूमता रहा—कॉलेज न जा सका। जाने मिलन की घड़ी अचानक कब आ जाए—यह तो किसी पंचांग में लिखा नहीं।

घर के धन्धों में जुटी बिनोदिनी की आवाज़ कभी भण्डार से, कभी रसोई से महेन्द्र के कानों में पहुँचने लगी। आज यह उसे अच्छा न लगा। आज मन-ही-मन बिनोदिनी को उसने संसार से बहुत दूर ले जाकर स्थापित किया था।

समय काटे नहीं कट रहा था। महेन्द्र का खाना-पीना हो गया। घर के काम-धन्धों से छुट्टी हुई। दोपहर सुनसान हो गयी। मगर बिनोदिनी का पता नहीं। दुःख और सुख, बेताबी और उम्मीद में महेन्द्र के मन के सारे तार झनझनाने लगे।

कल जिसके लिए छीना-झपटी हुई थी, वह 'विषवृक्ष' किताब फ़र्श पर पड़ी थी। उसे देखते ही छीना-झपटी की याद हो आई और महेन्द्र के मन में पुलकन भरा आवेश जग गया। कल बिनोदिनी ने जिस तकिये पर अपना सिर रखा था, उसे करीब खींचकर महेन्द्र ने उस पर अपना माथा रखा। पड़ा-पड़ा 'विषवृक्ष' के पन्ने पलटने लगा। जाने कब किताब में जी लग गया और कब पाँच बज गए, पता नहीं।

इतने में एक मुरादाबादी थाली में फल-मिठाई और एक तश्तरी में बर्फ-चीनी डाल

खुशबू-बसा खरबूजा लिये बिनोदिनी आई। महेन्द्र से बोली—"कर क्या रहे हैं! आखिर बात क्या है, पाँच बज गए और न तुमने मुँह-हाथ धोया, न कपड़े बदले!"

महेन्द्र के मन में एक धक्का-सा लगा। उसे क्या हुआ है, यह भी पूछने की बात है? महेन्द्र खाने लगा। बिनोदिनी जल्दी से महेन्द्र के छत पर सूखते कपड़े लाकर तह करने और अपने कुशल हाथों से उन्हें अलमारी में करीने से रखने लगी।

महेन्द्र ने कहा—"ज़रा रुको तो सही, खा लूँ, फिर मैं भी तुम्हारा हाथ बँटाता हूँ।"

बिनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा—"दुहाई है, और चाहे जो करो, हाथ मत बँटाना!"

महेन्द्र खा चुका तो उठकर बोला—"अच्छा, मुझे निकम्मा समझती हो खैर, हो जाए आज इम्तहान!"

और महेन्द्र ने नाहक ही कपड़े तह करने की कोशिश की। लेकिन नतीजा खराब ही निकला।

बिनोदिनी बोली—"अजी महाशय, आप रख दीजिए। मेरा काम मत बढ़ाइए!"

महेन्द्र बोला—"तो तुम काम किए जाओ, मैं देख-देखकर सीखूँ।"

वह अलमारी के सामने बिनोदिनी के पास जाकर बैठ गया। बिनोदिनी कपड़े झाड़ने के बहाने कभी-कभी महेन्द्र की पीठ पर उन्हें पटककर ढंग से तह लगाने और सहेजने लगी।

और इस तरह आज का मिलन शुरू हुआ। तड़के से उठकर महेन्द्र ने जैसी कल्पना कर रखी थी, उस अनोखेपन का कोई आभास ही नहीं। महेन्द्र फिर भी दुःखी न हुआ, बल्कि उसे थोड़ा आराम मिला। अपने काल्पनिक आदर्श को किस तरह वह रूप देता, उसका ढंग क्या होता, क्या कहता, क्या जताता, तय नहीं कर पा रहा था। कपड़े सहेजने के इस हँसी-मज़ाक में मानो अपने गढ़े एक असम्भव और कठिन आदर्श से उसे मुक्ति मिली।

इतने में राजलक्ष्मी आईं। कहा—"महेन्द्र, बहू कपड़े सहेज रही है, तू वहाँ बैठा क्या कर रहा है?"

बिनोदिनी बोली—"ज़रा देखो तो सही बुआ, नाहक ही मेरे काम में देर कर रहे हैं।"

महेन्द्र बोला—"अरे रे! मैं तो मदद कर रहा था।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"हाय मेरी तक़दीर! तू और मदद, सुनती है बहू, इसकी सदा की यही आदत है। माँ-चाची के लाड़ में पला—कभी अपने हाथ से तिनका भी हिलाया है इसने!"

बिनोदिनी से जब भी बातचीत होती सिर्फ़ यही कि इसका क्या किया जाए! यह तो हर बात में अपनी माँ का मुँह देखता रहता है। वह उसकी सेवा का भार बिनोदिनी पर डालकर निश्चिन्त थीं, वह इससे भी खुश थीं कि महेन्द्र ने बिनोदिनी की मर्यादा समझी है। महेन्द्र को सुना-सुनाकर वह बोलीं—"बहू, आज तुमने महेन्द्र के गरम कपड़े धूप में सुखा लिये, कल उसके नये रूमालों में उसके नाम का अक्षर तुम्हें काढ़ देना पड़ेगा। जब से तुम्हें साथ ले आई हूँ, आदर-जतन तो कुछ किया नहीं, बस काम में ही परेशान करती रही।"

बिनोदिनी ने कहा—"ऐसा कहोगी बुआ, तो मैं समझूँगी तुम मुझे पराई समझती

हो।"

दुलार से राजलक्ष्मी ने कहा—"अहा बिटिया, तुम्हारी जैसी अपनी और है कौन मेरी?"

बिनोदिनी कपड़े सहेज चुकी थी। राजलक्ष्मी ने पूछा—"तो अब चाशनी के लिए चीनी चढ़ा दूँ कि और कोई काम है तुम्हें?"

बिनोदिनी बोली—"नहीं बुआ, और कोई काम नहीं है। चलो, मिठाइयाँ बना दूँ चलकर।"

महेन्द्र बोला—"माँ, अभी-अभी तो तुम रोना रो रही थीं कि तुम इसे काम करा-करा के मारे डाल रही हो और फिर तुरन्त काम के लिए खींचे लिये जा रही हो।"

बिनोदिनी की ठोड़ी पकड़कर राजलक्ष्मी ने कहा—"मेरी रानी बिटिया तो काम के लिए ही बनी है।"

महेन्द्र बोला—"आज मैंने सोच रखा था, इसके साथ कोई किताब पढ़ूँगा बैठकर क्योंकि मेरे पास कोई काम नहीं था।"

बिनोदिनी ने कहा—"ठीक है बुआ, शाम को लालाजी हम दोनों को पढ़ कर सुनायेंगे।"

राजलक्ष्मी ने सोचा—"महेन्द्र बड़ा अकेला पड़ गया है—उसे बहलाए रखना ज़रूरी है।" बोली—"हाँ, ठीक तो है। खाना बनाकर शाम हम लोग पढ़ना सुनने आएँ?"

कनखियों से बिनोदिनी ने एक बार महेन्द्र को देख लिया। वह बोला—"अच्छा।" लेकिन उसे कोई उत्साह नहीं रह गया। बिनोदिनी राजलक्ष्मी के साथ-साथ चली गयी।

नाराज़ होकर महेन्द्र ने सोचा—"ठीक है, मैं भी कहीं चला जाऊँगा और देर से लौटूँगा।" और समय उसने बाहर जाने के लिए कपड़े बदले। बड़ी देर तक वह छत पर टहलता रहा, बार-बार ज़ीने की तरफ़ ताकता रहा और अन्त में कमरे में जाकर बैठ गया। खीझकर मन-ही-मन बोला 'आज मैं मिठाई नहीं खाऊँगा। माँ को यह बता दूँगा कि देर तक चीनी के रस को उबालते रहने से उसमें मिठास नहीं रहती।'

महेन्द्र को भोजन कराने के समय आज बिनोदिनी राजलक्ष्मी को साथ ले आई। दम फूलने के डर से वे ऊपर नहीं आना चाहती थीं, मगर बिनोदिनी के कहने पर आ गयीं। महेन्द्र बहुत गम्भीर होकर खाने बैठा।

बिनोदिनी बोली—"अरे यह क्या लालाजी, तुम तो आज कुछ खा ही नहीं रहे हो।"

परेशान होकर राजलक्ष्मी ने पूछा—"तबीयत तो खराब नहीं?"

बिनोदिनी बोली—"इतने जतन से मिठाइयाँ बनाईं, कुछ तो खानी ही पड़ेंगी। ठीक नहीं बनीं शायद। तो फिर रहने दो। ज़िद पर खाना भी क्या! रहने दो!"

महेन्द्र बोला—"अच्छी मुसीबत में डाल दिया है! मिठाई ही खाने की इच्छा ज़्यादा है और अच्छी लग भी रही है; तुम रोको भी तो सुनने क्यों लगा भला।"

दोनों ही मिठाइयाँ महेन्द्र रस लेकर खा गया।

खाना हो गया तो तीनों महेन्द्र के कमरे में आ बैठे। राजलक्ष्मी ने कहा—"तूने कहा

था न, कोई किताब पढ़ेगा। शुरू कर न!"

महेन्द्र बोला—"मगर उसमें धर्म और देवताओं की कोई बात नहीं है। तुम्हें अच्छी नहीं लगेगी।"

अच्छी नहीं लगेगी! बेटे ने कैसे सोचा यह? अच्छी तो राजलक्ष्मी को लगनी ही थी। महेन्द्र चाहे किसी भाषा में पढ़े, उसे अच्छी लगनी ही थी। आह, बेचारा महेन्द्र, बहू काशी चली गयी है।—अकेला पड़ गया है। उसे जो अच्छा लगेगा, वह माँ को अच्छा क्यों नहीं लगेगा?

बिनोदिनी बोली—"एक काम क्यों नहीं करते लाला जी, बुआ के कमरे में 'शान्ति-शतक' पड़ा है, आज वही पढ़कर सुनाओ। बुआ को भी अच्छा लगेगा और शाम भी मज़े में कटेगी।"

महेन्द्र ने बड़े ही करुण भाव से एक बार बिनोदिनी की तरफ़ देखा। इतने में किसी ने आकर खबर दी—"माँजी, ललाइन आकर आपका इन्तज़ार कर रही हैं।"

ललाइन राजलक्ष्मी की जिगरी दोस्त है। शाम को उनसे गप-शप करने का लोभ छोड़ सकना उनके लिए असम्भव है। फिर भी वह नौकरानी से बोलीं—"उनसे जाकर कह, आज मुझे महेन्द्र से कुछ काम है। मगर कल ज़रूर आएँ। मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगी।"

महेन्द्र झटपट बोल उठा—"तुम उनसे मिल क्यों नहीं आती हो, माँ?"

बिनोदिनी बोली—"न हो तो तुम रुको बुआ; मैं ही बल्कि उनके पास जाती हूँ।"

राजलक्ष्मी प्रलोभन न छोड़ सकीं। बोलीं—"बहू, तब तक तुम यहाँ बैठो—देखूँ, मैं अगर उन्हें रुखसत करके आ पाऊँ। पढ़ना शुरू करो तुम लोग। मेरी प्रतीक्षा की ज़रूरत नहीं है।"

राजलक्ष्मी का कमरे से बाहर जाना था कि महेन्द्र से और न रहा गया। कह उठा —"जान-बूझकर क्यों तुम मुझे इस तरह परेशान करती हो?"

बिनोदिनी ने अचरज से कहा—"मैंने क्या सताया तुम्हें! मेरा आना गुनाह है क्या? तो फिर क्या ज़रूरत है, मैं जाती हूँ।"

और वह नाराज़-सी होकर उठने लगी।

महेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोला—"इसी तरह से तो तुम मुझे जलाया करती हो।"

बिनोदिनी ने कहा—"अच्छा, मुझे किसी बात की खबर न थी कि मुझमें इतना तेज़ है। और तुम्हारी जान तो कम कठिन नहीं है, बेहद झेल सकते हो। शक्ल से तो समझना मुश्किल है कि काफ़ी जले-झुलसे हो।"

महेन्द्र ने कहा—"शक्ल से क्या समझोगी?"—और ज़बर्दस्ती बिनोदिनी का हाथ खींचकर अपनी छाती से लगा लिया।

बिनोदिनी 'उफ्' कर उठी ज़ोर से। महेन्द्र ने झट उसका हाथ छोड़ दिया। पूछा —"चोट लग गयी क्या?"

कल उसका हाथ जहाँ से कट गया था, वहाँ से फिर रक्त बहने लगा था।

अफ़सोस से महेन्द्र ने कहा—"गलती हो गयी, मैं भूल गया था। लेकिन मैं आज वहाँ पर पट्टी बाँधकर ही रहूँगा।"

बिनोदिनी बोली—"नहीं-नहीं, कुछ नहीं हुआ। दवा मैं नहीं लगाती।"

महेन्द्र बोला—"क्यों?"

बिनोदिनी ने कहा—"तुम्हारी डॉक्टरी की मुझे ज़रूरत नहीं। जैसा है, वैसा ही रहे।"

महेन्द्र तुरन्त गम्भीर हो गया। मन-ही-मन बोला—"औरत का मन समझ पाना बहुत ही मुश्किल है।"

बिनोदिनी उठ खड़ी हुई। रूठे महेन्द्र ने रोकने की कोशिश न की। केवल पूछा —"जा कहाँ रही हो?"

बिनोदिनी बोली—"काम है।"

कहकर वह धीरे-से चली गयी।

महेन्द्र एक मिनट तो बैठा रहा, फिर उसे लौटाने के लिए तेज़ी से लपका। लेकिन सीढ़ी तक ही बढ़कर लौट आया और छत पर जाकर टहलने लगा।

बिनोदिनी प्रतिपल उसे खींचा भी करती, मगर पास नहीं फटकने देती। कोई उसे जीत नहीं सकता, महेन्द्र को इस बात का नाज़ था। इस नाज़ को आज उसने तिलांजलि दे दी। लेकिन औरों को वह जीत सकता है क्या—उसका यह गर्व भी अब नहीं रहने का? आज उसने हार मान ली, पर हरा न सका। दिल की बाबत महेन्द्र का सिर सदा ऊँचा रहा था, वह अपना सानी नहीं समझता था—लेकिन उसी बात में उसे अपना सिर मिट्टी में गाड़ना पड़ा। अपनी जो ऊँचाई उसने खो दी, उसके बदले कुछ पाया भी नहीं।

फागुन-चैत में बिहारी की ज़मींदारी से सरसों के फूल का शहद आता है और हर साल वह राजलक्ष्मी के लिए शहद भेजा करता था। इस बार भी भेज दिया।

शहद का मटका बिनोदिनी खुद राजलक्ष्मी के पास ले गयी। कहा—"बुआ, बिहारी भाई साहब ने भिजवाया है।"

राजलक्ष्मी ने उसे भण्डार में रख देने को कहा।

बिनोदिनी बोली—"बिहारी बाबू, तुम लोगों की खोज-खबर में कभी नहीं चूकते। बेचारे की माँ नहीं, तुम्हें ही माँ मानते हैं।"

राजलक्ष्मी बिहारी को महेन्द्र की ऐसी एक छाया समझ करती थीं कि उसके बारे में विशेष कुछ सोचती न थीं। वह उसका बिना दाम का, बिना जतन का और बिना चिन्ता का फरमाबरदार था। बिनोदिनी ने उन्हें उसकी माँ के बारे में जो बताया, वह बात उनके मर्म को छू गयी। सहसा उन्हें लगा—'सच ही, बिहारी की माँ नहीं, वह मुझे ही माँ मानता आया है। याद आया, दुःख परेशानी में, रोग-शोक में बिना बुलाए, बिहारी सदा चुपचाप निष्ठा के साथ उनकी सेवा करता आया है। उन सेवाओं को राजलक्ष्मी निःश्वास-प्रश्वास की तरह ग्रहण करती रही हैं और उनके लिए किसी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की बात उनके मन में भी न आई। लेकिन बिहारी की खोज-खबर किसी ने न रखी? अन्नपूर्णा जब तक थीं, खोज-खबर रखती थीं।' राजलक्ष्मी सोचा करती थीं कि बिहारी को वश में रखने के लिए अन्नपूर्णा आडम्बर फैलाती हैं।

उसाँस लेकर राजलक्ष्मी ने कहा—"बिहारी कोख के लड़के-जैसा ही है।"

कहते ही उनके जी में आया कि बिहारी अपने लड़के से भी ज़्यादा करता है और उसने अपनी भक्ति सदा एक-सी रखी। खयाल आते ही एक लम्बा निःश्वास बरबस उनके अन्तर से निकल पड़ा।

बिनोदिनी बोली—"उन्हें तुम्हारे हाथ की रसोई बड़ी प्रिय है।"

स्नेह-भरे गर्व से राजलक्ष्मी बोलीं—"मछली का शोरबा तो उसे और किसी के हाथ का रुचता ही नहीं।"

फिर अचानक याद आने पर उन्होंने कहा—"इधर बहुत दिनों से बिहारी नहीं आया।"

बिनोदिनी ने कहा—"यही तो मैं सोच रही थी, बुआ! मगर विवाह के बाद आपके बेटे बहू को लेकर इस कदर डूब गए हैं कि मित्र-परिचित कोई आकर भी क्या करे?"

बात राजलक्ष्मी को ठीक लगी। बीवी को पाकर महेन्द्र ने अपने सारे हितैषियों को दूर हटा दिया है। बिहारी का रूठना तो ठीक ही है—आए भी क्यों वह? बिहारी को अपने ही पक्ष का मानते हुए उसके प्रति उनकी सम्वेदना बढ़ गयी। वे विस्तार से बिनोदिनी को बताने लगीं कि छुटपन से बिहारी ने बिना किसी स्वार्थ के महेन्द्र का कितना उपकार किया है, उसके लिए कितनी बार कितनी तकलीफ़ें झेली हैं उसने। और, बेटे से उन्हें अपनी जो शिकायत थी, वह बिहारी की प्रशंसा के माध्यम से व्यक्त होने लगी। कुछ दिनों में अपनी बहू को पाकर महेन्द्र अगर अपने सदा के साथी की ऐसी उपेक्षा करे, तो दुनिया में न्याय-धर्म फिर कहाँ रहा?

बिनोदिनी बोली—"कल रविवार है, बुआ जी। कल तुम बिहारी बाबू को भोजन पर आमन्त्रित करो। वे खुश हो जाएँगे।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"ठीक कहा तुमने। महेन्द्र के हाथ से कहकर किसी से न्यौता भिजवा देते हैं।"

बिनोदिनी—"नहीं, न्यौता तुम खुद भेजो, बुआ।"

राजलक्ष्मी—"तुम लोगों की तरह मैं क्या लिखना-पढ़ना जानती हूँ।"

बिनोदिनी—"न सही, तुम्हारी तरफ़ से मैं ही लिखे देती हूँ।"

राजलक्ष्मी के नाम से बिनोदिनी ने खुद लिखकर न्यौता भेजा।

रविवार महेन्द्र के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण दिन होता था। पिछली रात से ही उसकी कल्पना उद्दाम हो उठती—हालाँकि आज तक उसकी उम्मीद के अनुरूप हुआ कुछ भी न था। तो भी इतवार के सवेरे की आभा उसकी आँखों में अमृत बरसाने लगी। जागे हुए शहर की सारी हलचल अनोखे संगीत-जैसी उसके कानों में प्रवेश करने लगी।

मगर माजरा क्या है? आज कोई व्रत है माँ का? और दिनों की तरह आज वे घर के काम-काज का भार बिनोदिनी पर सौंपकर निश्चिन्त नहीं हैं। आज खुद भी बहुत व्यस्त हैं वे।

इसी हंगामे में दस बज गए। इस बीच किसी भी बहाने से महेन्द्र एक पल के लिए बिनोदिनी से न मिल सका। किताब में मन लगाना चाहा, बिल्कुल न लगा। अखबार के

एक विज्ञापन पर नाहक ही पन्द्रह मिनट तक नज़र गड़ाए रहा। आखिर न रहा गया। नीचे गया। देखा, माँ खुद रसोई कर रही हैं और कमर में आँचल बाँधे बिनोदिनी उनकी मदद कर रही है।

महेन्द्र ने पूछा—"बात क्या है आज? बड़ी धूम-धाम है।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"बहू ने बताया नहीं तुम्हें? आज बिहारी को खाने के लिए बुलाया है।"

"बिहारी को निमन्त्रण!" महेन्द्र का जी खराब हो गया। उसने तुरन्त कहा—"मैं तो घर पर नहीं रहूँगा माँ।"

राजलक्ष्मी—"क्यों?"

महेन्द्र—"मुझे बाहर जाना है।"

राजलक्ष्मी—"खा-पीकर जाना। ज़्यादा देर न होगी।"

महेन्द्र—"मुझे भोजन के लिए निमन्त्रण है।"

कनखियों से उसे देखकर बिनोदिनी शरारत से बोली—"दावत है तो जाने दो, बुआ! न हो, बिहारी बाबू अकेले ही खा लेंगे।"

लेकिन अपने हाथ के जतन से पकाएँ और महेन्द्र न खाए, यह राजलक्ष्मी को कैसे बर्दाश्त हो! वे जितना आग्रह करने लगीं, महेन्द्र उतना ही टालने लगा।

इस तरह नाराज़ महेन्द्र ने माँ को सज़ा देने की ठानी। राजलक्ष्मी की इच्छा हुई, रसोई छोड़कर चल दें। बिनोदिनी बोली—"तुम फ़िक्र न करो, बुआ—लाला जी ये सब बेकार की बातें कर रहे हैं—आज वे दावत पर हर्गिज़ नहीं जाएँगे।"

राजलक्ष्मी गर्दन हिलाकर बोलीं। "नहीं-नहीं बिटिया, तुम महेन्द्र को नहीं जानतीं। वह एक बार जो तय कर लेता है, उससे नहीं डिगता।"

लेकिन साबित यही हुआ कि बिनोदिनी महेन्द्र को राजलक्ष्मी से कम नहीं जानती। महेन्द्र ने समझा था कि बिहारी को बिनोदिनी ने ही न्यौता भिजवाया है। इससे उसका जी डाह से जितना जलने लगा, उतना ही उसके लिए बाहर जाना कठिन हो गया। बिहारी क्या करता है, बिनोदिनी क्या करती है, यह देखे बिना वह भला जिये कैसे? देखकर जलना ही पड़ेगा, फिर भी देखना ज़रूरी था।

आज बहुत दिनों के बाद एक निमन्त्रित आत्मीय की तरह बिहारी महेन्द्र के अन्तःपुर में आया। छुटपन से ही जो घर उसका जाना-पहचाना रहा है, घर के बेटे की ही तरह जहाँ उसने बचपन की शरारतें की हैं, उसी द्वार पर आकर आज वह ठिठक गया। उसके अन्तर के दरवाज़े पर आँसू की एक लहर उमड़ उठने के लिए आघात करने लगी। उस चोट को पीकर होंठों पर हँसी लिये वह अन्दर गया और तुरन्त नहाकर आईं राजलक्ष्मी को प्रणाम करके उनके चरणों की धूल ली। जिन दिनों बिहारी हरदम वहाँ आया-जाया करता था, तब वह इस तरह प्रणाम नहीं करता था। आज मानो वह सुदूर प्रवास से घर लौटा हो। प्रणाम करके उठते ही स्नेह से राजलक्ष्मी ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

आज गहरी संवेदना के साथ राजलक्ष्मी ने बिहारी के प्रति पहले से ज़्यादा स्नेह

जताया। कहा—"बिहारी, तू इतने दिनों से यहाँ क्यों नहीं आया? मैं रोज़ ही सोचती थी, आज ज़रूर आएगा, मगर तेरा पता नहीं?"

बिहारी ने हँसकर कहा—"रोज़ आता होता माँ तो रोज़ तुम अपने बिहारी को याद नहीं करतीं। कहाँ हैं महेन्द्र भैया?"

राजलक्ष्मी उदास होकर बोलीं—"जाने कहाँ आज दावत है उसकी, रुक न सका।"

सुनकर बिहारी का मन परेशान हो गया। छुटपन की मैत्री का आखिर यह अंजाम? एक लम्बा निःश्वास छोड़कर मन से सारे विषाद को हटा देने की कोशिश करता हुआ बोला—"अच्छा, क्या-क्या बना है।"

और वह अपने प्रिय व्यंजनों की बात पूछने लगा।

इतने में महेन्द्र ने आकर सूखे स्वर में पूछा—"बिहारी, कैसे हो?"

राजलक्ष्मी बोलीं—"दावत में नहीं गए?"

शर्म छिपाते हुए महेन्द्र बोला—"नहीं, गया।"

बिनोदिनी नहाकर आई तो पहले तो बिहारी कुछ बोल ही न सका। बिनोदिनी और महेन्द्र को जिस रूप में वह देख गया था, वह हृदय में अंकित ही था।

बिनोदिनी उसके करीब आकर बोली—"क्यों लालाजी, मुझे भूल गए हैं क्या?"

बिहारी बोला—"सबको पहचाना जा सकता है क्या?"

बिनोदिनी ने कहा—"अगर थोड़ी-सी समझ हो तो ज़रूर पहचाना जा सकता है।"

और उसने बुआ को पुकारकर कहा—"बुआ, खाना तैयार है।"

महेन्द्र और बिहारी दोनों खाने बैठे। राजलक्ष्मी पास बैठकर देखने लगीं।

महेन्द्र का ध्यान खाने पर न था। वह गिद्ध की तरह नजरें गड़ाये था कि बिनोदिनी खाना परोसते समय पक्षपात तो नहीं करती। उसे लगा, बिहारी को भोजन परोसते हुए बिनोदिनी को मानो एक खास आनन्द मिल रहा है। बिहारी की पत्तल पर ही दही की मलाई और रोहू मछली का सिर डाला गया। पर चूँकि वह मेजबान था, इसलिए शिकायत की कोई गुंजाइश नहीं थी। मौसम न होने पर भी तपसी मछली मिल गयी थी। उनमें से एक थी अण्डे वाली। बिनोदिनी उसे बिहारी की पत्तल पर परोसने जा रही थी कि उसने कहा—"महेन्द्र भैया को दो, उन्हें बड़ी प्रिय है यह।"

महेन्द्र तीखी दबी खीझ से बोल उठा—"नहीं-नहीं, मुझे नहीं चाहिए।"

बिनोदिनी ने दूसरी बार उससे अनुरोध नहीं किया और उसे बिहारी की पत्तल पर डाल दिया।

खाना खत्म हुआ। दोनों दोस्त बाहर निकले। बिनोदिनी आकर बोली, "बिहारी बाबू, चले मत जाना, चलिए, ऊपर के कमरे में बैठिए ज़रा देर।"

बिहारी ने पूछा—"और तुम नहीं खाओगी।"

बिनोदिनी बोली—"आज मेरा एकादशी का व्रत है।"

तीखे व्यंग्य की एक हल्की हास्य-रेखा बिहारी के होंठों के किनारों पर खेल गयी।

हँसी की यह लकीर बिनोदिनी की निगाह से छिपी न रही, लेकिन जिस तरह वह

हाथ के जख्म को सह गयी थी—इसे भी पी गयी। निहोरा करती हुई बोली—"मेरे सिर की कसम, चलो, बैठो!"

महेन्द्र अचानक अजीब ढंग से गर्म हो उठा। बोला—"अक्ल से तो कोई वास्ता ही नहीं—काम-धाम पड़ा रहे, इच्छा हो या न हो, बैठना ही पड़ेगा। इतनी ज़्यादा खातिरदारी का मतलब मेरी समझ में नहीं आया।"

बिनोदिनी ठठाकर हँस पड़ी। बोली—"बिहारी देवर जी, आपने भाई साहब की बात सुनी, खातिरदारी शब्द का कोश में दूसरा कोई मतलब नहीं, खातिरदारी ही है।"

फिर महेन्द्र से कहा—"कहने को चाहे जो कहो लाला जी, खातिरदारी का मतलब छुटपन से जितना तुम समझते हो, शायद ही कोई समझता हो।"

बिहारी बोला—"महेन्द्र भैया, एक बात है, सुन जाओ ज़रा!"

बिहारी ने बिनोदिनी से विदा न माँगी और महेन्द्र के साथ बाहर चला गया। बरामदे पर खड़ी बिनोदिनी चुपचाप सूने आँगन को ताकती रही।

बाहर जाकर बिहारी ने कहा—"भैया, एक बात का मैं खुलासा करना चाहता हूँ, हमारी दोस्ती क्या यहीं खत्म हो गयी?"

उस समय महेन्द्र के कलेजे में आग लग रही थी। बिनोदिनी का व्यंग्य बिजली की लपट-सा उसके दिमाग के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लपकता हुआ बार-बार उसे वेध रहा था। वह बोला—"इस बात के फैसले से शायद ही तुम्हें कुछ लाभ हो, मेरे लिए यह काम्य नहीं। अपनी दुनिया में मैं किसी बाहरी आदमी का प्रवेश नहीं चाहता। अन्तःपुर को मैं अन्तःपुर ही रखना चाहता हूँ।"

बिहारी ने कुछ नहीं कहा। चला गया।

ईर्ष्या के दाह से जर्जर महेन्द्र ने एक बार प्रतिज्ञा की—"बिनोदिनी से मैं नहीं मिलूँगा।" लेकिन फिर उससे मिलने की उम्मीद में वह घर-बाहर, ऊपर-नीचे छटपटाता हुआ चक्कर काटता रहा।

29

आशा ने एक दिन अन्नपूर्णा से पूछा—"अच्छा मौसी, क्या तुम्हें मौसाजी की याद है?"

अन्नपूर्णा बोलीं—"महज ग्यारह साल की उम्र में मैं विधवा हुई थी, पति की सूरत मुझे छाया-सी धुँधली याद है।"

आशा ने पूछा—"फिर तुम किसकी बात सोचती हो?"

अन्नपूर्णा हँसकर बोलीं—"अब मैं उन भगवान की याद करती हूँ जिनमें मेरे पति हैं।"

आशा ने पूछा—"इससे सुख-शान्ति मिलती है?"

स्नेह से आशा के माथे पर हाथ फेरते हुए अन्नपूर्णा ने कहा—"मेरे मन की तू क्या समझेगी बिटिया? सिर्फ़ मैं जानती हूँ या मेरे भगवान!"

आशा अपने मन में सोचने लगी—"और मैं जिनकी बात आठों पहर सोचा करती हूँ, वे क्या मेरे मन की नहीं जानते! मैं ठीक से चिट्ठी नहीं लिख सकती, इसीलिए उन्होंने मुझे पत्र लिखना बन्द कर दिया है?"

इधर कुछ दिनों से उसे महेन्द्र की चिट्ठी नहीं मिली। एक उसाँस लेकर आशा ने मन में सोचा—'इस वक्त मेरी आँख की किरकिरी पास रही होती, तो मेरे मन की बात चिट्ठी में ठीक-ठीक लिख देती।'

'अच्छी तरह से न लिखी गयी चिट्ठी का कोई मोल पति के लिए न होगा', यह सोचकर आशा ने चिट्ठी नहीं लिखी। जितना ही जतन से लिखना चाहती, उतना ही चिट्ठी बिगड़ जाती। मन की बातों को जितना ही सुलझ-सहेजकर लिखना चाहती, उसकी पंक्तियाँ पूरी न पड़तीं। अगर सिर्फ़ एक शब्द, 'मेरे देवता', लिखने से ही अन्तर्यामी की तरह महेन्द्र सब-कुछ समझ सकता, तो आशा का पत्र लिखना सार्थक हो सकता था। ईश्वर ने प्रेम दिया है, थोड़ी-सी भाषा क्यों न दी?

संध्या की आरती के बाद अन्नपूर्णा मन्दिर से लौटीं, तो आशा धीरे-धीरे उनके पैर सहलाने लगी। बड़ी देर तक सन्नाटा रहा। उसके बाद आशा बोली—"अच्छा मौसी, तुम तो कहती हो कि देवता के समान पति की सेवा करना स्त्री का धर्म है, लेकिन जो स्त्री मूर्ख हो, जिसे बुद्धि न हो, जिसे यह न मालूम हो कि पति की सेवा कैसे करनी चाहिए, वह क्या करे?"

अन्नपूर्णा देर तक आशा की ओर देखती रहीं। एक लम्बी साँस छोड़कर बोलीं —"मूर्ख तो मैं भी हूँ बिटिया, मगर फिर भी तो भगवान की सेवा करती हूँ।"

आशा ने कहा—"भगवान तो तुम्हारे मन को समझते हैं, तभी वे खुश होते हैं। लेकिन यों समझो, स्वामी अगर मूर्ख स्त्री की सेवा से संतुष्ट न हो?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"सबको खुश करने की शक्ति सबमें नहीं होती, बेटी। लेकिन स्त्री अगर पूरे मन से श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पति की सेवा और गृहस्थी के काम करती है, तो पति चाहे नाचीज़ समझकर उसे ठुकरा दे, स्वयं जगदीश्वर जतन से उसे पुरस्कार देते हैं।"

जवाब में आशा चुप रही। मौसी द्वारा दी गयी सांत्वना को उसने अपनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन यह बात, उसके दिमाग में हर्गिज़ न बैठ सकी कि पति जिसे नाचीज़ समझकर ठुकरा देंगे, उसे जगदीश्वर सार्थक कर सकेंगे। वह सिर झुकाए मौसी के पाँव सहलाती रही।

अन्नपूर्णा ने इस पर आशा को अपने और करीब खींच लिया। उसके माथे को चूमा। रुँधे कण्ठ को बलपूर्वक खोलकर बोलीं—"चुन्नी, तकलीफ़ झेलकर जीवन में जो सबक सीखा जा सकता है, केवल सुनकर वह सम्भव नहीं। तेरी इस मौसी ने भी तेरी उम्र में संसार से लेन-देन का बहुत बड़ा नाता जोड़ लिया था। उस समय मेरे भी जी में तेरी ही तरह होता था कि जिसकी मैं सेवा करूँगी, वह आखिर सन्तुष्ट क्यों न होगा। जिसकी पूजा करूँगी, उसका प्रसाद भला क्यों न मिलेगा? जिसका भला करूँगी, वह मेरी चेष्टा को क्यों न समझेगा? लेकिन हर कदम पर देखा, वैसा होता नहीं है। और अन्त में एक दिन दुनिया को छोड़कर चली आई। और आज यह पा रही हूँ कि मेरा कुछ भी बेकार नहीं हुआ। असल में बिटिया जिससे लेन-देन का सही सम्बन्ध है, जो संसार की इस हाट के असली महाजन हैं, वही मेरा सब-कुछ स्वीकार कर रहे हैं, आज मेरे अन्तर में बैठकर उन्होंने यह बात कबूल की है। काश! तब यह जानती होती! अगर संसार के कर्म को उनका समझकर करती, उन्हीं को दे रही हूँ यह समझकर संसार को अपना हृदय देती तो फिर कौन था जो मुझे दुःख पहुँचा पाता!"

बिस्तर पर पड़ी-पड़ी आशा बड़ी रात तक बहुत-सी बातें सोचती रही। फिर भी ठीक-ठीक कुछ न समझ सकी। बस, वह उसी ईश्वर से प्रार्थना करके रह गयी, जिसे उसकी मौसी पूजती थीं। इन प्रार्थनाओं में अपने मन की सारी व्यथा उँडेल कर उसने बस यही माँगा कि उसके पति उसे, उसकी सेवा और उसके प्रेम को स्वीकार कर लें।

आशा के बड़े चाचा के लौट जाने का दिन आया। जाने के पहले दिन शाम को अन्नपूर्णा ने आशा को अपनी गोदी में बिठाकर कहा—"चुन्नी, मेरी बिटिया, संसार के शोक-दुःख से सदा तुझे बचाते रहने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरा इतना ही कहना है कि जहाँ भी, जितना भी कष्ट क्यों न मिले, अपने विश्वास, अपनी भक्ति को दृढ़ रखना, तेरा धर्म जिससे अटूट रहे।"

आशा ने उनके चरणों की धूल ली। बोली—"आशीर्वाद दो मौसी! ऐसा ही हो।"

30

आशा के वापस आ जाने पर जब पहली बार बिनोदिनी उससे मिली तो रूठने का नाटक करते हुए बिनोदिनी ने कहा—"भई किरकिरी, इतने दिन पीहर रही, खत लिखना भी पाप था क्या?"

थोड़ा हतप्रभ होने के बावजूद आशा बोली—"और तुमने तो लिख दिया जैसे!"

बिनोदिनी—"मैं पहले क्यों लिखती, पहले तुम्हें लिखना था।"

बिनोदिनी के गले से लिपटकर आशा ने अपना कसूर मान लिया। बोली—"जानती तो हो, मैं ठीक-ठीक लिख नहीं पाती। खासकर तुम-जैसी पंडिता को लिखने में शर्म आती है।"

देखते-ही-देखते दोनों का विषाद मिट गया और प्रेम उमड़ आया। बिनोदिनी ने कहा—"आठों पहर साथ रहकर तुमने अपने पति-देवता की आदत बिल्कुल बिगाड़ रखी है। कोई हरदम पास न रहे, तो रहना मुश्किल।"

आशा—"तभी तो तुम पर ज़िम्मेदारी सौंप गयी थी। और साथ कैसे दिया जाता है, यह तुम मुझसे बेहतर जानती हो।"

बिनोदिनी—"दिन को तो जैसे-तैसे कॉलेज भेजकर निश्चिन्त हो जाती थी—मगर साँझ को किसी भी तरह से छुटकारा नहीं—किताब पढ़कर सुनाओ, और-और न जाने क्या-क्या? पूछो मत, मचलने का तो अन्त नहीं।"

आशा—"आई न काबू में! जब जी बहलाने में पटु हो तो लोग छुट्टी क्यों दें?"

बिनोदिनी—"मगर सावधान बहन, लाला जी कभी-कभी तो ऐसी अति कर बैठते हैं कि धोखा होने लगता है, शायद मैं जादू-मन्तर जानती हूँ।"

आशा—"जादू तुम नहीं जानतीं तो कौन जानता है! तुम्हारी विद्या ज़रा मुझे आ जाती, तो जी जाती मैं।"

बिनोदिनी—"क्यों, किसके बंटाधार का इरादा है! जो सज्जन घर में हैं, उन पर रहम करके किसी और को मोहने की कोशिश भी न करना।"

बिनोदिनी को तर्जनी दिखाकर आशा बोली—"चुप भी रह, क्या बक-बक करती है!"

काशी से लौटने के बाद पहली बार आशा को देखकर महेन्द्र ने कहा—"तुम्हारी सेहत तो पहले से अच्छी हो गयी है। काफ़ी तन्दुरुस्त होकर लौटी हो।"

आशा को बड़ी शर्म आई। उसकी सेहत अच्छी नहीं रहनी चाहिए थी—मगर उस गरीब का बस नहीं चलता।

आशा ने धीमे-से पूछा—"तुम कैसे रहे?"

पहले की बात होती तो महेन्द्र कुछ तो मज़ाक और कुछ मन से कहता—'मरा-मरा'। मगर अभी मज़ाक करते न बना—गले तक आकर अटक गया। कहा—"बेजा नहीं, अच्छा ही था।"

आशा ने गौर किया, महेन्द्र पहले से कुछ दुबला ही हो गया है। चेहरा पीला पड़ गया है, आँखों में कैसी एक तेज़ चमक है। कोई भीतरी भूख मानो आग की जीभ से उसे चाटे जा रही हो। आशा पीड़ित होकर सोचने लगी—स्वामी दुरुस्त नहीं रहे यहाँ। मैं क्यों काशी चली गयी। पति दुबले हो गए और खुद तगड़ी हो गयी। इसके लिए उसने अपनी सेहत को धिक्कारा।

महेन्द्र देर तक सोचता रहा कि अब कौन-सी बात की जाए। बोला—"चाची मज़े में हैं।"

उत्तर में कुशल-क्षेम पाकर पूछने को दूसरी बात मन में लाना उसके लिए मुहाल हो गया। पास ही एक फटा-पुराना अखबार पड़ा था, उसे उठाकर वह अनमना-सा पढ़ने लगा। आशा सिर झुकाए सोचने लगी, 'इतने दिनों के बाद भेंट हुई, लेकिन उन्होंने मुझसे ठीक से बात क्यों नहीं की? बल्कि लगा, मेरी ओर उनसे ताकते भी न बना।' वह इसी ऊहा-पोह में पड़ी रही कि आखिर उसने महेन्द्र को कैसे नाखुश कर दिया होगा।

महेन्द्र कॉलेज से लौटा। जल-पान करते समय राजलक्ष्मी थीं। आशा भी घूँघट निकाले पास ही दरवाज़ा पकड़े खड़ी थी—लेकिन और कोई न था।

राजलक्ष्मी ने परेशान-सा होकर पूछा—"आज तेरी तबीयत कुछ खराब है क्या, महेन्द्र?"

जैसे ऊब गया हो, महेन्द्र बोला—"नहीं, ठीक है।"

राजलक्ष्मी—"फिर तू कुछ खा क्यों नहीं रहा है?"

महेन्द्र फिर खीझे हुए स्वर में बोला—"खा तो रहा हूँ—और कैसे खाते हैं?"

गर्मी की साँझ। बदन पर एक हल्की चादर डाल महेन्द्र छत पर इधर-उधर घूमने लगा। बड़ी उम्मीद थी कि बिनोदिनी के साथ इधर जो पढ़ाई नियम से चल रही थी, वह वैसी ही चलेगी। 'आनन्दमठ' लगभग खत्म हो चला है। गिने-चुने कुछ अध्याय रह गए थे। यों जितनी भी निर्दयी हो बिनोदिनी, ये बाकी अध्याय वह ज़रूर पढ़कर सुनाएगी। लेकिन शाम हो गयी और महेन्द्र को कुछ हासिल न हुआ तो वह सोने चला गया।

सजी-सँवरी शरमाई आशा धीरे-धीरे कमरे में आई। देखा, महेन्द्र बिस्तर पर सोया है। वह यह न सोच पाई कि किस तरह से आगे बढ़े। जुदाई के बाद ज़रा देर के लिए एक नई लज्जा होती ही है—जहाँ से जुदा होते हैं दोनों, ठीक वहाँ पर मिलने से पहले एक-दूसरे को नये रवैये की उम्मीद होती है। अपनी उस चिरपरिचिता सेज पर आशा आज बेबुलाए कैसे जाए? दरवाज़े के पास देर तक खड़ी रही। महेन्द्र की कोई आहट न मिली। धीमे-धीमे पग-पग बढ़ी। अचानक किसी गहने की आवाज़ हो उठती तो मारे शर्म के मर-सी जाती। धड़कते हृदय से वह मच्छरदानी के पास जा खड़ी हुई। लगा, महेन्द्र सो गया है। उसका सारा साज-श्रृंगार उसे एक बन्धन-सा लगा। उसकी यह इच्छा होने लगी कि

बिजली की गति से भाग जाए और जाकर और कहीं सो रहे।

अपने जानते भरसक चुपचाप संकुचित होकर आशा बिस्तर पर गयी। फिर भी इतनी आवाज़ ज़रूर हुई कि महेन्द्र अगर सचमुच ही सोया होता तो जग पड़ता। लेकिन आज उसकी आँखें न खुलीं, क्योंकि दरअसल वह सो नहीं रहा था। वह पलँग के एक किनारे करवट लिये पड़ा था। लिहाज़ा आशा उसके पीछे लेट गयी। पड़ी-पड़ी आशा आँसू बहा रही थी। उधर मुँह करके सोने के बावजूद महेन्द्र को इसका साफ़ पता चल रहा था। अपनी बेरहमी से वह चक्की की तरह कलेजे को पीसकर दुखा रहा था। लेकिन वह क्या कहे, कैसे स्नेह जताए—यह उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था।

लेकिन आशा ने खुद ही उसकी यह मुसीबत भगा दी। वह तड़के ही अपमानित साज-श्रृंगार लिये उठकर चली गयी। वह भी महेन्द्र को अपना मुँह न दिखा सकी।

31

आशा के मन में एक उथल-पुथल मची हुई थी। 'क्या गड़बड़ी हो गयी है?' वह सोचती। 'ऐसा क्यों हुआ है? मैंने क्या किया?' लेकिन अबोध होने की वजह से, असली आफ़त जहाँ थी, वहाँ उसकी नज़र न पड़ी। महेन्द्र बिनोदिनी को प्यार कर सकता है, इसकी सम्भावना तक उसके मन में न आ सकी थी। दुनिया के अनुभव उसे कुछ थे नहीं। इसके अलावा विवाह के कुछ ही दिन बाद से महेन्द्र को जैसा समझ लिया था, वह उसके सिवा भी कुछ हो सकता है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

महेन्द्र आज कुछ पहले ही कॉलेज गया। कॉलेज जाते वक्त आशा हमेशा खिड़की के पास आ खड़ी होती और महेन्द्र गाड़ी में से एक बार झाँक लेता—यह उसका सदा का नियम था। इसी आदत के मुताबिक यन्त्रवत् वह खिड़की के सामने आ खड़ी हुई। अभ्यासवश महेन्द्र ने भी एक बार निगाह उठाकर ताका। देखा, आशा खिड़की पर खड़ी है—देखते ही महेन्द्र नज़र झुकाकर अपनी गोद में रखी किताबें देखने लगा। आँखों में वह नीरव मगर अर्थ-भरी भाषा कहाँ थी, कहाँ थी वह बोलती हुई मुस्कान!

गाड़ी निकल गयी। आशा वहीं ज़मीन पर बैठ गयी। यह दुनिया, यह गृहस्थी—सबका स्वाद फीका पड़ गया। अचानक आशा को लगा—'हाँ, समझी। बिहारी बाबू काशी गए थे, यही सुनकर शायद वे नाराज़ हैं। इसके सिवा और तो कोई अप्रिय घटना इस बीच नहीं घटी। मगर इसमें मेरा क्या कसूर!'

सोचते-सोचते एक बार अचानक मानो उसके दिल की धड़कन बन्द हो गयी। उसे सन्देह हुआ, शायद महेन्द्र को यह शंका हो गयी कि बिहारी के काशी जाने में उसकी भी साँठ-गाँठ थी। राम-राम! ऐसी शंका! शर्म की हद!

अचानक गाड़ी से झाँककर आशा का जो मलिन करुण मुखड़ा महेन्द्र देख गया था, उसे वह दिन-भर अपने मन से न मिटा सका। कॉलेज के लेक्चरों, छात्रों की कतारों में वह खिड़की, आशा का वह सूखा-रूखा चेहरा, बिखरे बाल, मैली धोती और वह आकुल-व्याकुल दृष्टि बार-बार उसके मन में मँडराने लगी, उस पर हावी होने लगी।

कॉलेज का काम खत्म करके वह सीधे घर नहीं गया, बल्कि गोलदिग्घी के किनारे टहलने लगा। शाम हो गयी। वह फिर भी तय न कर सका कि आशा से कैसा बर्ताव किया जाए—दयापूर्ण छल या कपटरहित निष्ठुरता, कौन-सा उचित है? बिनोदिनी का वह त्याग करे, या न करे—यह बात ही मन में न आई। दया और प्रेम—दोनों का दावा वह कैसे करे?

आखिर उसने यह कहकर अपने मन को समझाया कि आज भी आशा के प्रति उसका जो प्रेम है, वह बहुत ही कम स्त्रियों को नसीब होता है। वह स्नेह, वह प्रेम मिलता रहे तो आशा सन्तुष्ट क्यों न रहेगी? बिनोदिनी और आशा, दोनों को जगह देने की योग्यता महेन्द्र के विशाल हृदय में है। बिनोदिनी से उसका सम्बन्ध जिस पवित्र प्रेम का है, उससे दाम्पत्य में किसी तरह की आँच न आएगी।

मन को इस तरह समझाकर उसने एक भार उतार फेंका। 'दोनों में से किसी को छोड़े बिना, दो चन्द्रमा वाले ग्रह की तरह वह मज़े में जीवन के दिन काट लेगा', यह सोचकर उसका जी खिल उठा। यह सोचकर वह तेज़ी से कदम बढ़ाता हुआ घर की ओर चल पड़ा कि आज ज़रा पहले ही वह बिस्तर पर जा लेटेगा और स्नेह-जतन से, मीठे वचन से आशा के मन की सारी वेदना धो देगा।

उसके खाने के समय आशा मौजूद न थी—'लेकिन सोने तो आएगी ही,' यह सोचकर महेन्द्र बिस्तर पर लेट गया। लेकिन उस सन्नाटे में सूनी सेज पर किस स्मृति ने महेन्द्र के मन को छा लिया? 'विषवृक्ष' के लिए बिनोदिनी के साथ उस दिन की छीना-झपटी उसे याद हो आई। साँझ के बाद बिनोदिनी 'कपालकुण्डला' पढ़कर सुनाना शुरू करती—धीरे-धीरे रात हो आती, घर के सारे लोग सो जाते, सूने कमरे की स्तब्ध निर्जनता, बिनोदिनी की आवाज़—आवेश से मानो धीमी हो आती, रुँध-सी जाती; अचानक वह अपने को जब्त करके उठ खड़ी होती, किताब रख देती—महेन्द्र कहता, "चलो, मैं तुम्हें सीढ़ी तक छोड़ आऊँ।" ये सारी बातें महेन्द्र को याद आने लगीं और उसके समूचे शरीर में सिहरन होने लगी। रात धीरे-धीरे गहराने लगी—महेन्द्र को रह-रहकर आशंका होने लगी, अब आशा आएगी, अब आएगी। लेकिन वह न आई। महेन्द्र ने सोचा, मैं तो अपने कर्तव्य के लिए तैयार था, अब अगर वह नाहक ही नाराज़ होकर न आए तो मैं क्या करूँ? और गहरी रात में उसने बिनोदिनी के ध्यान को गाढ़ा कर लिया।

जब एक बज गया तो महेन्द्र से न रहा गया। मसहरी हटाकर वह बाहर निकला। छत पर गया। देखा, चाँदनी रात बड़ी ही सुहानी हो रही है। महेन्द्र की जमाने से रुकी पड़ी आकांक्षा अब अपने-आपको न रोक सकी। जब से आशा आई, बिनोदिनी की झलक भी न दिखाई दी थी। चाँदनी से उमगी सूनी रात महेन्द्र को मोह से आच्छन्न करके बिनोदिनी की तरफ़ ठेलकर ले जाने लगी। महेन्द्र नीचे उतरा। बिनोदिनी के कमरे के पास गया। देखा, कमरा बन्द नहीं है। अन्दर गया। सेज बिछी थी, उस पर कोई सोया न था। कमरे में आहट पाकर दक्खिन वाले खुले बरामदे से बिनोदिनी ने पूछा—"कौन है?"

रुँधे हुए गीले स्वर से महेन्द्र बोला—"मैं हूँ, बिनोद।"

और महेन्द्र सीधा बरामदे में पहुँच गया।

गर्मी की रात। बरामदे में चटाई डालकर बिनोदिनी के साथ राजलक्ष्मी सोई थीं। उन्होंने कहा—"महेन्द्र, इतनी रात को तू यहाँ कैसे?"

अपनी काली घनी भौंहों के नीचे से बिनोदिनी ने महेन्द्र पर वज्र की-सी निगाह डाली। महेन्द्र ने कोई जवाब न दिया। तेज़ी से वहाँ से चला गया।

32

दूसरे दिन सुबह से ही घटा घुमड़ी रही। कुछ देर बेहद गर्मी रही, फिर काले-काजल मेघों से राहत की उम्मीद बँधी। आज महेन्द्र समय से पहले ही कॉलेज चला गया। बदले हुए कपड़े फ़र्श पर पड़े थे। आशा गिन-गिनकर कपड़े धोबी को देने लगी। हिसाब लिखकर रखने लगी।

महेन्द्र ज़रा लापरवाह है। इसी से आशा को हिदायत थी कि धोबी को कपड़े देते वक्त जेब ज़रूर देख लिया करे। आशा ने उसके एक कुर्ते की जेब में हाथ डाला कि एक चिट्ठी मिली।

वह चिट्ठी अगर जहरीला नाग बनकर उसी क्षण आशा की उँगली को काट खाती तो अच्छा था, क्योंकि तीखा जहर शरीर में फैल जाता और कुछ ही मिनटों में शायद उसका काम तमाम कर देता; लेकिन जहर मन में फैलता है तो मौत की पीड़ा तो होती है, मौत नहीं होती।

खुली चिट्ठी। निकालकर देखा तो बिनोदिनी की लिखावट। पलक मारते आशा का चेहरा पीला पड़ गया। उस चिट्ठी को उसने बगल के कमरे में ले जाकर पढ़ा।

"कल रात तुमने जो हरकत की, उससे भी जी न भरा? आज फिर तुमने नौकरानी के हाथ छिपाकर मुझे पत्र भेजा। छिः, उसने मन में क्या समझा होगा! दुनिया में मुझे किसी को भी मुँह दिखाने लायक नहीं रहने दोगे तुम?

"मुझसे तुम क्या चाहते हो? प्यार! यह भिखमंगई क्यों आखिर? जन्म से तुम प्यार-ही-प्यार पाते आ रहे हो, फिर भी तुम्हारे लोभ का कोई हिसाब नहीं!

"मेरे प्रेम करने और प्रेम पाने की संसार में कोई जगह नहीं—इसीलिए मैं खेल में प्यार के खेद को मिटाया करती हूँ। जब तुम्हें फुर्सत थी, तुमने भी उस झूठे खेल में हाथ बँटाया था। लेकिन खेल की छुट्टी क्या खत्म नहीं होती? अब गर्द-गुबार झाड़-पोंछकर वापस जाओ? मेरा तो कोई घर नहीं, मैं अकेली ही खेला करूँगी—तुम्हें नहीं बुलाऊँगी।

"तुमने लिखा है, तुम मुझे प्यार करते हो। खेल-कूद में यह बात मान ली जा सकती है—मगर सच कहना हो तो इस पर यकीन नहीं करती! कभी तुम यह सोचते थे कि आशा को प्यार करते हो। वह भी झूठा है। असल में तुम सिर्फ़ खुद को प्यार करते हो।

"प्यार की प्यास से मेरी छाती तक सूख गयी है और वह प्यास मिटाने का

सहारा तुम्हारे हाथ में नहीं, यह मैं अच्छी तरह देख चुकी हूँ। मैं बार-बार कहती हूँ, मुझे छोड़ दो, मेरे पीछे मत पड़ो, बेशर्म होकर मुझे शर्मिन्दा न करो! मेरे खेल का शौक भी पूरा हो चुका, अब पुकारोगे भी तो जवाब नहीं मिलेगा। खत में तुमने मुझे निर्दयी लिखा है—शायद यह सच हो, लेकिन मुझमें थोड़ी दया भी है, इसलिए आज मैंने दया करके तुम्हें त्याग दिया। कहीं तुमने मेरे इस पत्र का जवाब कोई दिया, तो समझूँगी कि यहाँ से भागे बिना तुमसे बचने का कोई उपाय नहीं।"

चिट्ठी का पढ़ना था कि लम्हे-भर में आशा के चारों तरफ़ के सहारे टूट गिरे, शरीर की सारी शिराएँ मानो एकबारगी थम गयीं, साँस लेने के लिए हवा तक मानो न रही, सूरज ने उसकी आँखों के सामने से जैसे सारी रोशनी समेट ली। आशा ने पहले दीवार थामी, फिर अलमारी, और फिर कुर्सी पकड़ते-पकड़ते ज़मीन पर गिर पड़ी।

यह कैसे घटित हुई? उसके जीवन में यह अप्रत्याशित विपदा? किसके पास जाए वह मदद के लिए? डूबते हुए आदमी की तरह वह तिनके का सहारा खोजने लगी। अन्त में कलेजा दबाकर उसाँसें भरती हुई बोल पड़ी—"मौसी!"

इस स्नेह-भरी कातर पुकार के बाद उसकी आँखों से आँसू छलकने लगे। रुलाई पर रुलाई, और फिर रुलाई—आखिर जब रुलाई थमी तो वह सोचने लगी—'लेकिन इस चिट्ठी का मैं क्या करूँगी? कहीं उन्हें पता चल जाए कि यह चिट्ठी मेरे हाथ लग गयी है तो!' ऐसे में उनकी शर्मिन्दगी की याद करके आशा बेतरह कुंठित होने लगी। सोचकर आखिर यह तय किया कि चिट्ठी को उसी कुर्ते की जेब में रखकर उसे खूँटी पर लटका देगी—धोबी को न देगी।

इसी विचार से चिट्ठी लिये वह सोने के कमरे में गयी। इस बीच मैले कपड़ों की गठरी से टिककर धोबी सो गया था। वह कुर्ते की जेब में चिट्ठी डालने की चेष्टा कर रही थी कि आवाज़ सुनाई दी—"भई किरकिरी!"

चिट्ठी और कुर्ते को झटपट पलँग पर डालकर वह उस पर बैठ गयी। बिनोदिनी अन्दर आकर बोली—"धोबी कपड़े बहुत उलट-पुलट करने लगा है। जिन कपड़ों में निशान नहीं लगाए गए हैं, मैं उन्हें ले जाती हूँ।"

आशा बिनोदिनी की ओर देख न सकी। चेहरे के भाव से सब-कुछ ज़ाहिर न हो जाए, इसलिए खिड़की की ओर मुँह करके वह आसमान ताकती रही। होंठ-से-होंठ दबाए रही कि आँखों से आँसू न बह आएँ।

बिनोदिनी ठिठक गयी। एक बार आशा को गौर से देखा। सोचा, 'ओ, समझी, कल का वाकया मालूम हो गया है। लेकिन सारा गुस्सा मुझी पर! मानो कसूर मेरा ही है।'

उसने आशा से बात करने की कोशिश ही न की। कुछ कपड़े उठाकर जल्दी-जल्दी वहाँ से चली गयी।

अब तक आशा को विश्वास था कि बिनोदिनी उसकी सच्ची सहेली थी और अपनी वर्तमान अवस्था में भी इससे इनकार करना उसे मुश्किल लग रहा था। उसे एक बार मिलकर देखने की इच्छा हुई ताकि यह देख सके कि वह सही सोच रही थी या गलत।

वह चिट्ठी खोलने लगी कि इतने में लपककर महेन्द्र कमरे में आया। जाने क्या उसे याद आया कि लेक्चर के बीच से ही अचानक उठकर चला आया।

आशा ने पत्र आँचल में छिपा लिया। आशा को कमरे में देखकर महेन्द्र भी सहम गया। उसके बाद व्यग्र दृष्टि से कमरे के इधर-उधर देखने लगा। आशा ताड़ गयी कि महेन्द्र क्या ढूँढ रहा है, लेकिन वह चिट्ठी जहाँ थी, वहाँ उसे चुपचाप रखकर कैसे भाग खड़ी हो, यह न समझ सकी।

महेन्द्र एक-एक करके मैले कपड़े उठा-उठाकर देखने लगा। महेन्द्र की उस बेकार कोशिश को देखकर आशा से न रहा गया। उसने कुर्ते और चिट्ठी को फ़र्श पर फेंक दिया और दाएँ हाथ से पलँग के डण्डे को थामकर मुँह गाड़ लिया। महेन्द्र ने बिजली की तेज़ी से चिट्ठी उठाई और एक पल के लिए आशा से कुछ कहने के अन्दाज़ में उसने देखा, मगर कुछ कहा नहीं।

फिर तुरन्त आशा को सीढ़ियों पर उसके तेज़ कदम की आहट मिली। इधर धोबी ने पुकारा—"माँ जी, कपड़े देने में और कितनी देर करेंगी? बड़ी देर हो गयी, मेरा घर भी तो पास नहीं।"

33

राजलक्ष्मी ने आज सुबह से बिनोदिनी को बुलाया नहीं जो अजीब-सा था। रोज़ की तरह बिनोदिनी भण्डार में गयी। राजलक्ष्मी ने सिर उठाकर उसकी ओर नहीं देखा।

यह देखकर भी उसने कहा—"बुआ, तबीयत ठीक नहीं है, क्यों? हो भी कैसे? कल रात लाला जी ने जो करतूत की! पागल-से आ धमके। मुझे तो फिर नींद ही न आई।"

राजलक्ष्मी मुँह लटकाए रहीं। हाँ-ना कुछ न कहा।

बिनोदिनी बोली—"किसी बात पर चख-चख हो गयी होगी आशा से। कुछ भी कहो! बुआ, नाराज़ मत होना, तुम्हारे बेटे में चाहे हज़ारों गुण हों, धीरज ज़रा भी नहीं। इसीलिए मुझसे हरदम झड़प ही होती रहती है।"

राजलक्ष्मी ने कहा—"बहू, झूठ बकती जा रही हो तुम, मुझे आज कोई भी बात नहीं सुहाती।"

बिनोदिनी बोली—"मुझे भी कुछ नहीं सुहा रहा है, बुआ। तुम्हारे दिल को ठेस लगेगी, इसी डर से मैं झूठ-मूठ तुम्हारे बेटे का गुनाह ढँकना चाहती थी। लेकिन इस हद को पहुँच गया है कि अब ढँका नहीं रहना चाहता।"

राजलक्ष्मी—"अपने बेटे का गुण-दोष मुझे मालूम है, मगर तुम कैसी मायाविनी हो, यह पता न था।"

बिनोदिनी न जाने क्या कहने जा रही थी कि अपने को ज़ब्त कर गयी।

बोली—"यह बिल्कुल ठीक है बुआ, कोई किसी को नहीं जानता; अपने मन को ही क्या सब कोई जानते हैं? कभी क्या तुम्हीं ने अपनी बहू से डाह करके इस मायाविनी के ज़रिये अपने बेटे का मन मोहने की कोशिश नहीं कराई थी? ज़रा सोचकर देखो!"

राजलक्ष्मी आग-सी दहक उठीं। बोलीं—"अभागिन, लड़के के लिए तू माँ पर ऐसा आरोप लगा सकती है? जीभ गलकर नहीं गिरेगी तेरी?"

बिनोदिनी उसी अडिग भाव से बोली—"बुआ, हम हैं मायाविनी की जात—मुझमें कौन-सी माया थी, मैं ठीक-ठाक नहीं जानती थी। तुम्हें पता था, तुममें भी क्या माया थी—इसका तुम्हें ठीक पता न था, मैं जानती थी। मगर माया ज़रूर थी, नहीं तो यह घटना न घटती। मैंने भी कुछ जाने में और कुछ अजाने में फन्दा डाला था। और फन्दा तुमने भी कुछ तो जानकर बिना जाने डाला था। हमारी जात का धर्म ही ऐसा है—हम मायाविनी हैं।"

क्रोध के मारे राजलक्ष्मी का कंठ जकड़ गया। वे तेज़ी से कमरे के बाहर निकल गयीं।

बिनोदिनी सूने कमरे में ज़रा देर स्थिर खड़ी रही। उसकी आँखों में आग जल उठी।

सुबह का काम-काज चुक गया तो राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को बुलवा भेजा। महेन्द्र समझ गया, कल रात की घटना के बारे में कहेंगी। इस बीच बिनोदिनी से चिट्ठी का उत्तर पाकर उसका मन बेकल हो गया था। उसी आघात के प्रति-घात स्वरूप उसका लहराया हृदय बिनोदिनी की ओर ज़ोरों से दौड़ रहा था। इस स्थिति में माँ से सवाल-जवाब करना उसके लिए कठिन था। वह खूब समझ रहा था कि जहाँ माँ ने बिनोदिनी के बारे में उसे फटकार लगाई कि वह विद्रोही की तरह सच बता देगा और सच कहते ही भीषण गृह-युद्ध शुरू हो जाएगा। लिहाज़ा इस समय कहीं बाहर जाकर सारी बातों पर ठीक से गौर कर लेना ठीक है। महेन्द्र ने नौकर से कहा—"माँ से जाकर कह दे, आज कॉलेज में मुझे विशेष काम से, जल्दी जाना है; लौटकर मिलूँगा।"

और तुरन्त कपड़े पहनकर बिना खाये-पिये वह भाग खड़ा हुआ। बिनोदिनी की जिस सख्त चिट्ठी को वह आज सुबह से ही बारम्बार पढ़ता और जेब में लिये-लिये फिरता रहा—जल्दी में वह चिट्ठी कुर्ते में ही छोड़कर चला गया।

एक झमक बारिश हो गयी, फिर घुमड़न-सी हो रही। बिनोदिनी का मन आज खीझा हुआ था। उसका मन जब भी ऐसा होता है तो वह काम ज़्यादा करती है। इसीलिए आज घर भर में जितने भी कपड़े मिले सबको बटोरकर निशान लगा रही थी। आशा से कपड़े माँगने गयी तो उसके चेहरे का भाव देखकर उसका मन और भी बिगड़ गया। संसार में अगर कसूरवार ही ठहरना है तो उसकी सारी ज़हमतें ही क्यों झेलें, कसूर के सुखों से क्यों वंचित रहें?

झमाझम बारिश शुरू हो गयी। बिनोदिनी कमरे के फ़र्श पर आ बैठी। सामने कपड़ों का पहाड़ लगा था। नौकरानी एक-एक कपड़ा उसकी ओर बढ़ा रही थी और वह स्याही से उस पर हरफ उगा रही थी।

अचानक महेन्द्र बिना आवाज़ दिए दरवाज़ा खोलकर सीधा कमरे में दाखिल हो गया। नौकरानी घूँघट निकालकर वहाँ से भाग गयी।

बिनोदिनी ने अपनी गोद में रखा कपड़ा एक तरफ़ फेंक दिया और बिजली की तरह लपक कर खड़ी हो गयी। बोली—"जाओ, मेरे कमरे से चले जाओ!"

महेन्द्र बोला—"क्यों, मैंने क्या किया है?"

बिनोदिनी—"क्या किया है! डरपोक, कायर! कुछ करने की ज़ुर्रत ही कहाँ है तुममें! न प्यार करना आता है, न कर्तव्य का पता है। बीच में मुझे क्यों लोगों की नज़रों में गिरा रहे हो?"

महेन्द्र—"तुम्हें प्यार नहीं किया, यह क्या कहती हो?"

बिनोदिनी—"मैं यही कह रही हूँ—चोरी, चुप-चुप, झोप-तोप, एक बार इधर तो एक बार उधर—तुम्हारी यह चोर-जैसी हरकत देखकर मुझे नफ़रत हो गयी है। अब अच्छा नहीं लगता। तुम जाओ यहाँ से।"

महेन्द्र मुरझा गया। बोला—"तुम मुझसे नफ़रत करती हो, बिनोद?"

बिनोदिनी—"हाँ, करती हूँ।"

महेन्द्र—"अब भी प्रायश्चित करने का समय है। मैं अगर दुविधा न करूँ, सब-कुछ छोड़-छाड़कर चल दूँ तो तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

यह कहकर महेन्द्र ने ज़ोर से उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया। बिनोदिनी बोली—"छोड़ो, डर लगता है।"

महेन्द्र—"लगने दो। पहले बताओ कि तुम मेरे साथ चलोगी?"

बिनोदिनी—"नहीं! नहीं! हर्गिज़ नहीं।"

महेन्द्र—"क्यों नहीं चलोगी? तुमने ही मुझे खींचकर सर्वनाश के जबड़े में पहुँचाया। अब आज तुम मुझे छोड़ नहीं सकतीं। चलना ही पड़ेगा तुम्हें।"

महेन्द्र ने बलपूर्वक बिनोदिनी को अपनी छाती से लगाया और कसकर पकड़ते हुए कहा—"मैं तुम्हें ले जाकर ही रहूँगा और चाहे जैसे भी हो, प्यार तुम्हें करना ही पड़ेगा।"

बिनोदिनी ने ज़बर्दस्ती अपने को उसके शिकंजे से छुड़ा लिया। महेन्द्र ने कहा —"चारों तरफ़ आग लगा दी है, अब बुझा भी नहीं सकतीं, भाग भी नहीं सकतीं।"

कहते-कहते महेन्द्र की आवाज़ ऊँची हो आई। ज़ोर से बोला—"आखिर ऐसा खेल तुमने खेला क्यों, बिनोद! अब इसे खेल कहकर टालने से छुटकारा नहीं। तुम्हारी और मेरी अब एक ही मौत है।"

राजलक्ष्मी अन्दर आईं। बोलीं—"क्या कर रहा है, महेन्द्र?"

महेन्द्र की उन्मत्त निगाह पल-भर को माँ की ओर फिर गयी। उसके बाद उसने फिर बिनोदिनी की तरफ़ देखकर कहा—"मैं सब-कुछ छोड़-छाड़कर जा रहा हूँ, बताओ, तुम मेरे साथ चलती हो?"

बिनोदिनी ने नाराज़ राजलक्ष्मी के चेहरे की ओर एक बार देखा और अडिग भाव से महेन्द्र का हाथ थामकर बोली—"चलूँगी।"

महेन्द्र ने कहा—"तो आज भर इन्तज़ार करो! मैं चलता हूँ। कल से तुम्हारे सिवा मेरा और कोई न होगा।"

कहकर महेन्द्र चला गया।

इतने में धोबी आ गया। बिनोदिनी से उसने कहा—"माँ जी, अब तो जाने ही दीजिए। आज फ़ुरसत नहीं है तो मैं कल आकर कपड़े ले जाऊँगा।"

नौकरानी आई—"बहू जी, साईस ने बताया है, घोड़े का दाना खत्म हो गया है।"

बिनोदिनी इकट्ठा सात दिन का दाना अस्तबल में भिजवा दिया करती थी और खुद खिड़की पर खड़ी होकर घोड़ों के खाने पर नज़र रखती थी।

नौकर गोपाल ने आकर खबर दी—बीबीजी, झाड़ूदार से साधुचरण दादा जी की झड़प हो गयी है। वह कह रहा है, उसके तेल का हिसाब समझ लें तो वह दीवान जी से अपना लेना-देना चुकाकर नौकरी छोड़ देगा।"

गृहस्थी के सारे काम-काज पहले की तरह चलते रहे।

34

बिहारी भी अब मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरी पढ़ रहा था। ऐन इम्तहान के वक्त उसने छोड़ दी। कोई अचरज से पूछ बैठता, तो कहता—"पराई सेहत की बात फिर देखी जाएगी, पहले अपनी तन्दुरुस्ती का खयाल ज़रूरी है।"

असल में बिहारी के अध्यवसाय की हद न थी। कुछ-न-कुछ किए बिना रहना उसके लिए मुश्किल था। हालाँकि यश की प्यास, दौलत का लोभ और गुजर-बसर के लिए कमाने-धमाने की उसे बिल्कुल ज़रूरत न थी। कॉलेज की डिग्री हासिल करने के बाद पहले वह इंजीनियरिंग सीखने के लिए शिवपुर में दाखिल हुआ था। उसे जितना सीखने का कौतूहल था और हाथ के जितने भर हुनर की वह ज़रूरत महसूस करता था—उतना-भर हासिल कर लेने के बाद वह मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गया था। महेन्द्र साल भर पहले डिग्री लेकर मेडिकल कॉलेज गया था। कॉलेज के लड़कों में इन दोनों की मैत्री मशहूर थी। मज़ाक से सब इन्हें जुड़वाँ कहा करते थे। पिछले साल महेन्द्र परीक्षा में लुढ़क गया और दोनों दोस्त साथ हो गए। अचानक यह जोड़ी टूट कैसे गयी, संगी-साथियों की समझ में न आया। रोज़ जहाँ महेन्द्र से भेंट अवश्य हुआ करती थी, वहीं अब पहले की तरह नहीं होती थी, इसीलिए बिहारी ने उस जगह जाना ही छोड़ दिया था। सबको विश्वास था, बिहारी खूब अच्छी तरह पास होगा और सम्मान तथा पुरस्कार ज़रूर पाएगा लेकिन उसने इम्तहान ही न दिया।

बिहारी के घर के पास ही एक झोंपड़े में राजेन्द्र चक्रवर्ती नाम का एक गरीब ब्राह्मण रहता था। छापेखाने में बारह रुपये की नौकरी करके अपनी रोटी चलाता था। बिहारी ने उससे कहा, "अपने लड़के को तुम मेरे ज़िम्मे कर दो, मैं उसे लिखाऊँगा-पढ़ाऊँगा।"

बेचारा ब्राह्मण तो मानो जी गया। उसने खुशी-खुशी अपने आठ साल के लड़के बसन्त को बिहारी के हाथों सौंप दिया।

बिहारी उसे अपने तरीके से शिक्षा देने लगा। बोला—"दस साल की उम्र तक मैं इसे किताब न छूने दूँगा—ज़बानी पढ़ाऊँगा।

उसके साथ खेलने में, उसे लेकर मैदान, म्यूज़ियम, चिड़ियाघर, शिवपुर का बगीचा घूमने में बिहारी के दिन कटने लगे। ज़बानी अंग्रेज़ी सिखाता, कहानियों में इतिहास बताता, बालकों के मनोभाव का अध्ययन और विकास—बिहारी के पूरे दिन का यही काम था—अपने को वह पल-भर का भी अवकाश न देता।

उस दिन शाम को घर से निकलने की गुंजाइश न थी। दोपहर को बारिश थम गयी

थी, शाम को फिर शुरू हो गयी। अपने दुमंज़िले के बड़े कमरे में बत्ती जलाकर बिहारी बसन्त के साथ अपने नये ढंग का खेल खेल रहा था।

"अच्छा, कमरे में लोहे के कितने शहतीर हैं, जल्दी बताओ। ऊपर देख कर गिनो मत।"

बसन्त—"बीस।"

बिहारी—"हार गए। अट्ठारह हैं।"

बिहारी ने झट खिड़की की झिलमिली खोलकर पूछा—"कितने पल्ले हैं इसमें?"—और, झिलमिली उसने बन्द कर दी।

बसन्त ने कहा—"छः।"

"जीत गए।"

'यह बेंच कितनी लम्बी है, इस किताब का वज़न क्या होगा'—ऐसे सवालों से वह बसंत के दिमाग के विकास की चेष्टा कर रहा था कि बैरे ने आकर कहा— "बाबूजी, एक औरत..."

उसका कहना खत्म भी न हो पाया था कि बिनोदिनी कमरे में आ गयी।

बिहारी ने अचरज से कहा—"यह क्या, भाभी?"

बिनोदिनी ने पूछा—"तुम्हारे यहाँ अपनी सगी कोई स्त्री नहीं?"

बिहारी—"अपनी सगी भी कोई नहीं, पराई भी नहीं। बुआ हैं, गाँव में रहती हैं।"

बिनोदिनी—"तुम मुझे अपने गाँव वाले घर ले चलो।"

बिहारी—"किस नाते?"

बिनोदिनी—"नौकरानी के नाते।"

बिहारी—"बुआ को कैसा लगेगा! उन्होंने नौकरानी की ज़रूरत तो बताई नहीं है। खैर। पहले यह तो बताओ, अचानक ऐसा इरादा कैसे? बसन्त, तुम जाकर सो रहो।"

बसन्त चला गया।

बिनोदिनी बोली—"बाहरी घटना से तुम अन्दर की बात ज़रा भी नहीं समझ सकोगे।"

बिहारी—"न समझूँ तो भी क्या, गलत ही समझ लूँ तो क्या हर्ज़ है।"

बिनोदिनी—"अच्छी बात है, न हो गलत ही समझना। महेन्द्र मुझे प्यार करता है।"

बिहारी—"यह खबर कुछ नई तो है नहीं। और न कोई ऐसी ही खबर है कि दोबारा सुनने को जी चाहे।"

बिनोदिनी—"बार-बार सुनाने की इच्छा भी नहीं अपनी। इसलिए तुम्हारे पास आई हूँ, मुझे पनाह दो।"

बिहारी—"सुनाने की इच्छा नहीं है? फिर यह बताओ कि ऐसी आफ़त आखिर ढाई किसने! महेन्द्र जिस रास्ते जा रहा था, उससे उसे डिगाया किसने?"

बिनोदिनी—"मैंने डिगाया है। तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी, यह सारी करतूत मेरी है।

मैं बुरी हूँ या जो कुछ भी हूँ ज़रा मुझ-जैसे होकर मेरे मन की बात समझने की कोशिश करो। मैंने अपने जी की ज्वाला से महेन्द्र की दुनिया में आग लगाई है। एक बार ऐसा लगा कि मैं महेन्द्र को प्यार करती हूँ, लेकिन गलत है।"

बिहारी—"सच्चा प्यार हो तो भला कोई ऐसी आग लगा सकता है?"

बिनोदिनी—"यह सब आपके शास्त्र की बातें हैं। ये बातें सुनने-जैसी मति अभी अपनी नहीं हुई। अपनी पोथी पटककर एक बार अन्तर्यामी की तरह मेरे दिल की दुनिया में बैठो। आज मैं अपना भला-बुरा, सब तुमसे कहना चाहती हूँ।"

बिहारी—"पोथी क्या यों ही खोले बैठा हूँ, भाभी? हृदय को हृदय के कानून से समझने की ज़िम्मेदारी अन्तर्यामी पर ही रहे, हम पोथी के अनुसार न चलें तो अन्त में पार नहीं पड़ने का।"

बिनोदिनी—"बेहया होकर कहती हूँ सुनो, तुम मुझे लौटा सकते हो। महेन्द्र मुझे चाहता है, मगर वह अंधा है, मुझे नहीं समझता। कभी यह लगा था कि तुमने मुझे समझा है—कभी तुमने मुझ पर श्रद्धा की थी—सच-सच बताओ, आज इस बात को छिपाने की कोशिश मत करो!"

बिहारी—"सच है, मैंने श्रद्धा की थी।"

बिनोदिनी—"तुमने गलती नहीं की थी, लाला जी! लेकिन जब समझ ही लिया, जब श्रद्धा की ही थी, तो फिर वहीं क्यों रुक गए? मुझे प्यार करने में तुम्हें क्या बाधा थी? आज मैं बेहया बनकर तुम्हारे पास आई हूँ और बेहया होकर ही तुमसे कहती हूँ, तुमने भी मुझे प्यार क्यों नहीं किया? मेरी फूटी तकदीर! या तुम भी आशा की मुहब्बत में गर्क हो गए! न, नाराज़ नहीं हो सकते तुम! बैठो, आज मैं छिपाकर कुछ नहीं कहना चाहती। आशा को तुम प्यार करते हो, इस बात का जब खुद तुम्हें भी पता न था, मैं जानती थी। लेकिन मैं समझ नहीं पाती कि आशा में तुम लोगों ने देखा क्या है! बुरा या भला—उसके पास है क्या? विधाता ने क्या मर्दों को ज़रा भी अन्तर्दृष्टि नहीं दी है? तुम लोग आखिर क्या देखकर, कितना देखकर दीवाने हो जाते हो।"

बिहारी उठ खड़ा हुआ बोला—"आज तुम जो कुछ भी कहोगी, आदि से अन्त तक मैं सब सुनूँगा, मगर इतनी ही विनती है, जो बात कहने की नहीं है, वह मत कहो।"

बिनोदिनी—"तुम्हे कहाँ दुखता है, जानती हूँ। लेकिन मैंने जिसकी श्रद्धा पाई थी और जिसका प्रेम पाने से मेरी ज़िन्दगी बन सकती थी, लाज-डर, सबको ताक पर धरकर उसके पास दौड़ी आई हूँ—कितनी बड़ी वेदना लेकर आई हूँ, कैसे बताऊँ? मैं बिल्कुल सच कहती हूँ, तुम आशा को प्यार करते होते तो उसकी आज यह गत न हुई होती।"

बिहारी फक रह गया। बोला—"आशा को क्या हुआ? कौन-सी गत की तुमने।"

बिनोदिनी—"अपना घर-बार छोड़कर महेन्द्र मुझे लेकर कल चल देने को तैयार है।"

बिहारी एकाएक चीख पड़ा—"यह हर्गिज़ नहीं हो सकता, हर्गिज़ नहीं।"

बिनोदिनी—"हर्गिज़ नहीं? महेन्द्र को रोक कौन सकता है?"

बिहारी—"तुम रोक सकती हो।"

बिनोदिनी ज़रा देर चुप रही, उसके बाद बिहारी पर अपनी आँखें रोककर कहा —"आखिर किसके लिए रोकूँ? तुम्हारी उस आशा के लिए? मेरा अपना सुख-दुःख है ही नहीं? तुम्हारी आशा का भला हो, तुम्हारे महेन्द्र की दुनिया बनी रहे— यह सोचकर मैं अपने आज का अपना सारा दावा त्याग दूँ। इतनी भली मैं नहीं हूँ— इतना शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा। मैं छोड़ दूँगी तो उसके बदले मुझे क्या मिलेगा?"

धीरे-धीरे बिहारी के चेहरे का भाव सख्त हो आया। बोला—"तुमने बहुत साफ़-साफ़ कहने की कोशिश की है, अब मैं भी एक बात स्पष्ट बताऊँ। आज जो भी हरकत तुमने की है, और जो बेहूदा बातें कह रही हो, इसकी अधिकांश उस साहित्य से चोरी की हुई हैं, जो तुमने पढ़ा है। इसका पचहत्तर फीसदी नाटक और उपन्यास है।"

बिनोदिनी—"नाटक! उपन्यास!"

बिहारी—"हाँ, नाटक, उपन्यास। वह भी वैसे महत्तव का नहीं। तुम सोचती हो, यह सारा कुछ तुम्हारा निजी है—बिल्कुल गलत। यह सब छापेखाने की प्रतिध्वनि है। तुम अगर निहायत अबोध, सीधी-सादी बालिका होतीं तो भी संसार में प्रेम से वंचित न होतीं —लेकिन नाटक की नायिका रंगमंच पर ही फबती है, उससे घर का काम नहीं चलता।"

कहाँ है बिनोदिनी का वह तीखा तेज, दारुण दर्प! मन्त्रबिद्ध नागिन-सी वह स्तब्ध होकर झुक गयी। बड़ी देर के बाद बिहारी की ओर देखे बिना ही शान्त और नम्र स्वर में बोली—"तो मैं क्या करूँ?"

बिहारी बोला—"अनोखा कुछ न करो। एक सामान्य स्त्री के अच्छे विचार से जो आए, वही करो। अपने घर चली जाओ।"

बिनोदिनी ने कहा—"कैसे जाऊँ?"

बिहारी—"गाड़ी में तुम्हें औरतों वाले डिब्बे में बिठाकर तुम्हारे घर के स्टेशन तक छोड़ आऊँगा मैं।"

बिनोदिनी—"आज की रात यहीं रहूँ?"

बिहारी—"नहीं, अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नहीं।"

सुनते ही बिनोदिनी कुर्सी से उतरकर ज़मीन पर लोट गयी। बिहारी के दोनों पैरों को जी-जान से अपनी छाती से चिपकाकर बोली—"इतनी कमज़ोरी तो रखो लाला जी! बिल्कुल पत्थर के देवता-जैसे पवित्र मत बनो। बुरे को प्यार करके ज़रा-सा बुरा तो बनो।"

कहकर बिनोदिनी ने बिहारी के पाँवों को बार-बार चूमा। बिनोदिनी के ऐसे आकस्मिक और अकल्पनीय व्यवहार से ज़रा देर के लिए तो बिहारी मानो अपने को ज़ब्त न कर सका। उसकी तन-मन की सारी गाँठें ढीली पड़ गयीं। बिहारी की इस विह्वल दशा का अनुभव करके बिनोदिनी ने उसके पैर छोड़ दिए, अपने घुटनों के बल ऊँची होकर उसने कुर्सी पर बैठे बिहारी की गर्दन को बाँहों से लपेट लिया। बोली—"मेरे सर्वस्व, जानती हूँ, तुम मेरे सदा के लिए नहीं, लेकिन आज एक पल के लिए तुम मुझे प्यार करो! फिर मैं अपने उसी जंगल में चली जाऊँगी—किसी से कुछ भी न चाहूँगी। मरते दम तक याद रखने लायक एक कोई चीज़ दो।"

आँखें मूँदकर बिनोदिनी ने अपने होंठ बिहारी की ओर बढ़ा दिए। ज़रा देर के लिए दोनों सन्न रह गए, सारा घर सन्नाटा। इसके बाद धीरे-धीरे बिनोदिनी की बाँहें हटाकर बिहारी दूसरी कुर्सी पर जा बैठा और रुँधी-सी आवाज़ साफ़ करके कहा—"रात को एक बजे एक पैसेंजर गाड़ी है।"

बिनोदिनी ज़रा देर खामोश रही, फिर बोली—"उसी गाड़ी से चली चलूँगी।" इतने में नंगे पाँव, खाली बदन अपना गोरा स्वस्थ शरीर लिये बसन्त बिहारी के पास आ खड़ा हुआ और गम्भीर होकर बिनोदिनी को देखने लगा।

बिहारी ने पूछा—"सोने नहीं गया, बसन्त?"

बसन्त ने कोई उत्तर न दिया। उसी तरह गम्भीर खड़ा रहा। बिनोदिनी ने अपने दोनों हाथ फैला दिए। बसन्त ने पहले तो ज़रा आगा-पीछा किया, फिर बिनोदिनी के पास चला गया। बिनोदिनी उसे छाती से लगाकर ज़ोर से रो पड़ी।

35

कई बार जो असम्भव लगता है, वह सम्भव हो जाता है, जिसे बर्दाश्त करना मुश्किल लगता है, उसे बर्दाश्त कर लिया जाता है। ऐसा अगर न होता तो महेन्द्र के घर में उस दिन की रात काटे न कटती। लेकिन तमाम उथल-पुथल के बाद वह रात आखिरकार बीत गयी। महेन्द्र ने बिनोदिनी को तैयार रहने के लिए कहने के उद्देश्य से रात ही में एक पत्र लिखा था। वह पत्र उसने डाक में डाल दिया था और सवेरे महेन्द्र के यहाँ पहुँचा। आशा उस समय बिस्तर पर ही थी। बैरे ने आवाज़ दी— "माँ जी, चिट्ठी।"

आशा के कलेजे पर धक् से चोट लगी। पलक मारने भर की देर में हज़ारों आशा-आशंकाएँ एक साथ ही उसकी छाती में झनझनाने लगीं। झटपट सिर उठाकर उसने पत्र देखा, महेन्द्र के अक्षरों में बिनोदिनी का नाम। तुरंत उसका माथा तकिये पर लुढ़क पड़ा। बोली कुछ नहीं। चिट्ठी बैरे को वापस कर दी। बैरे ने पूछा—"किसे दूँ?"

आशा ने कहा—"मैं नहीं जानती।"

रात के आठ बज रहे होंगे। महेन्द्र आँधी की तरह लपककर बिनोदिनी के कमरे के सामने हाज़िर हुआ। देखा, कमरे में रोशनी नहीं है। घुप्प अँधेरा। जेब से दियासलाई निकालकर एक तीली जलाई। कमरा खाली पड़ा था। बिनोदिनी नहीं थी, उसका सरो-सामान भी नदारद। दक्खिन वाले बरामदे में गया। वह भी सूना पड़ा था। आवाज़ दी —"बिनोदिनी!" कोई जवाब नहीं।

'नासमझ! नासमझ हूँ मैं। उसी समय साथ ले जाना चाहिए था। माँ ने ज़रूर उसे इस बुरी तरह डाँटा-फटकारा है कि वह टिक न सकी।'

ध्यान में यही आया और अटल विश्वास बन गया। अधीर होकर वह उसी दम माँ के कमरे में गया। रोशनी वहाँ भी न थी, लेकिन राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी थीं—यह अँधेरे में भी दिखा। महेन्द्र ने रंजिश में कहा—"माँ, तुम लोगों ने बिनोदिनी से क्या कहा।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"कुछ नहीं।"

महेन्द्र—"तो वह कहाँ गयी?"

राजलक्ष्मी—"मैं क्या जानूँ?"

महेन्द्र ने अविश्वास के स्वर में कहा—"तुम नहीं जानतीं? खैर, जहाँ भी होगी, मैं उसे ढूँढ ही निकालूँगा।"

महेन्द्र चल पड़ा। राजलक्ष्मी झटपट उठ खड़ी हुई और उसके पीछे-पीछे चलती हुई कहने लगीं—"मत जा, मेरी एक बात सुन ले, ठहर।"

महेन्द्र दौड़कर एक ही साँस में घर से बाहर निकल गया। उल्टे पाँवों लौटकर उसने दरबान से पूछा—“बहूजी कहाँ गयीं?”

दरबान ने कहा—“हमें बताकर नहीं गयीं। पता नहीं।”

महेन्द्र ने चीखकर कहा—“पता नहीं।”

दरबान ने हाथ बाँधकर कहा—“जी नहीं, नहीं मालूम।”

महेन्द्र ने सोचा, ‘माँ ने इन्हें भी पट्टी पढ़ा दी है।’ बोला—“खैर।”

महानगरी के राजपथ पर गैस की रोशनी में बर्फ़वाला बर्फ़ और मछलीवाला मछली की रट लगा रहा था। भीड़ की हलचल में घुसकर चलता हुआ महेन्द्र ओझल हो गया।

36

बिहारी की आदत नहीं थी कि अँधेरे घर में बैठ कर अकेला किसी बात को ले कर सोच-विचार में डूबा रहे। उसे पसन्द था कि वह लोगों से घिरा रहे, पढ़ाई-लिखाई में, काम-काज में मशगूल रहे। उसे खुद अपने बारे में सोचने की बजाय अपने चारों तरफ़ की दुनिया पर ध्यान देना पसन्द था। लेकिन अचानक ज़ोर के धक्के से अब उसका सब कुछ विच्छिन्न हो गया—प्रलय के अँधेरे में वेदना की गगन-चुम्बी चोटी पर उसे अकेले खुद को लेकर खड़ा होना पड़ा। इसीलिए इस बार वह अकेले अपने साथ नहीं रहना चाहता था; एकान्त से उसे भय होने लगा।

लेकिन आज वह अपने उस भीतर वाले बिहारी को किसी भी तरह से दूर न रख सका। कल वह बिनोदिनी को उसके घर छोड़ आया, उसके बाद जिस भी काम में, जिस भी आदमी के साथ वह जुटा रहा है, उसका दुःखी हृदय उसे अपने गहरे एकांत की ओर लगातार खींच रहा था।

थकावट और अवसाद ने आज बिहारी को परास्त कर दिया। रात के ठीक नौ बजे होंगे। घर के सामने दक्खिन वाली छत पर गर्मी के दिन-ढले की हवा चंचल-सी हो उठी थी। वह अँधेरी छत पर एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

आज शाम उसने बसन्त को पढ़ाया नहीं—जल्दी ही वापस कर दिया। आज सांत्वना के लिए, संग के लिए, प्रेम-सुधा-सने अपने पिछले जीवन के लिए उसका हृदय मानो माँ द्वारा त्यागे गए शिशु की तरह संसार के अँधेरे में दोनों बाँहें फैलाकर न जाने किसे खोज रहा था! जिनके बारे में न सोचने की उसने कसम खायी थी— उसका अन्तर्मन उन्हीं की ओर दौड़ रहा था—रोकने की शक्ति ही नहीं रह गयी थी उसमें।

छुटपन से ले कर छूट जाने तक महेन्द्र के साथ उसकी मैत्री की जो कहानी रंगों में चित्रित, जल-स्थल, नदी-पर्वत में बँटी मानचित्र-जैसी उसके मन में सिमटी पड़ी थी, बिहारी ने उसे फैला दिया। लेकिन फिर भी यह बिछोह और वेदना अनोखी स्नेह-भरी माधुरी से भरी रही। उसके बाद किस शनि का उदय हुआ, जिसने मित्र के स्नेह, दंपती के प्रेम, घर की शान्ति और पवित्रता को एकबारगी मटियामेट कर दिया। उस बिनोदिनी को बिहारी ने बेहद घृणा से अपने मन से निकाल फेंकने की कोशिश की। लेकिन गज़ब! चोट गोया निहायत हल्की हो आई, उसे छू न सकी। वह अनोखी खूबसूरत पहेली अपनी अगम रहस्यभरी घनी काली आँखों की स्थिर निगाह लिये कृष्ण पक्ष के अँधेरे में बिहारी के सामने डटकर खड़ी हो गयी। गर्मी की रात की उमगी हुई दक्खिनी बयार उसी के गहरे निःश्वास-सी बिहारी को छूने लगी। धीरे-धीरे उन अपलक आँखों की जलती हुई निगाह

मलिन हो आने लगी, प्यास से सूखी वह तेज़ नज़र आँसुओं में भीगकर स्निग्ध हो गयी और देखते-ही-देखते गहरे भावरस में डूब गयी। अचानक उस मूर्ति ने बिहारी के कदमों के पास लौटकर उसकी दोनों जाँघों को जी-जान से अपनी छाती से पकड़ लिया। उसके बाद एक अनूठी मायालता की तरह उसने पल में बिहारी को लपेट लिया और फैलकर तुरन्त खिले सुगंधित फूल-जैसे मुखड़े को चुम्बन के लिए बिहारी के होंठों के पास बढ़ा दिया। आँखें मूँदकर अपनी सुधियों की दुनिया से बिहारी ने कल्पना संसार की उस छवि को निर्वासित कर देने की चेष्टा की; लेकिन उस पर आघात करने को उसका हाथ हर्गिज़ न उठा! एक अधूरा अकुलाया चुम्बन उसके मुँह के पास उत्सुक हो रहा था—एक अनोखे पुलक से वह भर उठा।

छत पर के सूने अँधेरे में बिहारी से और न रहा गया। किसी और तरफ़ ध्यान बँटाने के खयाल से वह जल्दी-जल्दी चिराग की रोशनी से जगमग कमरे में चला आया।

कोने में तिपाई पर रेशमी कपड़े में टँकी एक मढ़ी हुई तस्वीर थी। बिहारी ने कपड़ा हटाया, तस्वीर को लेकर रोशनी के पास बैठा और उसे अपनी गोद में रखकर देखने लगा।

तस्वीर महेन्द्र और आशा की थी—ब्याह के तुरंत बाद की। उसमें महेन्द्र ने अपनी लिखावट में 'महेन्द्र भैया' और आशा ने 'आशा' लिख दिया था।

तस्वीर को अपनी गोद में रखकर बिहारी ने उपेक्षा से बिनोदिनी को मन से दूर हटाना चाहा। लेकिन बिनोदिनी की प्रेम-कातर, यौवन कोमल बाँहें बिहारी की जाँघों को जकड़े रहीं। बिहारी मन-ही-मन बोला—'प्रेम की इतनी अच्छी दुनिया को तबाह कर दिया!' लेकिन बिनोदिनी का उमगा आकुल चुम्बन-निवेदन उससे चुपचाप कहने लगा —'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। सारी दुनिया में मैंने तुम्हीं को अपनाया है।'

'लेकिन यही क्या इसका उत्तर हुआ! एक उजड़ी हुई दुनिया की करुणाभरी चीख को यह बात ढँक सकती है? पिशाचिन!'

पिशाचिन! यह बिहारी की निखालिस झिड़की थी या इसमें ज़रा स्नेह का सुर भी आ मिला था? जीवन में प्रेम के सारे अधिकारों से वंचित होकर जब वह निरा भिखारी-सा राह पर जा खड़ा हुआ, तब अनमाँगे अजस्त्र प्रेम के ऐसे उपहार को वह तहेदिल से ठुकरा सकता है? और इससे बेहतर उसे मिला भी क्या! अब तक तो वह अपने जीवन की बलि देकर प्रेम की अन्नपूर्णा ने महज़ उसी के लिए सोने की थाली में पकवान परोसकर भेजा है। तो फिर किस संकोच से वह अभागा अपने को उससे वंचित करे?

तस्वीर को गोद में रखे वह इसी तरह की बातों में डूबा हुआ था कि पास ही आहट हुई। चौंककर देखा, महेन्द्र आया है। वह हड़बड़ी में खड़ा हो गया। तस्वीर गोद से फ़र्श के कालीन पर लुढ़क पड़ी। बिहारी ने इसका खयाल न किया।

महेन्द्र एकबारगी पूछ बैठा—"बिनोदिनी कहाँ है?"

बिहारी ने ज़रा आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लिया। बोला—"महेन्द्र भैया, बैठ जाओ, अभी बातें करते हैं।"

महेन्द्र ने कहा—"मेरे पास बैठने और बात करने का वक्त नहीं है। तुम यह बताओ कि बिनोदिनी कहाँ है?"

बिहारी ने कहा—"तुम जो पूछ रहे हो, एक वाक्य में जवाब नहीं दिया जा सकता। उसके लिए ज़रा बैठना पड़ेगा।"

महेन्द्र ने कहा—"उपदेश दोगे? वे सारे उपदेश मैं बचपन में ही पढ़ चुका हूँ।"

बिहारी—"नहीं। उपदेश देने का न तो मुझे अधिकार है, न क्षमता।"

महेन्द्र—"तो धिक्कारोगे? मुझे पता है, मैं पापी हूँ, और तुम जो कहोगे, वह सब हूँ मैं। लेकिन सिर्फ़ इतना पूछना चाहता हूँ, बिनोदिनी कहाँ है?"

बिहारी—"मालूम है।"

महेन्द्र—"मुझे बताओगे या नहीं?"

बिहारी—"नहीं बताऊँगा।"

महेन्द्र—"तुम्हें बताना ही पड़ेगा। तुम उसे चुरा लाए हो और छिपाकर रखे हुए हो। वह मेरी है। उसे मुझको लौटा दो।"

बिहारी कुछ क्षण ठगा-सा रहा। फिर दृढ़ता से बोला—"वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे चुराकर भी नहीं लाया—वह खुद-ब-खुद मेरे पास आई है।"

महेन्द्र चीख उठा—"सरासर झूठ!"

और महेन्द्र ने बगल के कमरे के दरवाज़े पर धक्का देते हुए आवाज़ दी— "बिनोद! बिनोद!"

अन्दर से रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। बोला—"कोई डर नहीं बिनोद, मैं महेन्द्र हूँ —तुम्हें कोई कैद करके नहीं रख सकता।"

महेन्द्र ने ज़ोर से धक्का दिया किवाड़ खुल गया। वह दौड़कर अन्दर गया। कमरे में अँधेरा था। धुँधली छाया-सी उसे लगी। न जाने वह किस डर के मारे काठ होकर तकिये से लिपट गया। जल्दी से बिहारी कमरे में आया। बिस्तर से बसन्त को गोद में उठाकर दिलासा देता हुआ बोला—"डर मत बसन्त, मत डर।"

महेन्द्र लपक कर वहाँ से निकला। घर के एक-एक कमरे की खाक छान डाली। उधर से लौटकर देखा, अब भी बसन्त डर से रह-रहकर रो उठता था। बिहारी ने उसके कमरे की रोशनी जलाई। उसे बिछौने पर सुलाकर बदन सहलाते हुए उसे सुलाने की चेष्टा करने लगा।

महेन्द्र ने आकर पूछा—"बिनोदिनी को तुमने कहाँ रखा है?"

बिहारी ने कहा—"महेन्द्र भैया, शोर न मचाओ। नाहक ही तुमने इस बच्चे को इतना डरा दिया। यह बीमार हो जाएगा। मैं कहता हूँ, बिनोदिनी के बारे में जानने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं।"

महेन्द्र बोला—"महात्माजी, धर्म का आदर्श न बनो। मेरी स्त्री की तस्वीर अपनी गोद में रखकर इस रात को किस देवता के ध्यान में किस पुण्य मन्त्र का जाप कर रहे थे? पाखंडी!"

कहकर महेन्द्र ने तस्वीर को जूते से रौंदकर चूर-चूर कर डाला और फोटो के टुकड़े-टुकड़े करके बिहारी पर फेंक दिया। उसका पागलपन देखकर बसन्त फिर रो पड़ा। गला

रुँध आया बिहारी का। उँगली से दरवाज़े का इशारा करते हुए वह बोला—"जाओ!"

महेन्द्र आँधी की तरह वहाँ से निकल गया।

37

रेल के औरतों वाले सूने डिब्बे में बैठी बिनोदिनी ने खिड़की में से जब जुते हुए खेत और बीच-बीच में छाया से घिरे गाँव देखे तो मन में सूने शीतल गाँव की ज़िंदगी ताज़ा हो आई। उसे लगा, पेड़ों की छाया के बीच अपने-आप बनाए कल्पना के बसेरे में अपनी किताबों से उलझकर कुछ दिनों के इस नगर-प्रवास के दुःख-दाह और जख्म से उसे शान्ति मिलेगी।

प्यासी छाती में चैन की वह उम्मीद ढोती हुई बिनोदिनी अपने घर पहुँची। मगर हाय, चैन कहाँ! वहाँ तो केवल शून्य था, गरीबी थी। बहुत दिनों से बन्द पड़े सीले घर की भाप से उसकी साँस अटकने लगी। घर में जो थोड़ी-बहुत चीज़ें थीं, उन्हें कीड़े चाट गए थे, चूहे कुतर गए थे, गर्द से बुरा हाल था। वह शाम को घर पहुँची—और घर में पसरा था बाँह-भर अँधेरा। सरसों के तेल से किसी तरह रोशनी जलाई—उसके धुएँ और धीमी जोत से घर की दीनता और भी साफ़ झलक उठी। पहले जिससे उसे पीड़ा नहीं होती थी, वह अब असह्य हो उठी—उसका बागी हृदय अकड़कर बोल उठा—"यहाँ तो एक पल भी नहीं कटने का। ताक पर दो-एक पुरानी पत्रिकाएँ और किताबें पड़ी थीं, किन्तु उन्हें छूने को जी न चाहा। बाहर सन्न पड़े-से आम के बगीचे में झींगुर और मच्छरों की तानें अँधेरे में गूँजती रहीं।"

बिनोदिनी की जो बूढ़ी अभिभाविका वहाँ रहती थी, वह घर में ताला डालकर अपनी बेटी से मिलने उसकी ससुराल चली गयी थी। बिनोदिनी अपनी पड़ोसिन के यहाँ गयी। वे तो उसे देखकर दंग रह गयीं। उफ़, रंग तो खासा निखर आया है, बनी-ठनी, मानो मेम साहब हो। इशारे से आपस में जाने क्या कहकर बिनोदिनी पर गौर करती हुई एक-दूसरे का मुँह ताकने लगीं।

बिनोदिनी पग-पग पर यह महसूस करने लगी कि अपने गाँव से वह हर तरह से बहुत दूर हो गयी है। अपने ही घर में निर्वासित-सी। कहीं पल-भर आराम की जगह नहीं।

डाकखाने का बूढ़ा डाकिया बिनोदिनी का बचपन से परिचित था। दूसरे दिन वह पोखर में डुबकी लगाने जा रही थी कि डाक का थैला लिये उसे जाते देख बिनोदिनी अपने-आपको न रोक सकी। अँगोछा फेंक जल्दी से बाहर निकलकर पूछा—"पंचू भैया, मेरी चिट्ठी है?"

बुढ्डे ने कहा—"नहीं।"

बिनोदिनी उतावली होकर बोली—"हो भी सकती है। देखूँ तो ज़रा।"

यह कहकर उसने चिट्ठियों को उलट-पलटकर देखा। पाँच-छः ही तो चिट्ठियाँ थीं। मुहल्ले की कोई न थी। उदास-सी जब घाट पर लौटी तो उसकी किसी सखी ने ताना दिया —"क्यों री बिन्दी, चिट्ठी के लिए इतनी परेशान क्यों?"

दूसरी एक बातूनी ने कहा—"अच्छी बात है, अच्छी! डाक के ज़रिये चिट्ठी आए, ऐसा भाग कितनों का होता है? हमारे तो पति, देवर, भाई परदेस में काम करते हैं, मगर डाकिए की मेहरबानी तो कभी नहीं होती।"

आने वाले दिनों में व्यंग्य के बाण और तीखे और चोट पहले से गहरी होने लगी। बिनोदिनी बिहारी से निहोरा कर आई थी—रोज़-रोज़ लिखते न बने, तो कम-से-कम हफ्ते में दो बार तो दो पंक्तियाँ ज़रूर लिखे। आज ही बिहारी की चिट्ठी आए, यह उम्मीद नहीं के बराबर ही थी, लेकिन आकांक्षा ऐसी बलवती थी कि वह दूर सम्भावना की आशा भी बिनोदिनी न छोड़ सकी। उसे लगा, जाने कब से कलकत्ता छूट गया है!

महेन्द्र को लेकर किस कदर उसकी निन्दा हुई थी, दोस्त-दुश्मन की दया से यह गाँव में अजानी न रही। शान्ति कहाँ!

गाँव के लोगों से उसने अपने को अछूता रखने की कोशिश की। लोग-बाग इससे और भी बिगड़ उठे। पापिनी को पास पाकर घृणा और पीड़न के विलास सुख से अपने को वे वंचित नहीं रखना चाहते।

छोटा-सा गाँव—अपने को सबसे छिपाए रखने की कोशिश बेकार है। यहाँ जख्मी हृदय को किसी कोने में दुबकाकर अँधेरे में सेवा-जतन की गुंजाइश नहीं— जहाँ-तहाँ से कौतूहल-भरी निगाह जख्म पर आकर पड़ने लगी। उसका अन्तर टोकरी में बन्द पड़ी ज़िन्दा मछली-सा तड़पने लगा। यहाँ आज़ादी के साथ पूरी तरह दुःख भोग सकने की भी जगह नहीं थी।

दूसरे दिन जब चिट्ठी का समय निकल गया तो कमरा बन्द करके बिनोदिनी पत्र लिखने बैठी—

"लाला जी, डरो मत, मैं तुम्हें प्रेम-पत्र लिखने नहीं बैठी हूँ। तुम मेरे मुन्सिफ़ हो, तुम्हें प्रणाम करती हूँ। मैंने जो पाप किया, तुमने उसकी बड़ी सख्त सज़ा दी। तुम्हारा हुक्म होते ही मैंने उस सज़ा को माथे पर रख लिया है। अफ़सोस इसी बात का है कि तुम देख नहीं सके कि यह सज़ा कितनी कड़ी है। देख पाते, कहीं जान पाते, तो तुम्हारे मन में जो दया होती, मैं उससे भी वंचित रही। तुम्हें याद करके, मन-ही-मन तुम्हारे पाँवों के पास माथा टेके मैं उसे भी बर्दाश्त करूँगी। लेकिन प्रभु, कैदी को क्या खाना भी नसीब नहीं होता? व्यंजन न सही, जितना-भर न मिलने से काम नहीं चल सकता, उतना भोजन तो उसका बँधा होता है? मेरे इस निर्वासन का आहार है तुम्हारी दो पंक्तियाँ—वह भी न बदा हो तो वह निर्वासन-दण्ड नहीं, प्राण-दण्ड है। सज़ा देने वाले, मेरी इतनी बड़ी परीक्षा न लो। मेरे पापी मन में दम्भ की हद न थी—स्वप्न में भी मुझे यह पता न था कि किसी के आगे मुझे इस कदर सिर झुकाना पड़ेगा। जीत तुम्हारी हुई प्रभो, मैं बगावत न करूँगी। मगर मुझ पर रहम करो, मुझे जीने दो। इस सूने जंगल में रहने का थोड़ा-बहुत सहारा मुझे दिया करना। फिर तो तुम्हारे शासन से मुझे कोई भी किसी भी हालत में डिगा न सकेगा। यही

दुखड़ा रोना था। और जो बातें जी में हैं, कहने को कलेजा मुँह को आता है।—पर वे बातें तुम्हें न बताऊँगी, मैंने शपथ ली है। उस शपथ को मैंने पूरा किया।

—तुम्हारी बिनोदिनी।"

बिनोदिनी ने पत्र डाक में डाल दिया। मुहल्ले के लोग छिः-छिः करने लगे। कमरा बन्द किए रहती है, चिट्ठी लिखा करती है, चिट्ठी के लिए डाकिए को जाकर तंग करती है —दो दिन कलकत्ता रहने से क्या लाज-धरम को इस तरह घोलकर पी जाना चाहिए!

उसके बाद के दिन भी चिट्ठी न मिली। बिनोदिनी दिन-भर गुमसुम रही।

बिहारी का उसके पास कुछ भी न था—एक पंक्ति की चिट्ठी तक नहीं। कुछ भी नहीं। वह शून्य में मानो कोई चीज़ खोजती फिरने लगी। बिहारी की किसी निशानी को अपने कलेजे से लगाकर सूखी आँखों में वह आँसू लाना चाहती थी। आँसुओं में मन की सारी कठिनता को गलाकर, विद्रोह की भभकती आग को बुझकर, वह बिहारी के कठोर आदेश को अन्तर के कोमलतम प्रेम-सिंहासन पर बिठाना चाहती थी। लेकिन सूखे के दिनों की दोपहरी के आसमान-जैसा उसका कलेजा सिर्फ़ जलने लगा।

बिनोदिनी ने सुन रखा था, हृदय से जिसे पुकारो, उसे आना ही पड़ता है। इसीलिए हाथ बाँधे आँखें मूँदकर वह बिहारी को पुकारने लगी—'मेरा जीवन सूना पड़ा है, हृदय सूना है, चारों ओर सुनसान है—इस सूनेपन के बीच तुम एक बार आओ। घड़ी-भर को ही सही—तुम्हें आना पड़ेगा। मैं तुम्हें हर्गिज़ नहीं छोड़ सकती।' हृदय से इस तरह पुकारने से बिनोदिनी को मानो सच्चा बल मिला। उसे लगा, प्रेम की पुकार का यह बल बेकार नहीं जाने का।

साँझ का दीप-विहीन अँधेरा कमरा जब बिहारी के ध्यान से घने तौर पर परिपूर्ण हो उठा, जब दीन-दुनिया, गाँव-समाज, समूचा त्रिभुवन प्रलय में खो गया तो अचानक दरवाज़े पर थपकी सुनकर बिनोदिनी झटपट ज़मीन पर से उठ खड़ी हुई और दृढ़ विश्वास के साथ दौड़कर दरवाज़ा खोलती हुई बोली—"प्रभु, आ गए?" उसे पक्का विश्वास था कि इस घड़ी दूसरा कोई उसके दरवाज़े पर नहीं आ सकता।

महेन्द्र ने कहा—"हाँ, आ गया बिनोद!"

बिनोदिनी बेहद खीझ से बोल उठी—"चले जाओ, चले जाओ, चले जाओ यहाँ से। अभी चल दो तुरन्त।"

महेन्द्र को मानो काठ मार गया।

"हाँ री बिन्दी, तेरी ददिया सास अगर कल..." कहते-कहते कोई प्रौढ़ा पड़ोसिन बिनोदिनी के दरवाज़े पर आई और फिर महेन्द्र को देख कर सहसा 'हाय राम!' कहती हुई लम्बा घूँघट काढ़कर भाग गयी।

38

टोले में एक हलचल-सी मच गयी। देवी थान में इकट्ठे होकर बड़े-बूढ़ों ने कहा—'अब तो बर्दाश्त के बाहर है। कलकत्ता के कारनामों को अनसुना भी किया जा सकता था—मगर इसकी यह हिम्मत! लगातार महेन्द्र को चिट्ठी लिख-लिखकर उसे बुलाकर यहाँ ऐसा खुल खेलना, यह बेहयाई! ऐसी पापिन को गाँव में नहीं रहने दिया जा सकता।'

बिनोदिनी को विश्वास था कि बिहारी का जवाब आज ज़रूर आएगा। लेकिन न आया। अपने मन में वह कहने लगी—'बिहारी का मुझ पर अधिकार कैसा! मैं उसका हुक्म मानने क्यों गयी? मैंने उसे यह क्यों समझने दिया कि वह जैसा कहेगा, सिर झुकाकर मैं वही मान लूँगी। उससे तो मेरा महज़ उतने ही भर का नाता है, जितना-भर उसकी प्यारी आशा को बचाने की ज़रूरत है। मेरा अपना कोई पावना नहीं, दावा नहीं, मामूली दो पंक्तियों की चिट्ठी भी नहीं—मैं इतनी तुच्छ हूँ?' डाह के ज़हर से बिनोदिनी का कलेज़ा भर गया।

काठ की मूरत-जैसी सख्त बनी बिनोदिनी जब कमरे में बैठी थी, उसकी ददिया सास दामाद के यहाँ से लौटीं और आते ही उससे बोलीं—"अरी मुँहजली, यह सब क्या सुन रही हूँ?"

बिनोदिनी ने कहा—"जो सुन रही हो, सब सच है।"

ददिया सास बोलीं—"तो फिर इस कलंक का बोझा लिये यहाँ आने की क्या पड़ी थी—आई क्यों यहाँ?"

रुँधे क्रोध से बिनोदिनी चुप बैठी रही।

वह बोलीं—"मैं कहे देती हूँ, यहाँ तुम नहीं रह सकतीं। अपनी खोटी तकदीर, सब तो मर ही गए—वह दुःख सहकर भी मैं ज़िन्दा हूँ—तुमने हमारा सिर झुका दिया। तुम तुरन्त यहाँ से चली जाओ।"

इतने में बिना नहाया-खाया महेन्द्र रूखे-बिखरे बालों से वहाँ आ पहुँचा। तमाम रात जागता रहा था—आँखें लाल-लाल, चेहरा सूखा पड़ा। उसने संकल्प किया था कि मुँह अँधेरे ही आकर वह बिनोदिनी को साथ ले जाने की फिर से कोशिश करेगा। लेकिन पहले दिन बिनोदिनी में अभूतपूर्व घृणा देख उसके मन में तरह-तरह की दुविधा होने लगी। धीरे-धीरे जब दिन चढ़ गया, गाड़ी का समय हो आया, तो स्टेशन के मुसाफिरखाने से निकलकर, मन से सारे तर्क-वितर्क दूर करके वह गाड़ी से सीधा बिनोदिनी के यहाँ पहुँचा। हया-शर्म छोड़कर दुस्साहस का काम करने पर आमादा होने से जो एक

स्पर्द्धापूर्ण बल पैदा हो आता है, उसी बल के आवेश में महेन्द्र ने एक उदभ्रांत आनन्द का अनुभव किया—उसका सारा अवसाद और दुविधा जाती रही। गाँव के कौतूहल वाले लोग उस उन्मत्त दृष्टि में उसे कागज़ के निर्जीव पुतले-से लगे। महेन्द्र ने किसी तरफ़ नहीं देखा, सीधा बिनोदिनी के पास जाकर बोला—"बिनोद, इस लोकनिन्दा के खुले मुँह में तुम्हें अकेला छोड़ जाऊँ, ऐसा कायर मैं नहीं हूँ। जैसे भी हो, तुम्हें यहाँ से ले ही जाना पड़ेगा। बाद में तुम मुझे छोड़ देना चाहो, छोड़ देना! मैं कुछ भी न कहूँगा। तुम्हारा बदन छूकर मैं कसम खाता हूँ, तुम जैसा चाहोगी, वही होगा। दया कर सको, तो जीऊँगा और न कर सको, तो तुम्हारी राह से दूर हट जाऊँगा। दुनिया में अविश्वास के काम मैंने बहुतेरे किए हैं। पर आज तुम मुझ पर अविश्वास न करो। अभी हम कयामत के मुँह पर खड़े हैं, यह धोखे का समय नहीं।"

बिनोदिनी ने बड़े ही सहज भाव से दृढ़ होकर कहा—"मुझे अपने साथ ले चलो। गाड़ी है?"

महेन्द्र ने कहा—"है।"

बिनोदिनी की सास ने बाहर आकर कहा—"महेन्द्र, तुम मुझे नहीं पहचानते, मगर तुम हम लोगों के बिराने नहीं हो। तुम्हारी माँ राजलक्ष्मी हमारे ही गाँव की लड़की हैं, गाँव के रिश्ते से मैं उसकी मामी होती हूँ। मैं तुमसे पूछती हूँ, यह तुम्हारा क्या रवैया है! घर में तुम्हारी स्त्री है, माँ है और तुम ऐसे बेहया पागल बने फिरते हो? भले समाज में तुम मुँह कैसे दिखाओगे?"

महेन्द्र निरुत्तर हो गया तो बुढ़िया बोली—"जाना ही हो तो अभी चल दो, तुरन्त। मेरे घर के बरामदे पर खड़े न रहो—पल-भर की भी देर न करो अब।"

कहकर बुढ़िया भीतर गयी और अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। बे-नहाई, भूखी, गन्दे कपड़े पहने बिनोदिनी खाली हाथों गाड़ी पर जा सवार हुई। जब महेन्द्र भी चढ़ने लगा तो वह बोली—"नहीं, स्टेशन बहुत करीब है, तुम पैदल चलो।"

महेन्द्र ने कहा—"फिर तो गाँव के सब लोग मुझे देखेंगे।"

बिनोदिनी ने कहा—"अब भी लाज रह गयी है क्या?"

और गाड़ी का दरवाज़ा बन्द करके बिनोदिनी ने गाड़ीवान से कहा—"स्टेशन चलो!"

गाड़ीवान ने पूछा—"बाबू नहीं चलेंगे?"

महेन्द्र ज़रा आगा-पीछा करने के बाद जाने की हिम्मत न कर सका। गाड़ी चल दी। गाँव की गैल छोड़कर महेन्द्र सिर झुकाए खेतों के रास्ते चला।

गाँव की बहुओं का नहाना-खाना हो चुका था। जिन प्रौढ़ाओं को देर से फ़ुरसत मिली, केवल वही अँगोछा और तेल का कटोरा लिये बौराए आम के महमह बगीचे की राह घाट को जा रही थीं।

39

महेन्द्र के जाने के बाद राजलक्ष्मी की ज़िन्दगी वीरान हो गयी थी। बेटा कहाँ चला गया, इस आशंका से राजलक्ष्मी ने खाना-सोना छोड़ दिया। सम्भव-असम्भव सभी जगहों में साधुचरण उसे ढूँढते फिरने लगे—ऐसे में बिनोदिनी को लेकर महेन्द्र कलकत्ता आया। पटलडाँगा के मकान में उसे रखकर वह अपने घर गया।

माँ के कमरे में जाकर देखा, कमरा लगभग अँधेरा है। लालटेन को ओट में रखा गया है। राजलक्ष्मी मरीज़-जैसी बिस्तर पर पड़ी हैं और पायताने बैठी आशा उनके पाँव सहला रही है। इतने दिनों के बाद घर की बहू को सास के पैरों का अधिकार मिला है।

महेन्द्र के आते ही आशा चौंकी और कमरे से बाहर चली गयी। महेन्द्र ने ज़ोर देकर सारी दुविधा हटाकर कहा—"माँ, मुझे यहाँ पढ़ने में सुविधा नहीं होती, इसलिए मैंने कॉलेज के पास एक डेरा ले लिया है। वहीं रहूँगा।"

बिस्तर के एक ओर का इशारा करके राजलक्ष्मी ने कहा—"ज़रा बैठ जा।"

महेन्द्र सकुचाता हुआ बिस्तर पर बैठ गया। बोलीं—"जहाँ तेरा जी चाहे, तू रह। मगर मेरी बहू को तकलीफ़ मत देना!"

महेन्द्र चुप रहा।

राजलक्ष्मी बोलीं—"अपना भाग ही खोटा है, तभी मैंने अपनी अच्छी बहू को नहीं पहचाना।"—कहते-कहते राजलक्ष्मी का गला भर आया—"लेकिन इतने दिनों तक तू उसे जानता रहा, प्यार करता रहा, फिर तूने उसे इस तकलीफ़ में कैसे डाला?"

राजलक्ष्मी से और न रहा गया। रो पड़ीं।

वहाँ से उठ भागे तो जी जाए महेन्द्र। लेकिन तुरन्त भागते न बना। माँ के बिस्तर के एक किनारे चुपचाप बैठा रहा।

बड़ी देर के बाद राजलक्ष्मी ने पूछा—"आज रात तो यहीं रहेगा न?"

महेन्द्र ने कहा—"नहीं।"

राजलक्ष्मी ने पूछा—"कब जाओगे?"

महेन्द्र बोला—"बस अभी।"

तकलीफ़ से राजलक्ष्मी उठीं। कहा—"अभी? बहू से एक बार मिलेगा भी नहीं? अरे बेहया, तेरी बेरहमी से मेरा तो कलेजा ही फट गया।"

कहकर राजलक्ष्मी टूटी डाल-सी बिस्तर पर लेट गयीं।

महेन्द्र उठकर बाहर निकला। दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़कर वह अपने ऊपर के कमरे की ओर चला। वह चाहता नहीं था कि आशा से भेंट हो।

ऊपर पहुँचते ही उसकी नज़र पड़ी, कमरे के सामने सायबान वाले बरामदे में आशा ज़मीन पर ही पड़ी थी। उसने महेन्द्र के पैरों की आहट नहीं सुनी थी, अचानक उसे सामने देख कपड़े सँभालकर उठ बैठी। इस समय कहीं एक बार भी महेन्द्र ने चुन्नी कहकर पुकारा होता तो वह महेन्द्र के सारे अपराधों को अपने सिर लेकर माफ़ की गयी अपराधिनी की तरह उसके दोनों पैर पकड़कर जीवन-भर का रोना रो लेती। लेकिन महेन्द्र वह नाम लेकर न पुकार सका।

आशा मन में उथल-पुथल लिये, संकोच में डूबी बैठी रही। महेन्द्र ने भी कुछ न कहा। चुपचाप छत पर टहलने लगा। चाँद अभी तक उगा न था। छत के एक कोने में छोटे-से गमले के अन्दर रजनीगंधा के दो डंठलों में दो फूल खिले थे। आसमान के वे नक्षत्र, वे सतभैया, वह कालपुरुष, जाने कितनी शामों के दौरान उनके एकांत प्रेमाभिनय के मौन गवाह थे—आज वे सब टुकुर-टुकुर ताकते रहे।

महेन्द्र सोचने लगा—काश, वह इधर के इन कई दिनों की इस विप्लव-कथा को इस आसमान के अँधेरे से पोंछ सकता और ठीक पहले की तरह खुली छत पर चटाई डाले आशा की बगल में उसी सदा की जगह में सहज ही बैठ पाता! कोई सवाल नहीं, कोई जवाबदेही नहीं; वही विश्वास, वही प्रेम, वही सहज आनन्द! लेकिन हाय, यहाँ उतनी-सी जगह पर फिर लौटने की गुंजाइश नहीं। छत की चटाई पर आशा के पास की जगह का वह हिस्सा महेन्द्र ने खो दिया है। अब तक महेन्द्र से बिनोदिनी का एक स्वाधीन सम्बन्ध था, प्यार करने का पागल सुख था, लेकिन अटूट बन्धन नहीं था। अब वह बिनोदिनी को खुद समाज से छीनकर ले आया है, अब उसे कहीं भी रख आने की, कहीं भी लौटा आने की जगह नहीं रही—महेन्द्र ही अब उसका एक-मात्र अवलंब है। अब इच्छा हो या न हो, बिनोदिनी का सारा भार उसे उठाना ही पड़ेगा।

लम्बी उसाँस लेकर महेन्द्र ने एक बार आशा की ओर देखा। मौन रुलाई से अपनी छाती भरे आशा तब भी उसी तरह बैठी थी—रात के अँधेरे ने माँ के आँचल की तरह उसकी लाज और वेदना लपेट रखी थी।

न जाने क्या कहने के लिए महेन्द्र अचानक आशा के पास आकर खड़ा हुआ। आशा के कान में पूरे शरीर का खून सिमटकर चीखने लगा—उसने आँखें मूँद लीं। महेन्द्र सोच नहीं पाया कि वह आखिर क्या कहने आया था—कहने को उस पर है भी क्या? लेकिन, बिना कुछ कहे अब लौट भी न सका। पूछा—"कुंजियों का गुच्छा कहाँ है?"

कुंजियों का गुच्छा बिस्तर के नीचे था। आशा उठकर कमरे में चली गयी। महेन्द्र उसके पीछे-पीछे गया। बिस्तर के नीचे से कुंजियाँ निकालकर आशा ने बिस्तर पर रख दीं। गुच्छे को लेकर महेन्द्र अपने कपड़ों की अलमारी में एक-एक कुंजी लगाकर देखने लगा। आशा रह न सकी। बोल पड़ी—"उस अलमारी की कुंजी मेरे पास न थी।"

कुंजी किसके पास थी, यह बात उसकी ज़बान से न निकल सकी, लेकिन महेन्द्र ने समझा। आशा जल्दी-जल्दी कमरे के बाहर निकल गयी; उसे डर लगा, कहीं महेन्द्र के सामने ही उसकी रुलाई न छूट पड़े। अँधेरी छत की दीवार के एक कोने की तरफ़ मुँह

फेरकर खड़ी-खड़ी उफनती हुई वह रुलाई दबाकर रोने लगी।

लेकिन रोने का ज़्यादा समय न था। एकाएक उसे याद आ गया, महेन्द्र के खाने का समय हो गया। तेज़ी से वह नीचे उतर गयी।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा—"महेन्द्र कहाँ है, बहू?"

आशा ने कहा—"ऊपर।"

राजलक्ष्मी—"और तुम उतर आईं?"

आशा ने सिर झुकाकर कहा—"उनका खाना..."

राजलक्ष्मी—"खाने का इंतज़ाम मैं कर रही हूँ—तुम ज़रा हाथ-मुँह धो लो और अपनी वह ढाका वाली साड़ी पहनकर मेरे पास आओ—मैं तुम्हारे बाल सँवार दूँ।"

सास के लाड़ को टालना भी मुश्किल था, लेकिन साज-श्रृंगार के इस प्रस्ताव से वह शर्मा गयी। मौत की इच्छा करके भीष्म जैसे चुपचाप तीरों की वर्षा झेल गए थे, उसी प्रकार आशा ने भी बड़े धीरज से सास का सारा साज-श्रृंगार स्वीकार कर लिया।

बन-सँवरकर धीमे-धीमे वह ऊपर गयी। झाँककर देखा, महेन्द्र छत पर नहीं था। कमरे के दरवाज़े से देखा, वह कमरे में भी न था—खाना यों ही पड़ा था।

कुंजी नहीं मिली, सो अलमारी तोड़कर महेन्द्र ने कुछ ज़रूरी कपड़े और काम की किताबें निकाल लीं और चला गया।

अगले दिन एकादशी थी। नासाज़ और भारी-भारी-सी राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी थीं। बाहर घटाएँ घिरी थीं। आँधी-पानी के आसार। आशा धीरे-धीरे कमरे में गयी। धीरे-से उनके पैरों के पास बैठकर बोली—"तुम्हारे लिए दूध और फल ले आई हूँ माँ, चलो, खा लो!"

करुणा-मूर्ति बहू की सेवा की चेष्टा, जिसकी वह आदी न थीं, देखकर राजलक्ष्मी की सूखी आँखें उमड़ आईं। वह बैठीं। आशा को अपनी गोद में खींचकर उसके गीले गाल चूमने लगीं। पूछा—"महेन्द्र कर क्या रहा है, बहू!"

आशा लजा गयी। धीमे-से कहा—"वे चले गए।"

राजलक्ष्मी—"चला गया? मुझे तो पता भी न चला।"

आशा बोली—"वह कल रात ही चले गए।"

सुनते ही राजलक्ष्मी की कोमलता मानो काफूर हो गयी; बहू के प्रति उनके स्नेह-स्पर्श में रस का नाम न रह गया। आशा ने एक मौन लांछन का अनुभव किया और सिर झुकाए चली गयी।

40

रात को जब बिनोदिनी को पटलडाँगा के डेरे पर छोड़कर महेन्द्र अपने कपड़े और किताबें लाने घर चला गया तो कलकत्ता के अविराम जन-प्रवाह की हलचल में अकेली बैठी बिनोदिनी अपनी बात सोचने लगी। दुनिया में पनाह की बहुत-सी जगहें तो उसके पास कभी नहीं थीं, इतनी ज़रूर थीं कि अगर एक ओर गरम हो जाए, तो दूसरी तरफ़ करवट बदलकर सो सके। आज लेकिन निर्भर करने की जगह निहायत सँकरी हो गयी थी। जिस नाव पर सवार होकर वह प्रवाह में बह चली है, उसके दाएँ-बाएँ किसी भी तरफ़ ज़रा झुक जाने से पानी में गिर पड़ने की नौबत आ सकती है। लिहाज़ा बड़ी सावधानी से पतवार पकड़नी थी—ज़रा-सी चूक, ज़रा-सा हिलना-डुलना भी मुहाल था। ऐसी हालत में भला किस औरत का कलेजा नहीं काँपता। पराये मन को मुट्ठी में रखने के लिए जिस चुहल की ज़रूरत है, जितनी ओट चाहिए, इस सँकरेपन में उसकी गुंजाइश कहाँ! महेन्द्र के एकबारगी आमने-सामने रहकर सारी ज़िन्दगी बितानी पड़ेगी। फ़र्क इतना ही है कि महेन्द्र के किनारे लगने की गुंजाइश है, बिनोदिनी के लिए वह भी नहीं।

अपनी इस असहाय हताश अवस्था को जितना ही वह समझने लगी, उतना ही उसे बल मिलने लगा। कोई-न-कोई उपाय करना ही पड़ेगा। ऐसे काम नहीं चलने का।

बिहारी के सामने प्रेम-निवेदन करने के दिन से ही बिनोदिनी के धीरज का बाँध टूट गया था। अपने जिस उमगे हुए चुम्बन को वह उसके पास से लौटाकर ले आई, संसार में और किसी के पास उसे उतारकर नहीं रख सकती। पूजा के चढ़ावे की तरह देवता के लिए उसे रात-दिन ढोने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। उसका मन कभी हथियार डाल देना नहीं जानता, निराशा वह नहीं मानती। उसका मन बार-बार उससे कह रहा था—"यह पूजा बिहारी को कबूल करनी ही पड़ेगी।"

उसके इस अदम्य प्रेम से उसकी आत्म-रक्षा की आकांक्ष आकर मिल गयी। बिहारी के सिवा उसके पास और कोई चारा नहीं है। महेन्द्र को उसने अच्छी तरह समझ लिया था।—उस पर टिकना चाहो तो वह भार नहीं सह सकता—छोड़ने पर ही उसे पाया जा सकता है—पकड़ना चाहो कि भाग खड़ा होना चाहता है। लेकिन औरत के लिए जिस एक निश्चित, विश्वासी सहारे की नितांत आवश्यकता है, वह सहारा बिहारी ही दे सकता है। अब बिहारी को छोड़ने से उसका काम हर्गिज़ नहीं चल सकता।

यह सोचकर उसने खिड़की खोली और गैस की रोशनी से दमकते शहर की ओर देखने लगी, बिहारी अभी साँझ को इस शहर में ही है, यहाँ से एकाध रास्ते, दो-चार गलियाँ पार करके अभी-अभी उसके दरवाज़े पर मज़े में पहुँचा जा सकता है। द्वार के

बाद ही नलवाला छोटा-सा अँगना, वही सीढ़ी, वही सजा-सजाया कमरा—सन्नाटे में बिहारी आराम-कुर्सी पर अकेला बैठा—शायद सामने खड़ा ब्राह्मण का वह लड़का, गोल-मटोल, गोरा-गोरा सुन्दर-सा वह लड़का नज़र गड़ाये तस्वीरों वाली किसी किताब के पन्ने पलट रहा हो—एकाएक सारे चित्र को सुधि में लाकर स्नेह से, प्रेम से बिनोदिनी का तन-मन पुलकित हो उठा। जी चाहे तो अभी वहाँ पहुँच जाया जा सकता है—यह सोचकर बिनोदिनी इस इच्छा को छाती से लगाए खेलने लगी। पहले की बात होती, तो शायद वह अपनी इच्छा पूरी करने के लिए लपक पड़ती, लेकिन अब आगे-पीछे बहुत सोचना पड़ता है। अब तो महज़ वासना पूरी करने का सवाल नहीं रहा, उद्देश्य की पूर्ति करनी है। बिनोदिनी सोचने लगी—'पहले यह देखूँ कि बिहारी जवाब क्या देता है, उसके बाद तय करूँगी कि किस रास्ते जाना है।' कुछ समझे बिना बिहारी को तंग करने के लिए जाने की हिम्मत न पड़ी।

इसी तरह सोचते-विचारते जब रात के नौ बज गए तो महेन्द्र लौटकर आ गया। उसके ये कई दिन भूखे-प्यासे, बदपरहेजी और उत्तेजना में कटे थे। आज कामयाब होकर बिनोदिनी को वह अपने डेरे में ले आया; इसीलिए थकावट से मानो चूर-चूर हो गया। दुनिया से, अपने मन की हालत से, लड़ने लायक बल उसमें नहीं रह गया था। भार से लदे उसके भावी जीवन की थकावट ने मानो पहले से ही उसे दबोच लिया।

बाहर से दरवाज़े के कड़े खटखटाने में महेन्द्र को बड़ी शर्म लगने लगी। जिस पागलपन में दुनिया का कोई खयाल ही न किया, वह पागलपन कहाँ! रास्ते के अचीन्हे-अजाने लोगों की नज़र के सामने भी वह सकुचा क्यों रहा है?

अन्दर नया नौकर सो गया था। दरवाज़ा खुलवाने के लिए बड़ा हंगामा करना पड़ा। अपरिचित नये डेरे के अँधेरे में पहुँचने पर महेन्द्र का मन ढीला पड़ ही गया। माँ का लाड़ला महेन्द्र जिन विलास-उपकरणों—पंखे, कुर्सी, सोफ़े-का आदी रहा है, उसका अभाव यहाँ साफ़ दिख गया। इन अभावों को मिटाना ही पड़ेगा। डेरे के सारे इन्तज़ाम का भार उसी पर था। महेन्द्र ने आज तक कभी अपने या किसी के आराम की फ़िक्र नहीं की—आज से उसे एक नये और अधूरे संसार का तीली-तीली भार उठाना था। सीढ़ी पर एक ढिबरी धुआँ उगलती हुई टिमटिमा रही थी; वहाँ के लिए एक लैम्प लाना पड़ेगा। बरामदे से सीढ़ी को जाने वाला रास्ता नल के पानी से चिपचिपाता रहता, मिस्त्री बुलाकर सीमेंट से उसकी मरम्मत करानी पड़ेगी। सड़क की तरफ़ के दो कमरे जूतों की दुकानवालों के ज़िम्मे थे, उन्होंने अभी तक उन्हें खाली नहीं किया—मकान-मालिक से इसके लिए लड़ेगा। सारा काम खुद ही करना पड़ेगा—लम्हे-भर में यह बात दिमाग में आई और उसकी थकावट पर और भी बोझ लद गया।

सीढ़ी पर कुछ देर खड़े रहकर महेन्द्र ने अपने को सँभाल लिया—बिनोदिनी के प्रति जो प्रेम था, उसे उभारा। अपने-आपको समझया कि आज तक सारी दुनिया को भूलकर उसने जो चाहा था, वह मिल गया—दोनों के बीच अब अड़चन की कोई दीवार नहीं—आज तो महेन्द्र की खुशी का दिन है। कोई अड़चन नहीं थी—लेकिन सबसे बड़ी अड़चन यही थी—आज वह आप ही अपनी बाधा था।

बिनोदिनी ने महेन्द्र को सड़क से आते हुए ही देख लिया था और देख कर वह अपने

ध्यान के आसन से उठी। कमरे में रोशनी जलाई। सिलाई का काम लेकर नज़र झुकाए बैठ गयी। सिलाई उसकी एक ओट थी। उसकी आड़ मानो उसका एक आसरा था।

कमरे में आकर महेन्द्र बोला—"यहाँ, ज़रूर तुम्हें बड़ी असुविधा हो रही है, बिनोद!"

अपनी सिलाई में लगी-लगी बोली—"बिल्कुल नहीं।"

महेन्द्र बोला—"दो ही तीन दिनों में मैं सारा सामान ले आऊँगा। कुछ दिन तुम्हें थोड़ी तकलीफ़ होगी।"

बिनोदिनी बोली—"नहीं, वह न होगा—तुम अब एक भी सामान और न लाओ—जो है, वही मेरी ज़रूरत से कहीं ज़्यादा है।"

महेन्द्र ने कहा—"मैं अभागा भी क्या उस 'ज़रूरत से कहीं ज़्यादा' में शमिल हूँ?"

बिनोदिनी—"अपने को इतना नहीं लगाना चाहिए, कुछ विनय रहनी चाहिए।"

दीये की जोत में सूने कमरे में सिर झुकाए बिनोदिनी की उस आत्मतल्लीन मूर्ति को देखकर महेन्द्र के मन में फिर उसी मोह का संचार हुआ।

घर में होता तो दौड़कर बिनोदिनी के पैरों में गिर पड़ता—मगर यह घर तो था नहीं, इसलिए वैसा न कर सका। आज बिनोदिनी बड़ी बेचारी थी, बिल्कुल महेन्द्र की मुट्ठी में—आज अपने को संयत न रखे तो बड़ी कायरता होगी।

बिनोदिनी ने कहा—"अपने किताब-कपड़े यहाँ क्यों ले आए?"

महेन्द्र ने कहा—"उन्हें मैं अपने लिए ज़रूरी सामान मानता हूँ—वे कहीं ज़्यादा वाले वर्ग में नहीं हैं...।"

बिनोदिनी—"मालूम है, मगर यहाँ क्यों?"

महेन्द्र—"ठीक है, आवश्यक चीज़ें यहाँ नहीं सोहतीं—बिनोद, इन किताबों-विताबों को उठाकर रास्ते पर फेंक देना, मैं चूँ भी न करूँगा—केवल उनके साथ मुझे भी मत उठा फेंकना।"

इतना कहकर महेन्द्र थोड़ा खिसक आया और कपड़ों में बँधी किताबों की गाँठ को बिनोदिनी के पैरों के पास रख दिया।

उसी गम्भीर भाव से सिलाई करती हुई बिनोदिनी बोली—"लाला जी, तुम यहाँ नहीं रहोगे।"

अपनी उठती हुई इच्छा पर चोट खाकर महेन्द्र व्याकुल हो उठा। गद्गद स्वर में बोला—"तुम मुझे दूर क्यों रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सब-कुछ छोड़ने का क्या यही पुरस्कार है?"

बिनोदिनी—"अपने लिए मैं तुम्हें सब-कुछ न छोड़ने दूँगी।"

महेन्द्र कह उठा—"अब वह तुम्हारे हाथ की बात नहीं—सारी दुनिया मेरे चारों तरफ़ से खिसक पड़ी है—बस, एक तुम हो—तुम, बिनोद..."

कहते-कहते विह्वल होकर महेन्द्र लौट पड़ा और बिनोदिनी के पैरों को पकड़कर उन्हें बार-बार चूमने लगा।

पाँव छुड़ाकर बिनोदिनी उठ खड़ी हुई। बोली—"याद नहीं, तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी?"

सारी शक्ति लगाकर महेन्द्र ने अपने को ज़ब्त किया। कहा—"याद है मैंने शपथ ली थी कि तुम जो चाहोगी वही होगा, मैं कभी कोई एतराज़ न करूँगा। उस शपथ को मैं रखूँगा। बताओ, मुझे क्या करना है?"

बिनोदिनी—"तुम अपने घर पर रहोगे।"

महेन्द्र—"एक मैं ही क्या तुम्हारी अनिच्छा की वस्तु हूँ, बिनोद! अगर यही बात है तो तुम मुझे खींच क्यों लायीं? जो तुम्हारे भोग की चीज़ न थी, उसके शिकार की क्या ज़रूरत पड़ी थी? सच-सच बताओ, मैंने स्वेच्छा से तुम्हें पकड़ लिया या तुमने जानकर मुझे पकड़ा? मुझसे तुम इस तरह खिलवाड़ करोगी और यह भी मुझे सहना पड़ेगा? फिर भी अपनी शपथ मैं रखूँगा, जिस घर को मैं लात मारकर आया, वहीं जाकर रहूँगा।"

बिनोदिनी ज़मीन पर बैठी फिर से सिलाई में जुट गयी।

कुछ देर तक उसके मुँह की ओर एकटक देखकर महेन्द्र बोल उठा—"बेरहम! निर्दयी हो तुम, बिनोद! मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया।"

बिनोदिनी से सिलाई में कोई गलती हो गयी। रोशनी के पास बड़ी मेहनत से वह धागे को खोजने लगी। महेन्द्र के जी में आ रहा था कि बिनोदिनी के पत्थर जैसे दिल को अपनी मुट्ठी में लेकर पीस डाले। उसकी इस मौन निर्दयता और अडिग उपेक्षा को धक्का देकर बाहु-बल से उसे पराजित करने को जी चाह रहा था।

महेन्द्र बाहर निकला और फिर-फिर लौट आया। बोला—"मैं न रहूँगा तो यहाँ तुम्हारी हिफ़ाज़त कौन करेगा?"

बिनोदिनी—"उसकी तो तुम फ़िक्र ही न करो। बुआ ने उस छमिया नौकरानी को जवाब दे दिया है। आज से वह यहीं रहेगी। अन्दर से घर बन्द करके हम दोनों मज़े में यहाँ रह लेंगी।"

भीतर-भीतर उस पर जितना ही गुस्सा आने लगा, बिनोदिनी के लिए उसका उतना ही ज़बर्दस्त खिंचाव होने लगा। उस टस से मस न होने वाली मूरत को वज्र की ताकत से छाती से चिपकाकर चूर-चूर कर देने की इच्छा होने लगी। अपनी उस प्रबल इच्छा के हाथों से छुटकारा पाने के लिए महेन्द्र दौड़कर कमरे से बाहर चला गया।

सड़क पर आ कर बेमतलब घूमते हुए महेन्द्र प्रतिज्ञा करने लगा, उपेक्षा के बदले में वह बिनोदिनी की उपेक्ष ही करेगा। संसार में महेन्द्र के सिवा अब बिनोदिनी का और कोई सहारा नहीं, ऐसी हालत में भी इस निडरता और अडिगता से उसे ठुकराना—किसी मर्द के नसीब में ऐसा भी अपमान कभी हुआ है। महेन्द्र का गर्व चूर-चूर होकर भी मटियामेट न हुआ—पीड़ित और दलित होता रहा। वह सोचने लगा—'ऐसा नाचीज़ हूँ मैं! मेरे लिए ऐसी भावना उसके मन में कैसे आई? मेरे सिवा इस समय उसका और है कौन?'

सोचते-सोचते अचानक याद आ गया—'बिहारी'। सहसा उसके कलेजे का रक्त-प्रवाह थम गया। बिहारी को ही उसने अपना भरोसा माना है—मैं तो उपलक्ष्य-मात्र हूँ, उसकी सीढ़ी हूँ, पैर रखने की, कदम-कदम पर ठोकर मारने की। इसी साहस पर मेरी

ऐसी अवज्ञा कर रही है वह।

महेन्द्र को शंका हुई कि बिनोदिनी से बिहारी की चिट्ठी-पत्री चलती होगी और इसे कोई भरोसा मिला होगा।

यह सोचते ही वह उसी दम बिहारी के घर की ओर चल पड़ा। जब उसके घर पहुँचा, तो रात नहीं के बराबर बाकी रह गयी थी। बड़ी मुश्किल से दरवाज़ा पीटते-पीटते बैरे ने दरवाज़ा खोलकर बताया—"बाबूजी घर पर नहीं हैं।"

महेन्द्र चौंक उठा। सोचा, 'मैं इधर नासमझ की तरह मारा-मारा फिर रहा हूँ और इस मौक़े का फ़ायदा उठाकर बिहारी बिनोदिनी के पास गया है। इसीलिए उसने इस बेरहमी से मेरा अपमान किया और मैं भी मारकर भगाए गए गदहे की तरह भाग आया।'

महेन्द्र ने उस जाने-पहचाने पुराने बैरे से पूछा—"भज्जो, मालिक तुम्हारे घर से किस वक्त निकले हैं?"

भज्जो ने कहा—"जी, चार-पाँच दिन हो गए। पछाँह की ओर कहीं घूमने गए हैं।"

महेन्द्र की मानो जान में जान आई। जी में आया, 'अब आराम से थोड़ी देर सो लूँ। तमाम रात भटकते रहने की अब हिम्मत नहीं है।'

वह ऊपर गया और बिहारी के कमरे में सोफ़े पर सो गया।

जिस रात महेन्द्र ने बिहारी के घर जाकर ऊधम मचाया, उसके दूसरे ही दिन बिना कुछ तय किए बिहारी न जाने कहाँ चला गया। उसने सोचा, 'यहाँ रहने से जाने कब अपने दोस्त से ऐसा घिनौना संघर्ष हो जाए कि जन्म-भर पछताना पड़े।'

दूसरे दिन महेन्द्र जगा तो ग्यारह बज चुके थे। उठते ही उसकी निगाह सामने की तिपाई पर पड़ी। देखा, बिहारी का एक पत्र पड़ा था। ठिकाने के हरफ बिनोदिनी के थे। लिफाफा पत्थर के पेपर-वेट से दबा था। महेन्द्र ने झपटकर उसे उठा लिया। लिफाफा खोला नहीं गया था। प्रवासी बिहारी के इन्तज़ार में बन्द पड़ा था। काँपते हाथों से महेन्द्र ने उसे फाड़ डाला और पढ़ने लगा। यही चिट्ठी बिनोदिनी ने अपने गाँव से बिहारी को भेजी थी, जिसका उसे कोई जवाब नहीं मिला था।

चिट्ठी का एक-एक अक्षर महेन्द्र को काटने लगा। छुटपन से सदा ही बिहारी महेन्द्र की ही ओट में पड़ा था। प्रेम-स्नेह के नाते महेन्द्र-देवता के गले की उतरी माला ही उसे नसीब हुआ करती। आज महेन्द्र स्वयं प्रार्थी तथा बिहारी विमुख था, फिर भी बिनोदिनी ने महेन्द्र को ठुकराकर बिहारी को अपनाया। बिनोदिनी की चिट्ठियाँ महेन्द्र को भी दो-चार मिली थीं, मगर इसके मुकाबले वे निरी नकली हैं, नासमझ को फुसलाने का बहाना!

अपना नया ठिकाना बताने के लिए महेन्द्र को गाँव के डाकखाने में भेजने की व्याकुलता महेन्द्र को याद आई और अब उसका कारण उसकी समझ में आया। बिनोदिनी बिहारी के पत्र का बेसब्री से इन्तज़ार कर रही है।

जैसा कि पहले किया करता था, मालिक की गैरहाज़िरी में भज्जो ने महेन्द्र को बाज़ार से लाकर चाय-नाश्ता दिया। नहाना महेन्द्र भूल गया। तभी जैसे रेत पर राही जल्दी-जल्दी कदम उठाकर चलता है, उसी तरह बिनोदिनी की जलाने वाली चिट्ठी पर वह तेज़ी से नज़र दौड़ाने लगा। वह प्रतिज्ञा करने लगा कि बिनोदिनी से अब हर्गिज़ भेंट न

करूँगा। फिर मन में आया, 'और दो-एक दिन में जब उसे बिहारी का जवाब न मिलेगा तो वह बिहारी के यहाँ आएगी और तब उसे सारा हाल मालूम हो जाएगा।' यह सम्भावना महेन्द्र के लिए असह्य हो गयी।

आखिर उस पत्र को अपनी जेब में डालकर वह पटलडाँगा पहुँचा। महेन्द्र की यह गत देखकर बिनोदिनी को दया आ गयी। वह समझ गयी—हो न हो तमाम रात वह रास्ते के ही चक्कर काटता रह गया है। पूछा—"रात घर नहीं गए?"

महेन्द्र ने कहा—"नहीं।"

बिनोदिनी ने परेशान होकर पूछा—"अभी तक खाया-पीया भी नहीं क्या?" कहकर सेवा-परायणा बिनोदिनी ने उसके खाने का इन्तज़ाम करना चाहा।

महेन्द्र बोला—"रहने दो, मैं खा चुका हूँ।"

बिनोदिनी—"कहाँ खाया?"

महेन्द्र—"बिहारी के यहाँ।"

पल भर के लिए बिनोदिनी का चेहरा पीला पड़ गया। ज़रा देर चुप रहकर उसने अपने को सँभाला और पूछा—"बिहारी बाबू कुशल से तो हैं न?"

महेन्द्र बोला—"कुशल से ही है। वह तो पछाँह चला गया।" महेन्द्र ने कुछ इस लहज़े से कहा मानो बिहारी आज ही गया है।

बिनोदिनी का चेहरा फिर एक बार पीला पड़ गया। फिर अपने को सँभालकर बोली—"ऐसा डाँवाडोल आदमी तो मैंने नहीं देखा। उन्हें हम लोगों का सारा हाल मालूम पड़ गया है? खूब नाराज़ हो गए हैं क्या?"

महेन्द्र—"नाराज़ न हुआ होता तो इस शिद्दत की गर्मी में भी कोई भला आदमी पछाँह घूमने जाता है!"

बिनोदिनी—"मेरे बारे में कुछ कहा?"

महेन्द्र—"कहने को क्या है। यह उसकी चिट्ठी लो!"

चिट्ठी उसके हाथ में देकर महेन्द्र तीखी नज़र से उसके मुँह के भाव पर गौर करने लगा।

बिनोदिनी ने झट से चिट्ठी लेकर देखी, खुली थी वह। लिफ़ाफ़े पर उसी के हरफ में बिहारी का नाम लिखा था। अन्दर से चिट्ठी निकाली। वह उसी की लिखी वही चिट्ठी थी। उलटकर देखा, बिहारी का जवाब तो कहीं न मिला।

थोड़ी देर चुप रहकर बिनोदिनी ने पूछा—"यह चिट्ठी तुमने पढ़ी है?"

बिनोदिनी के चेहरे के भाव से महेन्द्र को डर लगा। वह झूठ बोल गया—"नहीं।"

बिनोदिनी ने चिट्ठी फाड़ डाली। उसके टुकड़े-टुकड़े किए और खिड़की से बाहर फेंक दिए।

महेन्द्र बोला—"मैं घर जा रहा हूँ।"

बिनोदिनी ने कोई जवाब न दिया।

महेन्द्र—"तुमने जैसा चाहा है, मैं वैसा ही करूँगा। सात दिन मैं वहीं रहूँगा। कॉलेज

आते समय रोज़ नौकरानी की मार्फ़त यहाँ का सारा प्रबन्ध कर जाया करूँगा। तुमसे भेंट करके तुम्हें आजिज़ न करूँगा।"

बिनोदिनी महेन्द्र की कोई बात सुन भी पाई या नहीं, कौन जाने, मगर उसने कोई जवाब न दिया। खुली खिड़की से बाहर अँधेरे आसमान को ताकती रही।

अपनी चीज़ें उठाकर महेन्द्र वहाँ से निकल पड़ा।

सूने कमरे में बिनोदिनी बड़ी देर तक काठ की मारी-सी बैठी रही और अन्त में मानो जी-जान से अपने को सजग करने के लिए अपनी चोली फाड़ कर खुद अपने ऊपर बेरहमी से चोट करने लगी।

आवाज़ सुन कर नौकरानी दौड़ी आई—"दीदी जी, क्या कर रही हैं?"

"तू चली जा यहाँ से"—डपटकर बिनोदिनी ने छमिया को कमरे से बाहर निकाल दिया। उसके बाद ज़ोरों से किवाड़ बन्द करके दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर ज़मीन पर लोट गयी। अपने को इस तरह पीटने के बाद थक-हार कर बिनोदिनी रात-भर खिड़की के पास नीचे पड़ी रही।

सुबह जैसे ही सूरज की किरणें कमरे में आयीं बिनोदिनी को अचानक ऐसा लगा, बिहारी गया नहीं होगा। उसे चकमा देने के लिए महेन्द्र ने यों ही झूठ कह दिया होगा। उसने छमिया को बुलाकर कहा—"छम्मी, तू फौरन ज़रा बिहारी भाई साहब के यहाँ जा —उन लोगों का हाल पूछ आ।"

छमिया कोई घंटे-भर बाद लौटकर बोली—"उनके घर के सारे खिड़की-दरवाज़े बन्द हैं। दरवाज़ा पीटने पर अन्दर से बैरा निकला। बोला—'वे घर पर नहीं हैं। वे घूमने के लिए पछाँह गए हैं।"

बिनोदिनी के सन्देह का कोई कारण ही न रहा।

41

'महेन्द्र रात में ही उठकर चला गया,' यह सुनकर राजलक्ष्मी बहू पर बहुत नाराज़ हुई। उन्होंने समझा बहू की लानत-मलामत से ही वह चला गया। उन्होंने आशा से पूछा —"महेन्द्र रात चला क्यों गया?"

आशा ने सिर झुकाकर कहा—"मालूम नहीं, माँ!"

राजलक्ष्मी को लगा, यह भी रूठने की बात है। आज़िजी से कहा—"तुम्हें नहीं मालूम तो किसे मालूम होगा? कुछ कहा था उससे?"

आशा ने सिर्फ़ 'नहीं' कहा।

राजलक्ष्मी को यकीन न आया। ऐसा भी हो सकता है भला। पूछा—"कल वह गया कब?"

सकुचाकर आशा बोली—"नहीं जानती।"

राजलक्ष्मी ने ज़ेर देकर यह भी कह दिया कि आशा के आचरण और स्वभाव की वजह से महेन्द्र घर से निकल गया। सिर झुकाकर यह फटकार झेलती हुई आशा अपने कमरे में जाकर रोने लगी। अपने मन में सोचने लगी, 'पता नहीं क्यों कभी मेरे स्वामी ने मुझे प्यार किया था और यह भी नहीं जानती कि उसका वह प्यार मैं फिर कैसे पा सकूँगी।'जो प्यार करता है, उसे कैसे खुश करना चाहिए, हृदय आप ही यह बता देता है, लेकिन जो प्यार नहीं करता, उसके हृदय को कैसे पाया जा सकता है, आशा यह क्या जाने। जो आदमी किसी और को प्यार करता है, उससे प्यार पाने जैसी शर्मनाक कोशिश वह कैसे करे?'

शाम को परिवार के ज्योतिषीजी और उनकी बहन आई। बेटे की ग्रहशान्ति के लिए राजलक्ष्मी ने उन्हें बुलवाया था। बहू की जन्म-कुंडली और हाथ देखने का राजलक्ष्मी ने उनसे अनुरोध किया, और इसके लिए आशा को वहाँ बुलवाया गया। दूसरों के आगे अपनी बदनसीबी की चर्चा के संकोच से कुंठित होकर आशा किस तरह से अपना हाथ निकालकर बैठी कि इतने में अपने कमरे के पास वाले अँधेरे बरामदे में राजलक्ष्मी को जूतों की हल्की-सी आहट सुनाई दी—कोई जैसे दबे पाँव जा रहा हो। राजलक्ष्मी ने पूछा —"कौन?"

पहले तो कोई जवाब न मिला। फिर आवाज़ दी—"कौन है?" इस पर महेन्द्र चुपचाप कमरे में आया।

आशा खुश तो क्या होती, महेन्द्र की लज्जा देखकर खुद उसका मन उद्विग्न हो

गया। अब महेन्द्र को अपने घर में ही चोर की तरह आना पड़ा है। ज्योतिषीजी और उनकी बहन के रहने से उसे और भी शर्म आई। दुनिया-भर के सामने अपने स्वामी के लिए लाज ही आशा के लिए सबसे बड़ा दुःख था।

राजलक्ष्मी ने धीमे-से कहा—"बहू, पार्वती से कह दो, महेन्द्र का खाना लगा दे।"

आशा बोली—"न, मैं ही ले आती हूँ।"

घर की दास-दासियों से भी वह महेन्द्र को ढँके रखना चाहती।

इधर ज्योतिषीजी और उनकी बहन को देखकर महेन्द्र मन-ही-मन बड़ा नाराज़ हुआ। उसकी माँ और स्त्री जन्तर-मन्तर से उसे वश में लाने के लिए इन अशिक्षित मूर्खों के साथ बेहयाई से साज़िश कर रही हैं, यह महेन्द्र को सहन नहीं हुआ। इस पर जब ज्योतिषीजी की बहन ने, ज़रूरत से ज़्यादा शहद-सने स्वर में पूछा—'कुशल तो है, बेटे' तो उससे वहाँ बैठा न गया। उनके कुशल-प्रश्न का उत्तर दिए बिना ही बोला—"माँ, मैं ज़रा ऊपर चलता हूँ।"

माँ ने समझ, महेन्द्र शयद एकांत में बहू से बात करना चाहता है। बेहद खुश होकर खुद रसोई में गयीं। जाकर आशा से कहा—"जाओ, जल्दी से ऊपर जाओ, महेन्द्र को शायद कुछ काम है।"

आशा धड़कते हृदय और सकुचाते कदमों से ऊपर गयी। सास के कहने से उसने यह समझा कि महेन्द्र ने शायद उसे बुलाया है। लेकिन अचानक ही उससे कमरे में जाते न बना, वह पहले अँधेरे दरवाज़े की आड़ से महेन्द्र को देखने लगी।

महेन्द्र बड़े ही सूने मन से फ़र्श के बिस्तर पर तकिये के सहारे लेटा-लेटा छत के शहतीर गिन रहा था। वही महेन्द्र तो था। सारा कुछ वही मगर कितना परिवर्तन!

आशा अँधेरे में खड़ी-खड़ी जितना ही महेन्द्र को देखने लगी, उतना ही उसके मन में होने लगा कि महेन्द्र अभी-अभी उसी बिनोदिनी के यहाँ से आया है, उसके अंगों में उसी बिनोदिनी का स्पर्श है, आँखों में उसी की मूरत, कानों में उसी बिनोदिनी की आवाज़, मन में उसी बिनोदिनी की वासना घुली-मिली है। आशा इस महेन्द्र को अपनी पवित्र भक्ति कैसे दे, कैसे एक मन से कहे कि आओ, मेरे हृदय में विराजो।

बिनोदिनी का महेन्द्र मानो आशा के लिए पराया पुरुष हो। इतने में छत के लोहे-लक्कड़ से महेन्द्र की अनमनी नज़र सामने की दीवार की तरफ़ उतरी। उसकी नज़र का अनुसरण करते हुए आशा ने देखा, दीवार पर महेन्द्र की तस्वीर के पास ही आशा का एक फोटो लटक रहा है। उसके जी में आया, आँचल से उसे ढँक दे। यह चित्र क्यों आज तक उसकी नज़र में न आया, क्यों अब तक उसने उतार नहीं फेंका, यही सोचकर वह अपने को धिक्कारने लगी। उसे लगा, महेन्द्र मन-ही-मन हँस रहा है। अन्त में आजिज़ आए महेन्द्र की नज़र दीवार से नीचे उतर आई। अपनी मूर्खता मिटाने के लिए आशा आजकल साँझ को काम-काज और सास की सेवा से फुरसत पाते ही काफ़ी रात तक लिखा-पढ़ा करती थी। उसके पढ़ने-लिखने की कॉपी-किताबें कमरे में एक तरफ़ रखी हुई थीं। महेन्द्र ने उनमें से एक कॉपी उठा ली और देखने लगा। आशा की ख्वाहिश होने लगी कि चीखकर उसे छीन लाए। अपने कच्चे अक्षरों पर महेन्द्र की व्यंग्य दृष्टि की कल्पना करके वह एक पल-भर भी और न खड़ी रह सकी। तेज़ी से नीचे उतर गयी—आहट छिपाने की

भी कोशिश नहीं की।

महेन्द्र का खाना तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थीं कि महेन्द्र बहू से हँसी दिल्लगी कर रहा होगा, लिहाज़ा भोजन ले जाकर बीच ही में रुकावट डालने को जी नहीं चाह रहा था। आशा को उतरते देख खाने की जगह पर थाली रखकर उन्होंने महेन्द्र को खबर दी। महेन्द्र खाने के लिए नीचे जाने को उठा ही था कि आशा दौड़कर कमरे में गयी और दीवार से अपनी तस्वीर उतारकर छत की दीवार के बाहर फेंक दी और अपनी कॉपी-किताबें उठा ले गयी।

खा-पीकर महेन्द्र कमरे में आ बैठा। राजलक्ष्मी ने लेकिन बहू को आस-पास कहीं नहीं पाया। अन्त में रसोई में जाकर देखा, आशा उनके लिए दूध उबाल रही थी। कोई ज़रूरत न थी इसकी, क्योंकि जो नौकरानी रोज़ दूध उबाला करती थी, वह पास ही थी और आशा के इस निरर्थक उत्साह पर एतराज़ कर रही थी। पानी डालकर जितना दूध वह रोज़ गायब करती थी, आज वह हाथ से जाता रहा, इससे वह अकुला रही थी।

राजलक्ष्मी बोलीं—"अरे, यहाँ क्यों बहू, ऊपर जाओ!"

आशा ने ऊपर जाकर सास के कमरे में पनाह ली। बहू के इस व्यवहार से राजलक्ष्मी नाराज़ हुई। सोचा, 'उस मायाविनी के फन्दे से निकलकर महेन्द्र घड़ी-भर के लिए घर भी आया, तो नाराज़ होकर, रूठकर बहू फिर उसे घर से निकालने को तैयार है! और बिनोदिनी के फन्दे में जो महेन्द्र पड़ा वह भी तो आशा के ही चलते। मर्द तो गलत राह पर चलने के लिए पाँव बढ़ाए ही रहता है। औरत का कर्तव्य है, छल-बल कौशल से उसे सही रास्ते पर रखे।'

राजलक्ष्मी ने फटकार बताई—"यह तुम्हारा क्या रवैया है, बहू! खुश-किस्मती से स्वामी कहीं घर आ गए तो मुँह लटकाए तुम इस-उस कोने में क्यों छिपी फिरती हो?"

खुद को कसूरवार समझ कर, मन पर अंकुश रखते हुए आशा ऊपर गयी और मन को आगा-पीछा करने का ज़रा भी मौका न देकर वह एक साँस में कमरे के अन्दर चली गयी। दस बज चुके थे। उस समय महेन्द्र बिस्तर के पास खड़ा बेमतलब बड़ी देर से चिन्तित-सा मच्छरदानी झाड़ रहा था। उसके मन में बिनोदिनी के बारे में एक तीखा द्वन्द्व छिड़ा हुआ था। वह सोच रहा था कि बिनोदिनी ने आखिर मुझे ऐसा खरीदा हुआ गुलाम समझ रखा है कि मुझे आशा के पास भेजते हुए उसके जी में ज़रा भी आशंका न हुई। कहीं मैं आज से आशा के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करूँ तो वह किसके सहारे इस दुनिया में खड़ी होगी? उसने सोचा वह बिनोदिनी से अपनी उपेक्षा का बदला ज़रूर लेगा।

आशा ने जैसे ही कमरे में कदम रखा, महेन्द्र का अनमना होकर मच्छरदानी झाड़ना बन्द हो गया। एक समस्या हुई कि आशा से वह बोल-चाल कैसे शुरू करे।

बनावटी हँसी हँसकर अचानक जो बात उसकी ज़बान पर आ गयी, महेन्द्र वही बोला। बोला, "मैं देख रहा हूँ, तुमने भी मेरी तरह पढ़ने में जी लगाया है। यहाँ कॉपी-किताबें पड़ी देखी थीं, कहाँ गयीं?"

बात बेसिर-पैर की लगी। इतना ही नहीं, उसने आशा पर चोट की। गँवार आशा शिक्षित होने की चेष्टा कर रही है, वह बड़ी ही गोपन बात थी उसकी। और उसका संकल्प अगर उस प्रयास को किसी से छिपा कर रखने का विषय था तो खासतौर पर महेन्द्र से।

और उसी महेन्द्र ने जब बोल-चाल के आरम्भ में ही हँसकर वही बात चलाई, तो बेरहम बातों की मार खाए कोमल बच्चे के देह-सा उसका मन संकुचित और पीड़ित होने लगा। वह कुछ बोली नहीं, मुँह फेरकर तिपाई का किनारा पकड़े खड़ी रही।

मुँह से बात निकलते ही महेन्द्र ने समझ लिया था कि बात संगत और समय के अनुकूल नहीं हुई। लेकिन ऐसी स्थिति में उपयुक्त बात क्या हो सकती है, वह सोच ही न सका। बीच में एक इतना बड़ा विद्रोह हो गया, उसके बाद पहले की तरह कोई सहज बात जँचती नहीं। महेन्द्र ने सोचा, 'मसहरी के अन्दर दाखिल हो जाऊँ, तो वहाँ के एकान्त से बात करना शयद सहज हो।' यह सोचकर अपनी धोती के छोर से वह फिर मसहरी झाड़ने लगा। नया अभिनेता रंगमंच पर जाने से पहले जैसे अपना पार्ट मन-ही-मन दुहराया करता है, महेन्द्र वैसे ही मसहरी के सामने खड़ा-खड़ा अपने वक्तव्य और कर्तव्य की सोचता रहा। इतने में हल्की-सी आहट हुई। महेन्द्र ने मुड़कर देखा, आशा कमरे में नहीं थी।

42

अगले दिन महेन्द्र ने माँ से कहा—"माँ, पढ़ने-लिखने के लिए मुझे कोई एकांत कमरा चाहिए। मैं चाची वाले कमरे में रहूँगा।"

माँ खुश हो गयी, "तब तो महेन्द्र अब घर में ही रहा करेगा। लगता है, बहू से सुलह हो गयी। भला अपनी ऐसी अच्छी बहू की सदा उपेक्ष कर सकता है। ऐसी लक्ष्मी को छोड़कर उस मायाविनी डायन के पीछे वह कब तक भूला रह सकता है?"

माँ ने झट कहा—"हर्ज़ क्या है, रहो!"

उन्होंने तुरन्त कुंजी निकाली, ताला खोला और झड़-पोंछ की धूम मचा दी—"बहू, अरी ओ बहू, कहाँ गयी?" बड़ी कठिनाई से घर के एक कोने में दुबकी हुई बहू को बरामद किया गया—"एक धुली चादर ले आओ! इस कमरे में मेज़ नहीं है, लगानी पड़ेगी। इस रोशनी से काम नहीं चलेगा, ऊपर से अपना वाला लैम्प भिजवा दो।" इस तरह दोनों ने मिलकर उस घर के राजाधिराज के लिए अन्नपूर्णा के कमरे में राज-सिंहासन तैयार कर दिया। महेन्द्र ने सेवा में लगी हुई माँ-बहू की तरफ़ ताका तक नहीं, वहीं किताब लिये ज़रा भी समय बर्बाद न करके गम्भीर होकर पढ़ने बैठ गया।

शाम को भोजन के बाद वह फिर बैठा। सोना ऊपर के कमरे में होगा या वहीं, कोई न समझ सका। बड़े जतन से राजलक्ष्मी ने आशा को मूरत की तरह सजाकर कहा —"बहू, महेन्द्र से पूछ तो आओ, उसका बिस्तर क्या ऊपर लगेगा?"

इस प्रस्ताव पर आशा का पाँव हर्गिज़ न हिला, वह सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रही। नाराज़ होकर राजलक्ष्मी खरी-खोटी सुनाने लगीं। बड़े कष्ट से आशा दरवाज़े तक गयी, पर उससे आगे न बढ़ सकी। दूर से बहू का वह रवैया देखकर राजलक्ष्मी नाराज़ होकर इशारे से निर्देश करने लगीं। मरी-सी होकर आशा कमरे में गयी। आहट पाकर किताबों से सिर न उठाकर ही महेन्द्र ने कहा—"मुझे अभी देर है—फिर तड़के से ही उठकर पढ़ना है —मैं यहीं सोऊँगा।"

शर्म की हद हो गयी! आशा महेन्द्र को ऊपर सुलाने के लिए थोड़े ही गिड़गिड़ाने आई थी।

वह निकली। निकलते ही खीझकर राजलक्ष्मी ने पूछा—"क्यों, क्या हुआ?"

आशा बोली—"अभी पढ़ रहे हैं। वे यहीं सोएँगे।"

कहकर वह अपने अपमानित शयन-कक्ष में चली गयी। कहीं उसे चैन नहीं—मानो सब कुछ दोपहर की धरती-सा तप उठा है।

कुछ रात बीती, तो उसके कमरे के दरवाज़े पर थपकी पड़ी—"बहू, बहू, दरवाज़ा खोलो!"

आशा ने झटपट दरवाज़ा खोल दिया। दमे की मरीज़ राजलक्ष्मी सीढ़ियाँ चढ़कर तकलीफ़ से साँस ले रही थीं। कमरे में जाकर वह बिस्तर पर बैठ गयीं और वाक्-शक्ति लौटते ही बोलीं—"तुम्हारी अक्ल की बलिहारी! ऊपर कमरा बन्द किए पड़ी हो! यह क्या राग-रोष का समय है! इस मुसीबत के बाद भी तुम्हारे भेजे में बुद्धि नहीं आई! जाओ, नीचे जाओ!"

आशा ने धीमे-से कहा—"उन्होंने कहा है, एकांत में रहेंगे।"

राजलक्ष्मी—"कह दिया और हो गया। गुस्से में जाने क्या कह गया, उसी पर तुम तुनक बैठोगी। ऐसी तुनक-मिज़ाज होने से काम नहीं चलेगा। जाओ, जल्दी जाओ।"

दुःख के दिनों में सास को बहू से लाज नहीं। जो भी तरकीब उन्हें आती है, उसी से महेन्द्र को किसी तरह बाँधना पड़ेगा। आवेग से बातें करते हुए राजलक्ष्मी का फिर से दम फूलने लगा। अपने को थोड़ा-बहुत सँभालकर उठीं। आशा भी आजिज़ न होकर पकड़कर उन्हें नीचे लिवा ले गयी। उनके सोने के कमरे में आशा ने उन्हें बिठा दिया और पीठ की तरफ़ तकिये लगाने लगी। राजलक्ष्मी बोलीं—"रहने दो बहू, किसी को भेज दो। तुम जाओ!"

अबकी आशा ज़रा भी न हिचकी। सास के कमरे से निकलकर सीधी महेन्द्र के कमरे में गयी। महेन्द्र के सामने मेज़ पर किताब खुली पड़ी थी—वह मेज़ पर दोनों पैर रखकर कुर्सी पर माथा टेके ध्यान से न जाने क्या सोच रहा था। उसके पीछे पैरों की आहट हुई। चौंककर उसने पीछे की ओर देखा। मानो किसी के ध्यान में लीन था—एकाएक धोखा हुआ कि वह आ गयी। आशा को देखकर महेन्द्र सँभला। खुली किताब को उसने अपनी गोद में खींच लिया।

मन-ही-मन महेन्द्र को अचरज हुआ। इन दिनों ऐसे बेखटके तो आशा उसके सामने नहीं आती—अचानक भेंट हो जाती है तो वह वहाँ से चल देती है। आज इतनी रात को वह इस सहज भाव से उसके कमरे में आ गयी, ताज्जुब है! किताब से आँखें हटाए बिना ही महेन्द्र ने समझा, आज आशा के लौट जाने का लक्षण नहीं। वह महेन्द्र के सामने आकर स्थिर भाव से खड़ी हुई। इस पर महेन्द्र से मान करते न बना। सिर उठाकर उसने देखा। आशा ने साफ़ शब्दों में कहा—"माँ का दम उखड़ आया है। चलकर एक बार देख लो तो अच्छा हो!"

महेन्द्र—"वे हैं कहाँ?"

आशा—"अपने सोने के कमरे में हैं। नींद नहीं आ रही है।"

महेन्द्र—"अच्छा, चलो, उन्हें देख आऊँ।"

बहुत दिनों के बाद आशा से इतनी-सी बात करके महेन्द्र जैसे हल्का हुआ। किसी दुर्भेध किले की दीवार-सी नीरवता मानो उन दोनों के बीच स्याह छाया डाले खड़ी थी—महेन्द्र की ओर से उसे तोड़ने का कोई हथियार न था, ऐसे समय आशा ने अपने हाथों किले में एक छोटा-सा दरवाज़ा खोल दिया। आशा सास के कमरे के दरवाज़े पर खड़ी रही। महेन्द्र गया। उसे असमय में अपने कमरे में आया देखकर राजलक्ष्मी को डर लगा।

सोचा, 'कहीं फिर दोनों में कहा-सुनी हो गयी और वह चल देने की कहने आया हो।' पूछा —"अब तक सोया नहीं महेन्द्र?"

महेन्द्र ने कहा—"क्या दमा उखड़ आया है, माँ?"

ज़माने के बाद यह सवाल सुनकर उनके मन में मान हो आया। समझीं, 'जब बहू ने जाकर बताया, तो यह माँ का हाल पूछने आया है।' इस आवेश से उनका कलेजा और भी काँपने लगा। किसी तरह बोलीं—"तू सो जाकर, यह कुछ नहीं।"

महेन्द्र—"नहीं, नहीं एक बार जाँच देखना अच्छा है। यह बीमारी टालने की नहीं।"

महेन्द्र को पता था, माँ को हृदय की बीमारी है। इस वजह से तथा उनके चेहरे का लक्षण देखकर उसे घबराहट हुई।

माँ ने कहा—"जाँचने की ज़रूरत नहीं। मेरी यह बीमारी नहीं छूटेगी।"

महेन्द्र ने कहा—"खैर, आज की रात के लिए सोने की दवा ला देता हूँ। सवेरे अच्छी तरह से देखा जाएगा।"

राजलक्ष्मी—"दवा ढेर खा चुकी, दवा से कुछ होता-जाता नहीं। बहुत रात हो गयी, तुम सो जाओ।"

महेन्द्र—"तुम्हें ज़रा चैन तो मिले।"

इस पर राजलक्ष्मी ने दरवाज़े पर खड़ी बहू को सम्बोधित करके कहा—"बहू, तुम रात में महेन्द्र को तंग करने के लिए यहाँ क्यों ले आईं!"

कहते-कहते उनकी साँस की तकलीफ़ और भी बढ़ गयी। तब आशा कमरे में आई। उसने कोमल किन्तु दृढ़ स्वर में महेन्द्र से कहा—"तुम सोओ जाकर। मैं माँ के पास रहूँगी।"

महेन्द्र ने आशा को अलग बुलाकर कहा—"मैंने एक दवा लाने भेजा है। दो खुराक दवा होगी। एक से अगर नींद न आए तो घंटे भर बाद दूसरी खुराक देना। रात में साँस और बढ़े तो मुझे खबर देना।"

कहकर महेन्द्र अपने कमरे में चला गया। आशा आज जिस रूप में उसके सामने प्रकट हुई, उसके लिए वह रूप नया था। इस आशा में संकोच नहीं, दीनता नहीं—यह आशा अपने अधिकार में खड़ी हुई थी। अपनी स्त्री की महेन्द्र ने उपेक्षा की थी, मगर अब उसी को घर की बहू के रूप में देख कर उसके मन में आदर जागा।

आशा ने जवाब न दिया। पीछे बैठकर पंखा झलने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा—"तुम सोओ जाकर, बहू।"

आशा धीमे-से बोली—"मुझे यहीं रहने को कह गए हैं।"

आशा समझती थी कि यह जानकर माँ खुश होंगी कि महेन्द्र उसे माँ की सेवा के लिए छोड़ गया है।

43

राजलक्ष्मी ने जब साफ़ समझ लिया कि आशा महेन्द्र के मन को बाँध नहीं पा रही है तो उनके जी में आया, कम-से-कम मेरी बीमारी के नाते ही महेन्द्र को यहाँ रहना पड़े तो भी अच्छा है। उन्हें डर लगा, कहीं वे सचमुच ठीक न हो जाएँ। इसलिए आशा से छिपाकर दवा फेंकने लगीं।

अनमना महेन्द्र खास कुछ खयाल नहीं करता था। लेकिन आशा यह देख रही थी कि राजलक्ष्मी की बीमारी दबने की बजाय कुछ बढ़ ही रही है। वह सोचती, 'महेन्द्र खूब सोच-विचारकर दवा नहीं दे रहा है—उसका मन इतना ही खराब हो गया है कि माँ की तकलीफ़ भी उसे सचेतन नहीं कर पाती।' उसकी इस दुर्गत पर आशा अपने मन में उसे धिक्कारे बिना न रह सकी। एक तरफ़ से बिगड़ने पर कोई क्या हर तरफ़ से बर्बाद हो जाता है। एक दिन शाम को बीमारी की तकलीफ में राजलक्ष्मी को बिहारी की याद आ गयी। जाने वह कब से नहीं आया। आशा से पूछा—"जानती हो बहू, बिहारी आजकल कहाँ है? उसका महेन्द्र से कुछ झगड़ा है, क्यों? यह उसने बड़ा बेजा किया, बहू! उस जैसा महेन्द्र का भला चाहने वाला और कोई दोस्त नहीं।"

कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू छलक आए। एक-एक करके आशा को बहुतेरी बातें याद आईं। अंधी और भोली आशा को समय पर चेताने के लिए जाने कितनी बार, कितनी कोशिश बिहारी ने की और उन्हीं कोशिशों के चलते वह आशा का अप्रिय हो उठा।

फिर बड़ी देर तक चुपचाप चिन्तित रहकर राजलक्ष्मी बोल उठीं—"बहू, बिहारी होता तो हमारे इस आड़े वक्त में बड़ा काम आता। वह हमें बचाता, बात यहाँ तक न बढ़ पाती।"

आशा चुपचाप सोचती रही। उसाँस लेकर राजलक्ष्मी ने कहा—"उसे अगर मेरी बीमारी का पता चल जाए तो वह हर्गिज़ नहीं रुक सकता।"

आशा समझ गयी, राजलक्ष्मी चाहती हैं कि बिहारी को यह खबर मिले। बिहारी के न होने से वे असहाय-सी हो गयी हैं।

कमरे की बत्ती गुल करके चाँदनी में महेन्द्र खिड़की के पास चुप खड़ा था। पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा था। घर में कोई आराम नहीं। जो नितांत अपने हैं, उनसे जब सहज नाता टूट जाता है तो उन्हें परायों की तरह आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता और फिर प्रियजन के समान सहज ही अपनाया भी नहीं जा सकता।

पीछे आहट मिली। महेन्द्र ने समझा, आशा आई है। मानो आहट उसे मिली ही नहीं, इस भाव से वह स्थिर रहा। आशा बहाना ताड़ गयी, फिर भी वह कमरे से बाहर नहीं गयी। पीछे खड़ी-खड़ी बोली—"एक बात है, वही कहकर मैं चली जाऊँगी।"

महेन्द्र ने पलटकर कहा—"जाना ही क्यों पड़ेगा—ज़रा देर बैठ ही जाओ।"

इस भलमनसाहत पर उसने ध्यान न दिया। स्थिर खड़ी-खड़ी बोली—"बिहारी भाई साहब को माँ की बीमारी की खबर देना लाज़िमी है।"

बिहारी का नाम सुनते ही महेन्द्र के गहरे ज़ख्म पर चोट लगी। अपने को सँभालकर वह बोला—"लाज़िमी क्यों है, मेरे इलाज का भरोसा नहीं हो रहा है, क्यों?"

आशा के मन में यह शिकायत भरी-सी थी कि महेन्द्र माँ के इलाज में उतना ध्यान नहीं दे रहा है, तो उसके मुँह से निकल पड़ा—"कहाँ, उनकी बीमारी तो ज़रा भी नहीं सुधरी, बल्कि दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है।"

इस मामूली बात में जो आँच थी, महेन्द्र अपने अहंकार से आहत हो विस्मित व्यंग्य के साथ बोला—"देखता हूँ, तुमसे डॉक्टरी सीखनी पड़ेगी।"

इस व्यंग्य से आशा को उसकी जमी हुई वेदना पर अप्रत्याशित चोट लगी। तिस पर कमरा अँधेरा था, जो सदा ही चुप रह जाने वाली आशा आज बेखटके तेज़ी के साथ बोल उठी—"डॉक्टरी न सही, माँ की सेवा सीख सकते हो।"

आशा से ऐसा जवाब पाकर महेन्द्र के अचरज की सीमा न रही। ऐसे तीखे वाक्य सुनने का वह आदी न था। वह कठोर हो उठा। बोला—"तुम्हारे बिहारी भाई साहब को यहाँ आने की मनाही क्यों की है—तुम तो जानती हो—शायद फिर याद आ गयी है!"

आशा तेज़ी से बाहर चली गयी। शाम की आँधी मानो उसे ढकेलकर ले गयी। शर्म अपने लिए न थी। जो आदमी सिर से पैर तक अपराध में डूबा हो, वह ज़बान पर ऐसे झूठे अपवाद भी ला सकता है! इतनी बड़ी बेहयाई को लाज के पहाड़ से भी नहीं ढँका जा सकता।

आशा के चले जाने के बाद ही महेन्द्र अपनी पूरी हार का अनुभव कर सका। महेन्द्र को मालूम भी न था कि आशा कभी भी किसी भी अवस्था में महेन्द्र को इस तरह धिक्कार सकती है। उसे लगा, जहाँ उसका सिंहासन था, वहीं वह धूल में लोट रहा है। इतने दिनों के बाद अब उसे ये शंका होने लगी, 'आशा की वेदना कहीं घृणा में न बदल जाए।'

और उधर बिहारी की चर्चा आते ही बिनोदिनी की चिन्ता ने उसे बेताब कर दिया। पश्चिम से बिहारी लौटा या नहीं, कौन जाने? हो सकता है, इस बीच बिनोदिनी उसका पता ले आई हो, बिनोदिनी से बिहारी की भेंट भी असम्भव नहीं। महेन्द्र से अब प्रतिज्ञा का पालन न हो सका।

रात को राजलक्ष्मी की तकलीफ़ बढ़ गयी। उनसे न रहा गया। उन्होंने महेन्द्र को बुलावा भेजा। बड़ी तकलीफ़ से बोलीं—"महेन्द्र, बिहारी को देखने को मेरा बड़ा जी चाहता है—बहुत दिनों से वह नहीं आया है।"

आशा सास को पंखा झल रही थी। मुँह नीचा किए बैठी रही। महेन्द्र ने कहा—"वह

यहाँ नहीं है। जाने कहाँ पछाँह गया है।”

राजलक्ष्मी ने कहा—“मेरी अन्तरात्मा कह रही है, वह यहाँ है, सिर्फ़ तुझसे रूठकर नहीं आ रहा है। मेरे सिर की कसम रही, कल तू एक बार उसके यहाँ जाना।”

महेन्द्र ने कहा—“अच्छा, जाऊँगा।”

आज सब बिहारी के लिए परेशान हैं। उसके लिए किसी के पास समय नहीं।

44

दूसरे दिन तड़के ही महेन्द्र बिहारी के यहाँ पहुँच गया। देखा, दरवाज़े पर कई बैलगाड़ियों पर नौकर-चाकर सामान लाद रहे हैं। महेन्द्र ने भज्जो से पूछा—"माजरा क्या है?" भज्जो ने कहा—"बाबू ने नदी के उस पार बाली में गंगा के किनारे एक बगीचा लिया है। यह सब वहीं जा रहा है।" महेन्द्र ने पूछा—"बाबू घर पर हैं क्या?" भज्जो ने कहा—"वे सिर्फ़ दो दिन कलकत्ता रुककर कल बगीचे चले गए।"

सुनते ही महेन्द्र का मन आशंका से भर गया। उसकी ग़ैरहाज़िरी में बिहारी से बिनोदिनी की भेंट हुई है, इस पर उसे कोई सन्देह न रहा। उसने कल्पना की आँखों से देखा, बिनोदिनी के डेरे के बाहर भी बैलगाड़ियाँ लद रही हैं। उसे यह निश्चित आभास हुआ कि इसीलिए मुझ नासमझ को बिनोदिनी ने डेरे से दूर ही रखा है।

पल की भी देर न करके महेन्द्र गाड़ी पर सवार हुआ और कोचवान से हाँकने को कहा। बीच-बीच में कोचवान को इसके लिए गालियाँ सुनायीं कि घोड़े तेज़ नहीं चल रहे हैं। गली के अन्दर डेरे के दरवाज़े पर पहुँचकर देखा, यात्रा की कोई तैयारी नहीं है। डर लगा, कहीं यह काम पहले ही न हो चुका हो। तेज़ी से किवाड़ के कड़े खटखटाए। अन्दर से जैसे ही बूढ़े नौकर ने दरवाज़ा खोला, महेन्द्र ने पूछा—"सब ठीक तो है?"

उसने कहा—"जी हाँ, ठीक ही है।"

ऊपर जाकर महेन्द्र ने देखा, बिनोदिनी नहाने गयी है। उसके सूने सोने के कमरे में जाकर महेन्द्र बिनोदिनी के बिस्तर पर लोट गया, दोनों हाथों से खींचकर चादर को छाती के पास ले आया और सूँघकर उस पर मुँह रखते हुए बोला—"बेरहम, निर्दयी!"

हृदय के उच्छ्वास को इस तरह निकलकर वह सेज से उठकर बिनोदिनी का इन्तज़ार करने लगा। कमरे में चहलकदमी करते हुए देखा, फ़र्श के बिछौने पर एक अखबार खुला पड़ा है। समय काटने के खयाल से कुछ अनमना-सा होकर अखबार उठाकर देखा। जहाँ पर उसकी नज़र पड़ी, वहीं पर बिहारी का नाम था। उसका मन बात-की-बात में अखबार देखते-देखते वहीं पर टूट पड़ा। किसी ने सम्पादक के नाम पत्र लिखा था, 'मामूली तनख्वाह पाने वाले गरीब किरानियों के बीमार होने पर निःशुल्क चिकित्सा और सेवा के लिए बिहारी ने बाली में एक बगीचा खरीदा है, वहाँ एक साथ पाँच आदमियों के लिए प्रबन्ध हो चुका है, आदि-आदि।'

यह खबर बिनोदिनी ने पढ़ी, पढ़कर उसके मन में क्या हुआ होगा! बेशक उसका मन उतावला हो रहा होगा कि उधर ही भाग कर पहुँच जाए। महेन्द्र का जी इस वजह से

और भी छटपटाने लगा कि बिहारी के इस संकल्प से उसके प्रति बिनोदिनी की भक्ति और भी बढ़ जाएगी। बिहारी को महेन्द्र ने अपने मन में 'हम्बग' और उसके इस काम को 'सनक' कहा।

बिनोदिनी के पैरों की आहट सुनकर महेन्द्र ने अखबार मोड़ दिया। नहाकर बिनोदिनी कमरे में जो आई, महेन्द्र उसके चेहरे की तरफ़ देखकर हैरत में आ गया। उसमें जाने कैसा एक अनोखा बदलाव आ गया था। मानो पिछले कई दिनों तक वह धूनी जलाकर तप कर रही थी। शरीर उसका दुबला हो गया था और उस दुबलेपन को भेदकर उसके पीले चेहरे से एक दमक निकल रही थी।

बिहारी के पत्र की उम्मीद उसने छोड़ दी है। अपने ऊपर बिहारी की बेहद हिकारत की कल्पना करके वह आठों पहर चुपचाप जल रही थी। बिहारी मानो उसी का तिरस्कार करके पछाँह चला गया है—उस तक पहुँच पाने की कोई तरकीब उसे नहीं सूझी। काम-काजी बिनोदिनी काम की कमी से इस छोटे-से घर में घुल रही थी—उसकी सारी तत्परता खुद उसी को घायल करती हुई चोट करती थी। उसके समूचे भावी जीवन को इस प्रेमहीन, कर्महीन, आनन्दहीन घर में इस सँकरी गली में सदा के लिए कैद समझकर उसकी बागी प्रकृति हाथ न आने वाले अदृष्ट के खिलाफ़ मानो आसमान से सिर मारने की बेकार कोशिश कर रही थी। नादान महेन्द्र ने बिनोदिनी की मुक्ति के सारे रास्तों को चारों तरफ़ से बंद करके जीवन को इतना सँकरा बना दिया है, उस महेन्द्र के प्रति उसकी घृणा और विद्वेष की सीमा न रही।

बिनोदिनी का दुबला-पीला चेहरा देखकर महेन्द्र के मन में ईर्ष्या जल उठी। उसमें ऐसी कोई शक्ति नहीं कि वह बिहारी की चिन्ता में लगी इस तपस्विनी को ज़बर्दस्ती उखाड़ सके? गिद्ध जैसे मेमने को झपट्टा मारकर देखते-ही-देखते अपने अगम अभ्रभेदी पहाड़ के बसेरे में ले भागता है, क्या वैसी ही कोई मेघों से घिरी दुनिया की निगाहों से परे जगह नहीं, जहाँ महेन्द्र अकेला अपने इस सुन्दर शिकार को कलेजे के पास छिपाकर रख सके?

विरह की जलन स्त्रियों के सौंदर्य को सुकुमार कर देती है, ऐसा महेन्द्र ने संस्कृत-काव्यों में पढ़ा था। आज बिनोदिनी को देखकर वह जितना ही अनुभव करने लगा, उतना ही सुख-सने दुःख के आलोड़न से उसका हृदय बड़ा व्यथित होने लगा।

बिनोदिनी ज़रा देर स्थिर रही। फिर पूछा—"तुम चाय पीकर आए हो?"

महेन्द्र ने कहा—"समझ लो, पीकर ही आया हूँ, मगर इस वजह से अपने हाथ से प्याला देने की कंजूसी मत करो—प्याला मुझे दो।"

शायद जानकर ही बिनोदिनी ने निहायत निर्दयता से महेन्द्र से इस उच्छ्वास को चोट पहुँचाई। कहा—"बिहारी भाई साहब इन दिनों कहाँ हैं, मालूम है?"

महेन्द्र का चेहरा फक हो गया। बोला—"कलकत्ता में तो वह नहीं हैं इन दिनों।"

बिनोदिनी—"पता क्या है उनका?"

महेन्द्र—"यह तो वह किसी को बताना नहीं चाहता।"

बिनोदिनी—"खोज नहीं की जा सकती पूछ-ताछ कर?"

महेन्द्र—"मुझे ऐसी ज़रूरत नज़र नहीं आती।"

बिनोदिनी—"ज़रूरत ही क्या सब-कुछ है, बचपन से आज तक की मैत्री क्या कुछ भी नहीं?"

महेन्द्र—"बिहारी मेरा छुटपन का साथी है, तुम्हारी दोस्ती महज़ दो दिन की है, फिर भी ताकीद तुम्हारी ही ज़्यादा है।"

बिनोदिनी—"इसी से तुम्हें शर्म आनी चाहिए। दोस्ती कैसे करनी चाहिए, यह तुम अपने वैसे दोस्त से भी न सीख सके?"

महेन्द्र—"मुझे इसका कतई मलाल नहीं, मगर धोखे से औरत का दिल कैसे लिया जाता है, यह विद्या उससे सीखता तो आज काम आती।"

बिनोदिनी—"केवल चाहने से वह विद्या नहीं सीखी जा सकती, उसकी क्षमता होनी चाहिए।"

महेन्द्र—"गुरुदेव का पता मालूम हो, तो मुझे बताओ, इस उम्र में उनसे दीक्षा ले आऊँ, फिर क्षमता की कसौटी होगी।"

बिनोदिनी—"मित्र का पता ढूँढ निकालने की जुर्रत न हो तो प्रेम की बात ज़बान पर मत लाओ! बिहारी भाई साहब से तुमने ऐसा बर्ताव किया है कि तुम पर कौन यकीन करेगा?"

महेन्द्र—"मुझ पर पूरा यकीन न होता तो मेरा इतना अपमान न कर पातीं—मेरे प्रेम पर अगर इतनी निश्चिन्तता न होती, तो शायद मुझे इतनी तकलीफ़ न होती। बिहारी पालतू न बनने की कला जानता है, वह कला अगर इस बदनसीब को बता देता तो वह एक दोस्त का फ़र्ज अदा करता।"

"आखिर बिहारी आदमी है, इसी से पालतू नहीं बनता"—यह कहकर बिनोदिनी खुले बालों को पीठ पर बिखेरकर खिड़की पर जिस तरह खड़ी थी, खड़ी रही। महेन्द्र अचानक खड़ा हुआ। मुट्ठी कस ली और नाराज़गी से गरजकर बोला—"आखिर बार-बार मेरा अपमान करने का साहस क्यों करती हो तुम? इतने अपमान का कोई जवाब तुम्हें नहीं मिलता, वह तुम्हारी क्षमता के कारण या मेरे गुण से? इतना बड़ा पुरुष मैं नहीं कि चोट करना जानता ही नहीं।"

इतना कहकर वह बिनोदिनी की तरफ़ देखता हुआ ज़रा देर स्तब्ध रहा, फिर बोला —"बिनोद, चलो यहाँ से चलें—कहीं और। चाहे पछाँह, चाहे किसी पहाड़ पर, जहाँ तुम्हारा जी चाहे—चलो! यहाँ जीना मुहाल है। मैं मरा जा रहा हूँ।"

बिनोदिनी बोली—"चलो अभी चलें पछाँह।"

महेन्द्र—"पछाँह?"

बिनोदिनी—"किसी खास जगह नहीं। कहीं भी दो दिन रहते-घूमते फिरेंगे।"

महेन्द्र—"ठीक है, आज ही रात को चलो!"

बिनोदिनी राज़ी होकर महेन्द्र के लिए खाना बनाने गयी। महेन्द्र ने समझ लिया, बिहारी वाली खबर बिनोदिनी की नज़रों से नहीं गुज़री। अखबार में जी लगाने जैसी स्थिति अभी उसके मन की नहीं है। कहीं अचानक उसे वह खबर न मालूम हो जाए, इसी

उधेड़-बुन में महेन्द्र पूरे दिन चौकन्ना रहा।

45

बिहारी की खोज-खबर लेकर महेन्द्र लौटेगा, इस आशा से घर में उसकी रसोई बनी थी। काफ़ी देर हो गयी तो दु:खी राजलक्ष्मी बेचैन हो उठीं। रात-भर नींद न आई थी, इससे वे काफ़ी थकी थीं, फिर महेन्द्र के लिए यह बेताबी भी उन्हें और कष्ट दे रही थी। यह देखकर आशा ने पूछ-ताछकर यह पता किया कि महेन्द्र की गाड़ी वापस आ चुकी है। कोचवान से मालूम हुआ, महेन्द्र बिहारी के यहाँ से होता हुआ पटलडाँगा के डेरे पर गया है। राजलक्ष्मी ने सुना और दीवार की तरफ़ करवट बदलकर लेटी रहीं। आशा उनके सिरहाने चित्र-लिखी-सी बैठी पंखा झलती रही और दिन समय पर आशा को खाने के लिए जाने का वह आदेश किया करती थीं—आज कुछ न कहा। कल जब उनकी तबीयत ज़्यादा खराब थी, यह देखकर भी महेन्द्र बिनोदिनी के मोह में चला गया, तो राजलक्ष्मी के लिए दुनिया में कुछ भी करने का मन बुझ गया।

कोई दो बजे आशा बोली—"माँ, दवा पीने का वक्त हो गया।"

राजलक्ष्मी ने कोई जवाब न दिया, चुप रहीं, आशा दवा लाने जाने लगी, तो बोलीं —"दवा की ज़रूरत नहीं बहू, तुम जाओ!"

आशा ने माँ के रूठने का मर्म समझा और उसकी समझ ने उसके हृदय के आन्दोलन को दूना कर दिया। आशा से न रहा गया। अपनी रुलाई रोकते-रोकते वह फफक पड़ी। राजलक्ष्मी धीरे-धीरे करवट बदलकर आशा की तरफ़ हो गयीं और स्नेह से उसका हाथ सहलाने लगीं। कहा—"बहू, तुम्हारी उम्र ही क्या है, सुख का मुँह देखने का तुम्हें बहुत समय है। मेरे लिए तुम परेशान मत होओ बिटिया, मैं काफ़ी जी चुकी, अब क्या होगा जीकर?"

आशा की रुलाई और उमड़ आई। उसने आँचल से मुँह दबा लिया। रोगी के घर इस तरह निरानन्द दिन मन्द गति से कट गया। रूठे रहने के बावजूद दोनों नारियों को अन्दर-ही-अन्दर आशा थी कि महेन्द्र अभी आएगा। खटका होते ही दोनों के शरीर में एक चौंक-सी जगती थी, इसे दोनों समझ रही थीं। धीरे-धीरे सूर्यास्त की आभा धुँधली पड़ गयी—कलकत्त के अन्त:पुर में उस गोधूलि की आभा में न तो खिलावट है, और न अँधेरे का आवरण ही होता है—वह विषाद को गहरा और निराशा के आँसू सुखा डालती है। कर्म और भरोसे के बल को वह छीन लेती है, लेकिन विश्राम और वैराग्य की शान्ति नहीं लाती। रोग से दु:खी घर की उस सूनी और कुरूप साँझ में आशा पाँव दबाए गयी और दीया जलाकर कमरे में ले आई। राजलक्ष्मी ने कहा, "बहू, रोशनी नहीं सुहाती, दीये को कमरे से बाहर रख दो।"

आशा दीये को बाहर रख आई। घना होकर अँधेरा जब अनन्त रात को छोटे से कमरे में ले आया, तो आशा ने धीमे-से राजलक्ष्मी से पूछा—"माँ, उन्हें खबर भिजवाऊँ क्या?"

राजलक्ष्मी ने सख्त होकर कहा—"नहीं-नहीं, तुम्हें मेरी कसम, महेन्द्र को खबर मत देना!"

आशा स्तब्ध रह गयी। रोने की उसमें शक्ति न थी। कमरे के बाहर से बैरे ने आवाज़ दी—"माँजी, बाबू के यहाँ से चिट्ठी आई है।"

यह सुना और तुरंत राजलक्ष्मी के मन में आया, 'हो न हो, महेन्द्र की अचानक तबीयत खराब हो गयी है। इसीलिए वह आ न सका और चिट्ठी भेजी है।' चिन्तित और परेशान होकर उन्होंने कहा, "देखो तो बहू, महेन्द्र ने क्या लिखा है?"

काँपते हुए हाथों से आशा ने बाहर जाकर रोशनी में चिट्ठी खोलकर पढ़ी। उसने लिखा था, इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट है, इसलिए वह घूमने के लिए पछाँह जा रहा है। माँ की बीमारी के लिए खास कोई चिन्ता की बात नहीं। उन्हें बराबर देखने के लिए नवीन डॉक्टर से कह दिया है। रात को उन्हें नींद न आए या सिर-दर्द हो तो क्या करना होगा, यह भी उसने लिखा था। साथ ही दवाखाने से मँगाकर उसने हल्के और ताकतवर पथ्य के दो डिब्बे भी भेज दिए थे। फिलहाल गिरीडीह के पते पर माँ का हाल लिखने के लिए चिट्ठी में 'पुनश्च' में अनुरोध किया था।

चिट्ठी पढ़कर आशा स्तम्भित हो गयी—एक ज़बर्दस्त धिक्कार ने उसके दुःख को छिपा लिया। यह कठोर समाचार वह माँ को किस तरह सुनाए?

आशा के इस विलम्ब से राजलक्ष्मी बहुत ही उतावली हो उठीं। बोलीं—"बहू, मुझे बताओ, महेन्द्र ने क्या लिखा है?"

आशा ने आखिर अन्दर बैठकर शुरू से आखिर तक चिट्ठी पढ़ सुनाई। राजलक्ष्मी ने कहा—"अपनी तबीयत के बारे में उसने क्या लिखा है, ज़रा वह जगह फिर से पढ़ो तो..."

आशा ने फिर से पढ़ा—"इधर कुछ दिनों से तबीयत उचाट-सी चल रही थी, इसीलिए मैं..."

राजलक्ष्मी—"बस, बस, रहने दो। उचाट न हो तबीयत, क्या हो! बुड्ढी माँ मरती भी नहीं और बीमार होकर उसे तंग करती है। तुम मेरी बीमारी को कहने उससे क्यों गयीं?" कहकर वह बिस्तर पर लेट गयीं।

बाहर जूतों की चरमराहट हुई। बैरे ने कहा—"डॉक्टर आए हैं।"

खाँसकर डॉक्टर साहब अन्दर आए। घूँघट निकालकर आशा पलँग की आड़ में हो गयी। डॉक्टर ने पूछा—"आपको शिकायत क्या है, यह तो कहें।"

राजलक्ष्मी झुँझलाकर बोलीं—"शिकायत क्यों होगी? किसी को मरने भी न देंगे। आपकी दवा से ही क्या मैं अमर हो जाऊँगी?"

डॉक्टर ने उन्हें तसल्ली देने की कोशिश करते हुए कहा, "नहीं, अमर करने का वादा तो हम नहीं करते, लेकिन हम राहत ज़रूर देने की..."

राजलक्ष्मी ने बात काट कर कहा—"तकलीफ़ की दवा तभी होती थी, जब विधवाएँ जल मरती थीं अब तो बाँधकर मारना ठहरा। आप जाएँ डॉक्टर साहब, मुझे तंग न करें—मैं अकेली रहना चाहती हूँ।"

डॉक्टर ने डरकर कहा—"ज़रा आपकी नब्ज़..."

राजलक्ष्मी ने खीझकर कहा—"मैं कह रही हूँ, आप जाइए... मेरी नब्ज़ सही है—यह खतरा नहीं कि यह जल्दी छूटेगी।"

लाचार होकर डॉक्टर कमरे से बाहर चला गया। उसने आशा को बुलाया। उससे बीमारी का सारा ब्यौरा पूछा। सब-कुछ सुनकर गम्भीर-सा होकर वह फिर कमरे में गया। बोला—"महेन्द्र मुझ पर आपके इलाज का भार सौंप गया है। अगर आप इलाज़ न कराएँगी, तो उसे दुःख होगा।"

महेन्द्र को दुःख होगा, यह बात राजलक्ष्मी को मज़ाक जैसी लगी। उन्होंने कहा —"महेन्द्र की इतनी फ़िक्र न करें आप। दुनिया में हर किसी को दुःख भोगना पड़ता है। आप जाएँ, मुझे सोने दें।"

डॉक्टर ने समझा, बीमार को ज़्यादा तंग करना ठीक नहीं। वह बाहर निकला और जो कुछ करना था, आशा को बता दिया।

आशा जब कमरे में लौटी, तो राजलक्ष्मी बोलीं—"तुम ज़रा आराम कर लो जाकर, बिटिया! तमाम दिन मरीज़ के पास बैठी हो! हारू की माँ से कह दो, बगल के कमरे में बैठेगी।"

आशा राजलक्ष्मी को समझती थी। यह उनके स्नेह का आग्रह नहीं, आदेश था—इसे मान लेने के सिवा चारा नहीं। उसने हारू की माँ को भेज दिया था और अपने कमरे में नीचे लेट गयी।

दिन-भर उसने खाया-पीया नहीं। तकलीफ़ भी थी। उसका तन-मन चूर-चूर हो गया था। उस दिन पड़ोस में दिन में ब्याह के बाजे बजते रहे। अभी फिर शहनाई पर धुन छिड़ी। उस रागिनी से चोट खाकर रात का अँधेरा काँपकर आशा पर बार-बार आघात करने लगा। उसके अपने विवाह के दिन की छोटी-से-छोटी घटना भी सजीव हो उठी और सबने मिलकर रात के आसमान को स्वप्न की छवि से पूर्ण कर दिया।

कमरे में रोशनी जलाकर वह कागज़ लिये लगातार आँसू पोंछती हुई लिखने बैठ गयी—

"पूजनीय मौसी—

तुम्हारे सिवाय आज मेरा कोई नहीं। एक बार आओ और अपनी इस दुखिया को अपनी गोद में उठा लो, वरना मैं जिऊँगी कैसे! क्या लिखूँ, नहीं जानती। चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

तुम्हारी प्यारी
चुन्नी"

46

अन्नपूर्णा काशी से चली आईं। धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में जाकर उन्हें प्रणाम करके उनके चरणों की धूल माथे ली। बीच में इस बिलगाव के बावजूद अन्नपूर्णा को देखकर राजलक्ष्मी ने मानो कोई खोयी निधि पाई। उन्हें लगा, वे मन-ही-मन अन्नपूर्णा को चाह रही थीं। इतने दिनों के बाद आज पल-भर में ही यह बात स्पष्ट हो उठी कि उनको इतनी वेदना महज़ इसलिए थी कि अन्नपूर्णा न थीं। एक पल में उनका दुःखी चित्त अपने चिरंतन स्थान पर आ बैठा। महेन्द्र की पैदाइश से भी पहले जब उन दिनों जिठानी-देवरानी ने वधू के रूप में इस परिवार के सारे सुख-दुःख को अपना लिया था—पूजा-त्योहारों पर, शोक-मृत्यु में दोनों ने गृहस्थी के रथ पर साथ-साथ यात्रा की थी—उन दिनों के गहरे सखीत्व ने राजलक्ष्मी के हृदय को आज पल-भर में आच्छन्न कर लिया। जिसके साथ सुदूर अतीत में उन्होंने जीवन का आरम्भ किया था—तरह-तरह की रुकावटों के बाद बचपन की सहचरी गाढ़े दुःख के दिनों में उनके बगल में खड़ी हुई। यह एक घटना उनके मौजूदा सुख-दुःखों, प्रिय घटनाओं में स्मरणीय हो गयी। जिसके लिए राजलक्ष्मी ने इसे भी बेरहमी से चोट पहुँचाई थी, वह आज कहाँ है!

अन्नपूर्णा बीमार राजलक्ष्मी के पास बैठकर उनका दायाँ हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोलीं—"दीदी!"

राजलक्ष्मी ने कहा—"मँझली!"

उनसे और बोलते न बना। आँखों में आँसू बहने लगे। यह दृश्य देखकर आशा से न रहा गया। वह बगल के कमरे में जाकर ज़मीन पर बैठकर रोने लगी।

राजलक्ष्मी या आशा से अन्नपूर्णा महेन्द्र के बारे में कुछ पूछने का साहस न कर सकीं। साधुचरण को बुलाकर पूछा—"मामा, महेन्द्र कहाँ है?"

मामा ने महेन्द्र और बिनोदिनी का सारा किस्सा कह सुनाया। अन्नपूर्णा ने पूछा—"बिहारी कहाँ है?"

साधुचरण ने कहा—"काफ़ी दिनों से वे इधर आए नहीं। उनका हाल ठीक-ठीक नहीं बता सकता।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"एक बार बिहारी के यहाँ जाकर खोज-खबर तो ले आइए!"

साधुचरण ने उसके यहाँ से लौटकर बताया—"वे घर पर नहीं हैं, अपने बाली वाले बगीचे में गए हैं।"

अन्नपूर्णा ने डॉक्टर नवीन को बुलाकर मरीज़ की हालत के बारे में पूछा। डॉक्टर ने

बताया, “दिल की कमज़ोरी के साथ ही जलोदर भी हो गया है, कब अचानक चल बसें, कहना मुश्किल है।”

शाम को राजलक्ष्मी की तकलीफ़ बढ़ने लगी। अन्नपूर्णा ने पूछा—“दीदी, नवीन डॉक्टर को बुलवा भेजूँ?”

राजलक्ष्मी ने कहा—“नहीं बहन, नवीन डॉक्टर के करने से कुछ न होगा।”

अन्नपूर्णा बोलीं—“तो फिर किसे बुलवाना चाहती हो तुम?”

राजलक्ष्मी ने कहा—“एक बार बिहारी को बुलवा सको, तो अच्छा हो।”

अन्नपूर्णा के दिल में चोट लगी। उस दिन काशी में उन्होंने बिहारी को दरवाज़े से ही अँधेरे में अपमानित करके लौटा दिया था। वह तकलीफ़ वे आज भी न भुला सकी थीं। बिहारी अब शायद ही आए। उन्हें यह उम्मीद न थी कि इस जीवन में उन्हें अपने किए के प्रायश्चित करने का कभी मौका मिलेगा।

अन्नपूर्णा एक बार छत पर महेन्द्र के कमरे में गयीं। घर-भर में यही कमरा आनन्द-निकेतन था। आज उस कमरे में कोई श्री नहीं रह गयी थी—बिछौने बेतरतीब पड़े थे। साज-सामान बिखरे हुए थे, छत के गमलों में कोई पानी नहीं डालता था, पौधे सूख गए थे।

आशा ने देखा, मौसी छत पर गयी हैं। वह भी धीरे-धीरे उनके पीछे-पीछे गयी। अन्नपूर्णा ने उसे खींचकर छाती से लगाया और उसका माथा चूमा। आशा ने झुककर दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़ लिये। बार-बार उनके पाँवों से अपना माथा लगाया। बोली—“मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, बल दो। आदमी इतना कष्ट भी सह सकता है, मैंने यह कभी सोचा तक न था। मौसी, इस तरह कब तक चलेगा?”

अन्नपूर्णा वहीं ज़मीन पर बैठ गयीं। आशा उनके पैरों पर सिर रखकर लोट गयी। अन्नपूर्णा ने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और चुपचाप देवता को याद करने लगीं।

ज़माने के बाद अन्नपूर्णा के स्नेह-सने मौन आशीर्वाद ने आशा के मन में बैठकर शान्ति का संचार किया। उसे लगा, उसकी मनोकामना पूरी हो गयी है। देवता उस-जैसी नादान की उपेक्ष कर सकते हैं, मगर मौसी की प्रार्थना नहीं ठुकरा सकते।

मन में दिलासा और बल पाकर आशा बड़ी देर के बाद एक लम्बा निःश्वास छोड़कर उठ बैठी। बोली—“मौसी, बिहारी भाई साहब को आने के लिए चिट्ठी लिख दो!”

अन्नपूर्णा बोलीं—“उँहूँ, चिट्ठी नहीं लिखूँगी।”

आशा—“तो उन्हें खबर कैसे होगी?”

अन्नपूर्णा बोलीं—“मैं कल खुद उससे मिलने जाऊँगी।”

47

जिन दिनों बिहारी पश्चिम में भटकता फिर रहा था, उसके मन में आया, 'जब तक कोई काम लेकर न बैठूँ चैन न मिलेगा।' यही सोचकर उसने कलकत्ता के गरीब किरानियों के मुफ़्त इलाज और सेवा-जतन का भार उठाया। गर्मी के दिनों में डबरे की मछलियाँ जिस तरह कम पानी और कीचड़ में किसी प्रकार जिंदा रह लेती हैं, तंग गलियों के सँकरे कमरों में परिवार का बोझ उठाने वाले बेचारे किरानियों की ज़िन्दगी वैसी ही है—उन दुबले, पीले पड़े, चिन्ता से पिसने वाले भद्रवर्ग के लोगों के प्रति बिहारी को बहुत पहले ही दया हो आई थी—इसलिए उसने उन्हें बगीचे की छाँह और गंगा-तट की खुली हवा प्रदान करने का संकल्प किया।

बाली में उसने बगीचा खरीदा और चीनी कारीगरों से छोटे-छोटे झोंपड़े बनवाने शुरू किए। लेकिन मन को राहत न मिली। काम में लगने का दिन ज्यों-ज्यों करीब आने लगा, उसका मन अपने निश्चय से डिगने लगा। बार-बार उसका मन यही कहने लगा—'इस काम में कोई सुख नहीं, रस नहीं, सौंदर्य नहीं—यह महज़ एक नीरस भार है।' काम की कल्पना ने इसके पहले कभी भी बिहारी को इतना परेशान नहीं किया।

कभी ऐसा भी था कि बिहारी को खास कोई ज़रूरत ही न थी, जो कुछ भी सामने आ जाता, उसी में वह सहज ही अपने को लगा सकता था। अब उसके मन में न जाने कौन-सी भूख जगी है, उसे बुझा लेने के पहले और किसी भी चीज़ में उसकी आसक्ति नहीं होती। जैसी शुरू से आदत रही है, इस-उस में हाथ डालकर देखता और दूसरे ही क्षण उसे छोड़कर छुटकारा पाना चाहता!

बिहारी में यौवन सिकुड़कर आराम कर रहा था। उसने कभी सज्ञान होकर इस तरफ़ देखा भी नहीं, लेकिन बिनोदिनी के स्पर्श ने उसे धधका दिया। अभी-अभी पैदा हुए गरुड़ की तरह अपनी खुराक के लिए वह सारी दुनिया को झिंझोड़ता फिर रहा है।

बिहारी का जो पिछला जीवन सुख और सन्तोष से कट गया, उसे वह अब वीरान और बंजर समझता। ऐसी मेघघिरी शामें जाने कितनी आईं, पूर्णिमा की कितनी रातें—वे सब हाथों में अमृत का पात्र लिये बिहारी के सूने हृदय के द्वार से चुपचाप लौट गयीं—उन दुर्लभ शुभ घड़ियों में कितने गीत घुटे रहे, कितने उत्सव न हो पाए, इसकी कोई हद नहीं। बिहारी के मन में जो पुरानी सुधियाँ थीं, उन्हें बिनोदिनी ने उद्यत चुम्बन की रक्तिम आभा से ऐसा फीका और तुच्छ कर दिया था। जीवन के ज़्यादातर दिन महेन्द्र की छाया में कटे! उनकी सार्थकता क्या थी? प्रेम की वेदना में सारे जल-थल-आकाश के केन्द्र-कुहर से ऐसी ताप में इस तरह बाँसुरी बजती है, यह तो अचेतन बिहारी कभी सोच भी न पाया

था। बिनोदिनी ने बिहारी को बाँहों में लपेटकर अचानक एक पल में जिस अनोखे सौंदर्य-लोक में पहुँचा दिया, उसे वह कैसे भूले!

फिर भी उस बिनोदिनी से बिहारी आज इस तरह दूर क्यों है? इसलिए कि बिनोदिनी ने जिस सौंदर्य-रस से बिहारी का अभिषेक किया उस सौंदर्य के अनुकूल संसार में बिनोदिनी से किसी सम्बन्ध की वह कल्पना नहीं कर सकता।

वह न तो मानिनी का मान भंग करना चाहता है, न सौन्दर्य को कलंकित करना चाहता है और न ही महेन्द्र से स्पर्द्धा करना चाहता है। शायद यही वजह है कि वह चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता।

अपने बगीचे के दक्खिन में फले जामुन के नीचे बिहारी मेघ-घिरे प्रभात में चुपचाप पड़ा था, सामने से कोठी की डोंगी आ-जा रही थीं। अलसाया-सा वह उसी को देख रहा था। दिन धीरे-धीरे चढ़ रहा था। नौकर ने आकर पूछा, "भोजन का प्रबन्ध करे या नहीं?" बिहारी ने कहा —"अभी रहने दो।"

इतने में उसने चौंककर देखा, सामने अन्नपूर्णा खड़ी हैं। बदहवास-सा वह उठ पड़ा, दोनों हाथों से उनके पाँव पकड़कर ज़मीन पर माथा टेककर प्रणाम किया। अन्नपूर्णा ने बड़े स्नेह से अपने दाएँ हाथ से उसके बदन और माथे को छुआ। भर आए से स्वर में पूछा —"तू इतना दुबला क्यों हो गया है, बिहारी?"

बिहारी ने कहा—"ताकि तुम्हारा स्नेह पा सकूँ।"

सुनकर अन्नपूर्णा की आँखें बरस पड़ीं। बिहारी ने व्यस्त होकर पूछा—"तुमने अभी भोजन नहीं किया है, चाची?"

अन्नपूर्णा बोलीं—"अभी मेरे खाने का समय नहीं हुआ।"

बिहारी बोला—"चलो-चलो, मैं रसोई की जुगत किए देता हूँ। एक युग के बाद तुम्हारे हाथ की रसोई पत्तल का प्रसाद पाकर जी जाऊँगा मैं।"

महेन्द्र और आशा के बारे में बिहारी ने कोई चर्चा नहीं की। इसका दरवाज़ा तो एक दिन खुद अन्नपूर्णा ने ही अपने हाथों बन्द कर दिया था। मान में भरकर उसने उसी निष्ठुर निषेध का पालन किया।

खा चुकने के बाद अन्नपूर्णा ने कहा—"घाट पर नाव तैयार है बिहारी, चल, कलकत्ता चल!"

बिहारी बोला—"कलकत्ता से मेरा क्या लेना-देना।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"दीदी बहुत बीमार हैं, वे तुम्हें देखना चाहती हैं एक बार।"

सुनकर बिहारी चौंक उठा। पूछा—"और महेन्द्र भैया।"

अन्नपूर्णा—"वह कलकत्ता में नहीं है, बाहर गया है।"

सुनते ही बिहारी का चेहरा सफेद पड़ गया। वह चुप रहा।

अन्नपूर्णा ने पूछा—"तुझे क्या मालूम नहीं है सारा किस्सा?"

बिहारी बोला—"कुछ तो मालूम है, अन्त तक नहीं।"

इस पर अन्नपूर्णा ने बिनोदिनी को लेकर महेन्द्र के भाग जाने का किस्सा बताया।

बिहारी की निगाह में जल-थल-आकाश का रंग ही बदल गया, उसकी कल्पना के खजाने का सारा रस सुनते ही कड़वा हो गया—'तो क्या वह मायाविनी उस दिन शाम को मेरे साथ खेल, खेल गयी? उसका प्रेम-निवेदन महज़ मक्कारी था! वह अपना गाँव छोड़कर बेहया की तरह महेन्द्र के साथ भाग गयी!'

बिहारी ने अपनी मूर्खता के लिए खुद ही को धिक्कारा कि वह सचमुच बिनोदिनी की कही बात पर विश्वास कर बैठा था।

बिनोदिनी के चारों ओर जो काल्पनिक संसार उसने बना रखा था, वह पलभर में चूर-चूर हो गया।

48

बिहारी सोच रहा था, दुखिया आशा की ओर वह देखेगा कैसे! ड्योढ़ी के अंदर कदम रखते ही स्वामीहीन घर की घनीभूत पीड़ा उसे दबोच बैठी। घर के नौकर-दरबानों की ओर ताकते हुए बौराए हुए महेन्द्र के भाग जाने की शर्म ने उसके सिर को गाड़ दिया। पुराने और जाने-पहचाने नौकरों से उसने पहले की तरह मुलायमियत से कुशल-क्षेम न पूछी। हवेली में जाने को मानो उसके कदम नहीं उठ रहे थे। दुनिया के सामने खुले-आम महेन्द्र बेबस आशा को जिस गहरे अपमान में छोड़ गया है, जो अपमान औरत के सबसे बड़े पर्दे को उघाड़कर उसे सारी दुनिया की कौतूहल-भरी कृपा-दृष्टि के बीच खड़ा कर देता है, उसी अपमान के आवरणहीन स्वरूप में बिहारी सकुचाई और दुःखी आशा को कौन-से प्राण लेकर देखेगा!

लेकिन इन चिन्ताओं और संकोच का मौका ही न रहा। हवेली में पहुँचते ही आशा दौड़ी-दौड़ी आई और बिहारी से बोली—"देवर जी, ज़रा जल्दी आओ, माँ को देखो जल्दी!"

यह पहला मौका था जब बिहारी से आशा ने खुलकर बात की थी। दुर्दिन का मामूली झटका सारी रुकावटों को उड़ा ले जाता है—जो दूर-दूर रहते हैं, बाढ़ उन सबको अचानक एक सँकरी जगह में इकट्ठा कर देती है।

आशा की इस संकोचहीन अकुलाहट से बिहारी को चोट लगी। इस छोटे-से वाकये से ही वह समझ सका कि महेन्द्र अपनी गृहस्थी की कैसी मिट्टी पलीद कर गया है।

बिहारी राजलक्ष्मी के कमरे में गया। अचानक साँस की तकलीफ़ हो जाने से राजलक्ष्मी फीकी पड़ गयी थीं—लेकिन वह तकलीफ़ ज़्यादा देर नहीं रही इसलिए सँभल गयीं।

बिहारी ने राजलक्ष्मी को प्रणाम किया। चरणों की धूल ली। राजलक्ष्मी ने उसे पास बैठने का इशारा किया और धीरे-धीरे कहा—"कैसा है बिहारी? जाने कितने दिनों से तुझे नहीं देखा!"

बिहारी ने कहा—"तुमने अपनी बीमारी की खबर क्यों नहीं भिजवाई? फिर क्या मैं ज़रा भी देर कर पाता।"

राजलक्ष्मी ने धीमे-से कहा—"यह क्या मुझे मालूम नहीं, बेटे! तुझे कोख में नहीं रखा मैंने, लेकिन तुझसे बढ़कर मेरा अपना क्या दुनिया में है कोई?"

कहते-कहते राजलक्ष्मी की आँखों से आँसू बहने लगे। बिहारी झटपट उठा। ताक

पर दवा-दारू की शीशियों को देखने के बहाने उसने अपने-आपको ज़ब्त किया। उसके बाद आकर उसने राजलक्ष्मी की नब्ज़ देखनी चाही। राजलक्ष्मी बोलीं—"मेरी नब्ज़ को छोड़—मैं पूछती हूँ, तू इतना दुबला क्यों हो गया है?"

अपने दुबले हाथों से राजलक्ष्मी ने बिहारी की गर्दन की हड्डी छूकर देखी।

बिहारी ने कहा—"जब तक तुम्हारे हाथ की रसोई नसीब नहीं होती, यह हड्डी ढँकने की नहीं। तुम जल्दी ठीक हो जाओ माँ, मैं इतने में रसोई का इन्तज़ाम कर रखता हूँ।"

राजलक्ष्मी फीकी हँसी हँसकर बोलीं—"हाँ, जल्दी-जल्दी इन्तज़ाम कर, बेटे—तेरी देख-रेख के लिए कोई भी नहीं है। अरी ओ मँझली—तुम लोग अब बिहारी की शादी करा दो, देखो न, इसकी शक्ल कैसी हो गयी है।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"तुम चंगी हो लो, दीदी—यह तो तुम्हारी ही ज़िम्मेदारी है।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"मुझे अब यह मौका न मिलेगा। बहन, बिहारी का भार तुम्हीं लोगों पर रहा, इसे तुम लोग सुखी रखना? मैं इसका ऋण नहीं चुका सकी, लेकिन भगवान भला करे इसका।" यह कहकर उन्होंने बिहारी के माथे पर अपना दायाँ हाथ फेर दिया।

आशा से कमरे में न रहा गया। वह रोने के लिए बाहर चली गयी। अन्नपूर्णा ने भरी हुई आँखों से बिहारी को स्नेह-भरी दृष्टि से देखा।

राजलक्ष्मी को अचानक न जाने क्या याद आ गया। बोलीं—"बहू, अरी ओ बहू!" आशा के अन्दर आते ही बोलीं—"बिहारी के खाने का इंतजाम किया या नहीं?"

बिहारी बोला—"तुम्हारे इस पेटू को सबने पहचान लिया है माँ। ड्योढ़ी पर आते ही नज़र पड़ी, बड़ी-बड़ी कोइ मछलियाँ लिये वैष्णवी जल्दी-जल्दी अन्दर जा रही है, मैं समझ गया, अभी इस घर से मेरी ख्याति मिटी नहीं है।"

और बिहारी ने हँसकर आशा की ओर देखा।

आशा आज शर्माई नहीं। स्नेह से हँसते हुए उसने यह दिल्लगी कबूल की। इस घर के लिए बिहारी क्या है, पहले आशा यह पूरी तरह न जानती थी—बहुत बार एक बेमतलब का मेहमान समझकर उसने उसकी उपेक्षा की है, बहुत बार उसकी यह बेरूखी उसके व्यवहार में साफ़ झलक पड़ी है। उसी अफ़सोस से धिक्कार से उसकी श्रद्धा और करुणा की तरफ़ तेज़ी से उमड़ पड़ी है।

राजलक्ष्मी ने कहा—"मँझली बहू, यह महाराज के बस की बात नहीं, रसोई की निगरानी तुम्हें करनी पड़ेगी। काफ़ी कड़वा न हो तो अपने इस पूरबिया लड़के को खाना नहीं रुचता।"

बिहारी बोला—"माँ, तुम्हारी माँ विक्रमपुर की लड़की थीं और तुम नदिया जिले के एक भले घर के लड़के को बांगाल कहती हो! मुझे यह बर्दाश्त नहीं।"

इस पर काफ़ी दिल्लगी रही। बहुत दिनों के बाद महेन्द्र के घर में छायी उदासी का बोझ मानो हल्का हो गया।

इतनी बातें होती रहीं, मगर किसी भी तरफ़ से किसी ने भी महेन्द्र का नाम न लिया। पहले बिहारी से महेन्द्र की चर्चा ही राजलक्ष्मी की एकमात्र बात हुआ करती थी। महेन्द्र ने

अपनी माँ का इसके लिए बहुत बार मज़ाक भी उड़ाया है। आज उसी राजलक्ष्मी की ज़बान पर भूलकर भी महेन्द्र का नाम न आते देखकर बिहारी दंग रह गया।

राजलक्ष्मी को झपकी लग गयी। बाहर जाकर बिहारी ने अन्नपूर्णा से कहा—"माँ की बीमारी तो सहज नहीं लगती।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"यह तो साफ़ ही देख रही हूँ।" कहकर अन्नपूर्णा खिड़की के पास बैठ गयीं।

बड़ी देर चुप रहकर बोलीं—"महेन्द्र को तू खोज नहीं लाएगा, बेटे! अब तो देर करना वाजिब नहीं जँचता।"

बिहारी कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"जो हुक्म करोगी, वह करूँगा। उसका पता मालूम है किसी को?"

अन्नपूर्णा—"पता ठीक-ठीक किसी को मालूम नहीं, ढूँढना पड़ेगा। और एक बात तुमसे कहूँ—आशा का खयाल करो। अगर बिनोदिनी के चंगुल से महेन्द्र को तू न निकाल सका, तो वह ज़िंदा न रहेगी।"

मन-ही-मन तीखी हँसी-हँसकर बिहारी ने सोचा, 'मैं दूसरे का उद्धार करूँ? हे भगवान, मेरा उद्धार कौन करे!' बोला—"बिनोदिनी के जादू से महेन्द्र को सदा के लिए बचा सकूँ, मैं ऐसा कौन-सा मन्तर जानता हूँ, चाची!"

इतने में मैली-सी धोती पहने आधा घूँघट निकाले आशा अपनी मौसी के पाँवों के पास आ बैठी। उसने समझा था, दोनों में राजलक्ष्मी की बीमारी के बारे में बातें हो रही हैं इसीलिए चली आई। पतिव्रता आशा के चेहरे पर गुम-सुम दुःख की मौन महिमा देखकर बिहारी के मन में एक अपूर्व भक्ति का संचार हुआ। शोक में गर्म आँसू से सिंचकर इस तरुणा ने पिछले युग की देवियों-जैसी एक अटूट मर्यादा पाई है।

राजलक्ष्मी की दवा और पथ्य के बारे में आशा से बातें करके बिहारी ने उसे वहाँ से जब विदा किया, तो एक उसाँस भरकर उसने अन्नपूर्णा से कहा—"महेन्द्र को मैं उस चंगुल से निकालूँगा।"

बिहारी महेन्द्र के बैंक में गया। वहाँ उसे पता चला महेन्द्र इन दिनों उनकी इलाहाबाद-शाखा से लेन-देन करता है।

49

स्टेशन जाकर बिनोदिनी औरतों वाले ड्योढ़े दर्ज़े के डिब्बे में जा बैठी। महेन्द्र ने कहा, "अरे, कर क्या रही हो, मैं तुम्हारा दूसरे दर्ज़े का टिकट ले रहा हूँ।"

वह बोली "बेजा क्या है, यहाँ आराम से ही रहूँगी।" महेन्द्र ताज्जुब में पड़ गया। बिनोदिनी स्वभाव से ही शौकीन थी। गरीबी का कोई भी लक्षण उसे न सुहाता था। अपनी गरीबी को वह अपने लिए अपमानजनक ही मानती थी। महेन्द्र ने इतना समझ लिया था कि कभी उसके घर की खुशहाली, विलास की सामग्रियों और औरों की अपेक्षा उनके धनी होने के गौरव ने ही बिनोदिनी के मन को आकर्षित किया था। इस धन-दौलत की, इन सारे आराम और गौरव की वह सहज ही मालकिन हो सकती थी, इस कल्पना ने उसे बड़ा उत्तेजित कर दिया था। आज जब उसको महेन्द्र पर प्रभुत्व पाने का मौका मिला है, अनचाहे भी वह उसकी धन-दौलत को अपने काम में ला सकती है, तो वह क्यों ऐसी असह्य उपेक्षा से यों तनकर तकलीफ़देह शर्मनाक दीनता अपना रही है? वह महेन्द्र पर कम-से-कम निर्भर रहना चाह रही थी।

महेन्द्र ने पूछा—"पछाँह की तरफ़ जहाँ भी चाहे, चलो! सुबह जहाँ गाड़ी रुकेगी उतर पड़ेंगे।"

महेन्द्र को ऐसी यात्रा में कोई आकर्षण नहीं। आराम न मिले तो तकलीफ़ होती है। बड़े शहर में रहने की अनुकूल जगह न मिले तो मुश्किल। इधर मन में यह डर लगा रहा कि बिनोदिनी चुपचाप कहीं उतर न पड़े।

इस तरह बिनोदिनी शनि ग्रह की तरह घूमने और महेन्द्र को घुमाने लगी। कहीं भी चैन न लेने दिया। बिनोदिनी बड़ी जल्दी दूसरे को अपना बना सकती है। कुछ ही देर में हमसफरों से मिताई कर लेती। जहाँ जाना होता वहाँ की सारी बातों का अता-पता लगा लेती, धर्मशला में ठहरती और जहाँ जो कुछ देखने जैसा होता, उन बन्धुओं की मदद से देखती। अपनी आवश्यकता से महेन्द्र बिनोदिनी के आगे रोज़-रोज़ अपने को बेकार समझने लगा। टिकट लेने के सिवा कोई काम नहीं। शुरू-शुरू के कुछ दिनों तक वह बिनोदिनी के साथ-साथ चक्कर काटा करता था, लेकिन धीरे-धीरे वह असह्य हो गया। खा-पीकर वह सो जाने की फ़िक्र में होता, बिनोदिनी तमाम दिन घूमा करती। माता के लाड़ में पला महेन्द्र यों भी चल सकता है, कोई सोचता भी न था।

एक दिन इलाहाबाद स्टेशन पर दोनों गाड़ी का इन्तज़ार कर रहे थे। किसी वजह से गाड़ी आने में देर हो रही थी। इस बीच और जो गाड़ियाँ आ-जा रही थीं, बिनोदिनी उनके

मुसाफिरों को गौर से देख रही थी। शायद उसे यह उम्मीद थी कि पछाँह में घूमते हुए चारों तरफ़ देखते-देखते अचानक किसी से भेंट हो जाएगी। कम-से-कम बन्द गली के सुनसान घर में बेकार बैठकर घुट-घुट मरते रहने की अपेक्षा खोज-बीन में, इस खुली राह की चहल-पहल में शान्ति थी।

अचानक उधर काँच के एक बक्स पर नज़र पड़ते ही बिनोदिनी चौंक उठी। उसमें उन लोगों की चिट्ठियाँ रखी जाती हैं, जिनका पता नहीं चलता। उसी बक्स के पत्रों में से एक में उसने बिहारी का नाम देखा। बिहारी नाम कुछ असाधारण नहीं। यह समझने की कोई वजह न थी कि यह बिहारी बिनोदिनी का ही वांछित बिहारी का सन्देह न हुआ। उसने ठिकाना याद कर लिया। महेन्द्र एक बेंच पर बड़ा खुश बैठा था। बिनोदिनी उसके पास जाकर बोली—"कुछ दिनों यहीं रहूँगी।"

बिनोदिनी अपने इशारे पर महेन्द्र को नचा रही थी और फिर भी उसके भूखे-प्यासे मन को खुराक तक न देती थी, इससे उसके पौरुष गर्व को ठेस लग रही थी और उसका मन दिन-प्रतिदिन बागी होता जा रहा था। इलाहाबाद रुककर कुछ दिन सुस्ताने का मौका मिले तो मानो वह भी जी जाए—लेकिन इच्छा के अनुकूल होने के बावजूद उसका मन बिनोदिनी के खयाल पर राज़ी होने को सहसा तैयार न हुआ। उसने नाराज़ होकर कहा —"जब निकल ही पड़ा तो जाकर ही रहूँगा, अब लौट नहीं सकता।"

बिनोदिनी बोली—"मैं नहीं जाऊँगी।"

महेन्द्र बोला—"तो तुम अकेली रहो, मैं चलता हूँ।"

बिनोदिनी बोली—"यह सही।" और बेझिझक उसने इशारे से कुली को बुलाया और स्टेशन से चल पड़ी।

पुरुष के कर्तत्व-अधिकार से परिपूर्ण महेन्द्र स्याह-सूरत लिये बैठा रह गया। जब तक बिनोदिनी आँखों से ओझल न हो गयी, वह देखता रहा। बाहर आकर देखा, बिनोदिनी एक बग्घी पर बैठी है। उसने चुपचाप सामान रखवाया और कोचबक्स पर बैठ गया। अपने अभिमान की मिट्टी पलीद होने के बाद उसमें बिनोदिनी के सामने बैठने का मुँह न रहा।

लेकिन गाड़ी चली, तो चली। घंटा-भर बीत गया, शहर छोड़कर वह खेतों की तरफ़ जा निकली। गाड़ीवान से पूछने में महेन्द्र को संकोच हुआ। शायद गाड़ीवान यह सोचेगा कि असल में अन्दर की औरत ही मालकिन है, इस बेकार आदमी से उसने यह भी सलाह नहीं की है कि कहाँ जाना है। वह कड़वा घूँट पीकर चुपचाप कोचबक्स पर बैठा रहा।

गाड़ी यमुना के निर्जन तट पर सुन्दर ढंग से लगाए एक बगीचे के सामने आकर रुकी। महेन्द्र हैरत में पड़ गया। 'किसका है यह बगीचा? इसका पता बिनोदिनी को कैसे मालूम हुआ?'

फाटक बंद था। चीख-पुकार के बाद बूढ़ा रखवाला बाहर निकला। उसने कहा —"बगीचे के मालिक धनी हैं, बहुत दूर नहीं रहते। उनकी इजाज़त ले आएँ तो यहाँ ठहरने दूँगा।"

बिनोदिनी ने एक बार महेन्द्र की तरफ़ देखा। बगीचे के सुन्दर घर को देखकर महेन्द्र लुभा गया था—बहुत दिनों के बाद कुछ दिनों के लिए रुकने की उम्मीद से वह खुश हो

गया। बिनोदिनी से कहा—"चलो, उस धनी के पास चलें। तुम बाहर गाड़ी पर रहना, मैं अन्दर जाकर किराया तय कर लूँगा।"

बिनोदिनी बोली—"मैं अब चक्कर नहीं काट सकती। तुम जाओ, मैं तब तक यहीं सुस्ताती हूँ। डरने की कोई बात नहीं।"

महेन्द्र गाड़ी लेकर चला गया। बिनोदिनी ने उस बूढ़े ब्राह्मण को बुलाकर उसके बाल-बच्चों के बारे में पूछा; वे कौन हैं, कहाँ काम करते हैं, बच्चियों की शादी कहाँ हुई है। उसकी स्त्री के देहान्त हो जाने की बात सुनकर करुण स्वर में बोली—"ओह, तब तो तुम्हें काफ़ी तकलीफ़ है। इस उम्र में दुनिया में निरे अकेले पड़ गए हो, कोई देखने वाला नहीं!"

और बातों-बातों में बिनोदिनी ने पूछा—"यहाँ बिहारी बाबू थे न?"

बूढ़े ने कहा—"जी हाँ, थे कुछ दिन। माँजी क्या उनको पहचानती हैं?" बिनोदिनी बोली—"वे हमारे अपने ही हैं।"

बूढ़े से बिहारी का जो हुलिया मिला, उससे बिनोदिनी को कोई शुबहा न रहा। घर बुलाकर उसने सब कुछ पूछ-ताछ लिया कि बिहारी किस कमरे में सोता था, कहाँ बैठता था। उसके चले जाने के बाद से घर बन्द पड़ा था, इससे लगा कि उसमें बिहारी की गंध है। लेकिन यह पता न चल सका कि बिहारी गया कहाँ—शायद ही वह फिर लौटे।

महेन्द्र ने किराया चुकाकर मालिक से वहाँ रहने की इजाज़त ले ली।

50

शाम को महेन्द्र जब उस यमुना के तट पर जा बैठा, तो प्रेम के आवेश ने उसकी नज़रों में, साँसों में, नस-नस में, हड्डियों के बीच गाढ़े मोह रस का संचार कर दिया आसमान में डूबते सूरज की किरणों की सुनहरी वीणा वेदना की मूर्च्छना से झरती जोत के संगीत से झंकृत हो उठी!

बारिश जैसा हो रहा था। नदी अपने उद्दाम यौवन में। महेन्द्र के पास निर्दिष्ट कुछ नहीं था। उसे वैष्णव कवियों का वर्षाभिसार याद आया। नायिका बाहर निकली है; यमुना के किनारे वह अकेली खड़ी है। उस पार कैसे जाए? अरे ओ, पार करो, पार कर दो। महेन्द्र की छाती के अन्दर यही पुकार पहुँचने लगी—'पार करो'।

नदी से उस पार बड़ी दूर पर वह अभिसारिका खड़ी थी—फिर भी महेन्द्र उसे साफ़ देख पाया। उसका कोई काल नहीं, उम्र नहीं, वह चिरंतन गोपबाला है, मगर महेन्द्र ने उसे फिर भी पहचान लिया—पहचाना कि वह बिनोदिनी है। सारा विरह, सारी वेदना यौवन का सारा भार लिये वह उस युग के अभिसार के लिए चली थी और आज के युग के किनारे आ निकली है। आज के इस सूने यमुना-तट के ऊपर आकाश में वही स्वर सुनाई पड़ रहा है। 'अरे ओ, पार करो, पार कर दो!'

महेन्द्र मतवाला हो गया। बिनोदिनी उसे ठुकरा देगी, चाँदनी रात के इस स्वर्ग-खण्ड को वह लक्ष्मी बनकर पूरा न करेगी, वह सोच भी नहीं सका। वह तुरन्त उठकर बिनोदिनी को ढूँढने चल दिया।

सोने के कमरे में गया। कमरा फूलों की खुशबू से महमहा रहा था। खुली खिड़कियों से छनकर चाँदनी सफेद बिछौने पर आ पड़ी थी। बगीचे के फूलों से सजी वह बसन्त की बिखरी लता-जैसी चाँदनी में बिस्तर पर लेटी हुई थी।

महेन्द्र का मोह दुगुना हो गया। उसने रुँधे गले से कहा—"बिनोद, मैं यमुना के तट पर तुम्हारी राह देख रहा था और तुम यहाँ इन्तज़ार कर रही हो, यह सन्देशा मुझे चाँद ने दिया। इसी से मैं यहाँ आ गया।"

यह कहकर महेन्द्र बिस्तर पर बैठने ही जा रहा था कि बिनोदिनी उठ बैठी और दायाँ हाथ बढ़ाकर बोली—"जाओ; इस बिस्तर पर मत बैठो।" पालवाली नाव मानो रेत में अटक गयी—महेन्द्र कहा न माने, इसीलिए बिनोदिनी बिस्तर से उतरकर खड़ी हो गयी।

महेन्द्र ने पूछा—"तो तुम्हारा यह श्रृंगार किसके लिए है? किसका इन्तज़ार कर रही हो?"

बिनोदिनी ने अपनी छाती को दबाकर कहा—"मैं जिसके लिए सजी-सँवरी, वह मेरे अन्तःस्तल में है।"

महेन्द्र ने पूछा—"आखिर कौन? बिहारी।"

बिनोदिनी बोली—"उसका नाम तुम अपनी ज़बान पर मत लाओ!"

महेन्द्र—"उसी के लिए तुम पछाँह का दौरा कर रही हो?"

बिनोदिनी—"हाँ, उसी के लिए।"

महेन्द्र—"उसका पता मालूम है?"

बिनोदिनी—"मालूम नहीं, मगर जैसे भी हो, मालूम करूँगी।"

महेन्द्र—"तुम्हें यह हर्गिज़ न मालूम होने दूँगा।"

बिनोदिनी—"न सही, मगर मेरे हृदय से उसे निकाल नहीं पाओगे।"

यह कहकर बिनोदिनी ने आँखें बन्द करके अपने हृदय में एक बार बिहारी का अनुभव कर लिया।

फूलों से सजी विरह-विधुरा बिनोदिनी से एक साथ ही खिंचकर और ठुकराया जाकर महेन्द्र अचानक भयंकर हो उठा; वह मुट्ठी कसकर बोला—"छुरी से चीरकर मैं उसे तुम्हारे कलेजे से निकाल बाहर करूँगा।"

बिनोदिनी ने दृढ़ता से कहा—"तुम्हारे प्रेम से तुम्हारी यह छुरी मेरे हृदय में आसानी से घुस सकेगी।"

महेन्द्र—"तुम मुझसे डरती क्यों नहीं? यहाँ तुम्हें बचाने वाला कौन है?"

बिनोदिनी—"बचाने वाले तुम हो! तुम्हीं मुझे अपने से बचाओगे।"

महेन्द्र—"इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास अब भी है!"

बिनोदिनी—"यह न होता तो मैं खुदकुशी कर लेती, तुम्हारे साथ परदेस न आती।"

महेन्द्र—"क्यों न कर ली खुदकुशी—उस विश्वास की फाँस मेरे गले में डाल कर मुझे देश-देशान्तर में घसीटकर क्यों मार रही हो? सोच देखो, तुम मर जातीं तो कितना कल्याण होता!"

बिनोदिनी—"जानती हूँ, मगर जब तक बिहारी की उम्मीद है, मर न पाऊँगी।"

महेन्द्र—"जब तक तुम नहीं मरतीं, तब तक मेरी आशा भी नहीं मरने की, मैं भी छुटकारा नहीं पाने का। आज से मैं हृदय से भगवान से तुम्हारी मृत्यु की कामना करता हूँ। तुम मेरी भी न बनो, बिहारी की भी नहीं! जाओ, मुझे मुक्ति दो। मेरी माँ रो रही है, स्त्री रो रही है, उनके आँसू दूर से ही मुझे जला रहे हैं। जब तक तुम मर नहीं जातीं; मेरी और दुनिया-भर की आशा से परे नहीं हो जातीं, तब तक मुझे उनके आँसू पोंछने का अवसर नहीं मिलेगा।"

इतना कहकर महेन्द्र बड़ी तेज़ी से बाहर निकल गया। अकेली पड़ी बिनोदिनी अपने चारों तरफ़ माया का जाल बुन रही थी, उसे वह फाड़ गया। बिनोदिनी खड़ी-खड़ी चुपचाप बाहर देखती रही—आकाश-भरी चाँदनी को खाली करके उसका सारा संचित अमृत कहीं चला गया? वह क्यारियों वाला बगीचा, उसके बाद रेती-भरा किनारा, उसके

बाद नदी का काला-काला पानी, उसके बाद सारा पार का धुँधलापन—सब मानो एक सादे कागज़ पर पेंसिल का बना चित्र हो—नीरस, बेमानी।

उसने महेन्द्र को किस बुरी तरह अपनी ओर खींचा है खौफनाक तूफ़ान की तरह कैसे उसे जड़ समेत उखाड़ लिया है—यह अनुभव करके आज उसका हृदय मानो और भी बेचैन हो गया। उसमें यह सारी शक्ति तो है, फिर भी बिहारी पूर्णिमा की रात में उमड़े हुए समुद्र की तरह उसके सामने आकर पछाड़ क्यों नहीं खाता? क्यों बे-मतलब प्यार की कचोट रोज़ उसके प्यार में आकर रोती है?

उसे लगा सब बेकार और निरर्थक है। इतनी व्यर्थता के बावजूद जो जहाँ है, वहीं खड़ा है—दुनिया में किसी बात का कोई कार्यक्रम नहीं। सूरज तो कल भी उगेगा और दुनिया अपने छोटे-से काम को भी न भूलेगी। और बिहारी जैसे दूर रहा है, वैसे ही दूर रहेगा और उस ब्राह्मण के बच्चे को किताब का नया पाठ पढ़ाता रहेगा।

उसकी आँखों से आँसू फूटकर झरने लगे। अपनी इच्छा और शक्ति लिये वह किस पत्थर को ढकेल रही है? उसका हृदय लहू से नहा उठा, लेकिन उसकी तकदीर सुई की नोक के बराबर भी न खिसकी।

51

रात में महेन्द्र सोया नहीं—थकावट के मारे सुबह-सुबह उसे नींद आई। सुबह आठ-नौ बजे के करीब जगकर वह झट उठ बैठा। पिछली रात की कोई अधूरी पीड़ा नींद के भीतर-ही-भीतर घूमती रही थी। जागते ही महेन्द्र उसकी तकलीफ़ महसूस करने लगा। कुछ ही देर में रात की सारी घटना मन में ताज़ा हो गयी। सुबह की उस धूप में, पूरी नींद न आ पाने की थकावट से सारी दुनिया और ज़िन्दगी बड़ी सूखी-सी लगी। घर छोड़ने की ग्लानि, धर्म छोड़ने का परिताप और इस उद्‌भ्रांत जीवन की ये ज़िल्लतें आखिर वह किसके लिए झेल रहा है! मोह के आवेश से रहित सुबह की इस धूप में महेन्द्र को लगा, वह बिनोदिनी को प्यार नहीं करता। उसने रास्ते की ओर झाँका—सारी दुनिया परेशान-सी काम के पीछे भाग रही है और आत्म-गौरव को कीचड़ में डुबोकर एक बेरहम औरत के पैरों से लिपटे रहने की जो नादानी है, वह महेन्द्र की निगाहों में स्पष्ट हो उठी। आवेग के किसी बड़े झोंके के बाद हृदय में अवसाद आता है, ऐसे वक्त थका-हारा हृदय अनुभूति के विषय को कुछ समय के लिए दूर हटाना चाहता है।

फिर तो धिक्कार की इन चोटों से अपने को छुड़ाकर घर जाने के लिए महेन्द्र ललक उठा, बिहारी को निर्भर करने योग्य अडिग मिताई बड़ी बेशकीमती लगने लगी। महेन्द्र मन-ही-मन कह उठा—'जो वास्तव, गम्भीर और स्थायी होता है, उसमें अनायास, बाधा-विहीन-सा अपने को पूरी तरह खोया जा सकता है, इसीलिए उसके गौरव को हम नहीं समझते। जो महज धोखा है, जिसकी तृप्ति में भी सुख का नाम नहीं, चूँकि वह हमें अपने पीछे घुड़दौड़-सी कराता है, इसलिए हम उसे अपनी चरम कामना का धन समझते हैं।'

महेन्द्र ने तय किया—'मैं आज ही अपने घर जाऊँगा। बिनोदिनी जहाँ भी रहना चाहेगी, वहीं उसका इन्तजाम करके मैं मुक्त हो जाऊँगा'—यह ज़ोर से उच्चारण करते ही उसके मन में एक आनन्द का उदय हुआ। लगातार दुविधा का जो भार वह ढोता चला आ रहा था, हल्का हो गया। अब तक होता ऐसा रहा कि, अभी-अभी जो बात उसे रुचती न थी, दूसरे ही क्षण उसे मानने को मजबूर होना पड़ता था, हाँ-ना कहते न बनता; उसकी अन्तरात्मा उसे जो आदेश देती, सदा बलपूर्वक उसे दबाकर वह दूसरी ही राह पर चला करता। अभी जैसे ही उसने ज़ोर से कहा—'मैं मुक्त हो जाऊँगा'—वैसे ही शरण पाकर उसके झकझोरे हुए हृदय ने उसे बधाई दी।

महेन्द्र बिस्तर से उठा, मुँह-हाथ धोया और बिनोदिनी से मिलने गया। देखा, कमरा अन्दर से बन्द है। दरवाज़े पर धक्का देकर पूछा—"सो रही हो?"

बिनोदिनी बोली—"नहीं, अभी जाओ!"

महेन्द्र ने कहा—"तुमसे ज़रूरी बात करनी है। ज़्यादा देर न रुकूँगा।"

बिनोदिनी बोली—"बात अब मैं नहीं सुनना चाहती, तुम जाओ, मुझे तंग मत करो—अकेली रहने दो।"

और दिन होता, तो इससे महेन्द्र का आवेग और बढ़ ही जाता। लेकिन आज उसे बेहद घृणा हुई। सोख, इस मामूली औरत के आगे अपने-आपको मैंने ऐसा गया-बीता बना छोड़ा है कि अब उसमें मुझे बुरी तरह दुत्कारकर दूर कर देने की हिम्मत हो गयी है? यह अधिकार इसका स्वाभाविक नहीं। मैंने ही यह अधिकार देकर इसके मिज़ाज को सातवें आसमान पर पहुँचा दिया है।

बिनोदिनी की इस झिड़की से महेन्द्र ने अपने में अपनी श्रेष्ठता के अनुभव की कोशिश की। उसके मन ने कहा—'मैं विजयी होऊँगा—इसके बन्धन तोड़कर चला जाऊँगा।'

भोजन करके महेन्द्र रुपया निकालने बैंक गया। रुपया निकाला और आशा तथा माँ के लिए कुछ नई चीज़ें खरीदने के खयाल से वह बाजार की दुकानों में घूमने लगा।

बिनोदिनी के दरवाज़े पर एक बार फिर धक्का पड़ा। पहले तो आजिज़ी से उसने कोई जवाब ही न दिया; लेकिन जब बार-बार धक्का पड़ने लगा तो आग-बबूला होकर दरवाज़ा खोलते हुए उसने कहा—"नाहक क्यों बार-बार मुझे तंग करने आते हो तुम?"

बात पूरी करने के पहले ही उसकी नज़र पड़ी—बिहारी खड़ा था। कमरे में महेन्द्र है या नहीं, यह देखने के लिए बिहारी ने एक बार भीतर की तरफ़ झाँका। देखा, कमरे में सूखे फूल और टूटी मालाएँ बिखरी पड़ी थीं। उसका मन ज़बर्दस्त ढंग से विमुख हो उठा। यह नहीं कि बिहारी जब दूर था, तो उसके मन में बिनोदिनी के रहन-सहन के बारे में सन्देह का कोई चित्र आया ही नहीं, लेकिन कल्पना की लीला ने उस चित्र को ढककर भी एक दमकती हुई मोहिनी छवि खड़ी कर रखी थी। बिहारी जिस समय इस बगीचे में कदम रख रहा था, उस समय उसका दिल धड़कने लगा था—कल्पना की प्रतिमा को कहीं चोट न पहुँचे इस आशंका से उसका हृदय संकुचित हो रहा था। और बिनोदिनी के सोने के कमरे के द्वार पर खड़े होते ही वही चोट लगी।

दूर रहते हुए बिहारी ने सोचा था कि अपने प्रेम के अभिषेक से मैं बिनोदिनी के जीवन की सारी कालिमा को धो दूँगा। लेकिन पास आकर देखा, यह आसान नहीं। मन में करुणा की वेदना कहाँ उपजी? बल्कि एकाएक घृणा ने जगकर उसे अभिभूत कर दिया। बिहारी ने उसे बड़ा मलिन देखा।

वह तुरन्त मुड़कर खड़ा हो गया और उसने 'महेन्द्र-महेन्द्र' कहकर पुकारा। इस अपमान से बिनोदिनी ने नम्र स्वर में कहा—"महेन्द्र नहीं है, शहर गया है।"

बिहारी लौटने लगा। बिनोदिनी बोली—"लाला जी, मैं पैर पड़ती हूँ, ज़रा देर बैठना पड़ेगा।"

बिहारी ने सोच रखा था, वह कोई आरजू-मिन्नत नहीं सुनेगा। तय कर लिया था कि नफ़रत के इस नज़ारे से तुरन्त अपने को अलग कर लेगा। लेकिन बिनोदिनी की करुण विनती से उसके कदम क्षण-भर के लिए उठ न सके।

बिनोदिनी बोली—"आज अगर तुम मुझे इस तरह ठुकराकर चल दिए, तो तुम्हारी कसम खाकर कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी।"

बिहारी पलटकर खड़ा हो गया, बोला—"तुम अपने जीवन से मुझे जकड़ने की कोशिश क्यों करती हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मैं तो कभी तुम्हारी राह में नहीं आया, तुम्हारे सुख-दुःख में कभी दखल नहीं दिया।"

बिनोदिनी बोली—"तुमने मुझ पर कितना अधिकार कर रखा है, एक बार तुमसे कहा था मैंने—तुमने विश्वास नहीं किया। तो भी तुम्हारी बेरूखी में भी फिर वही कहती हूँ। बिना बोले जताने का शर्म से बताने का मौका तो तुमने मुझे दिया नहीं। तुमने मुझे पैरों से झटक दिया है, मैं फिर भी तुम्हारे पाँव पकड़कर कहती हूँ—मैं तुम्हें..."

बिहारी ने टोकते हुए कहा—"बस-बस, रहने दो, यह बात ज़बान पर मत लाओ। एतबार की गुंजाइश नहीं रही।"

बिनोदिनी—"इतर लोग इस पर विश्वास न करें, पर तुम करोगे। इसीलिए मैं तुम्हें ज़रा देर बैठने को कह रही हूँ।"

बिहारी—"मेरे विश्वास करने, न करने से क्या आता-जाता है। तुम्हारी ज़िन्दगी तो जैसी चल रही है, चलती रहेगी।"

बिनोदिनी—"इससे तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं, मैं जानती हूँ? अपना नसीब ही ऐसा है कि तुमसे मुझे सदा दूर ही रहना होगा। बस मैं केवल इतना हक़ नहीं छोड़ना चाहती कि मैं चाहे जहाँ रहूँ, मुझे ज़रा माधुर्य के साथ याद करना। मुझे मालूम है, मुझ पर तुम्हें थोड़ी-सी श्रद्धा हुई थी, मैं उसी को अपना अवलंब बनाए रहूँगी। इसीलिए मेरी पूरी बात तुम्हें सुननी होगी। मैं हाथ जोड़ती हूँ, ज़रा देर बैठो!"

"अच्छा चलो!" कहकर बिहारी उस कमरे से और कहीं जाने को तैयार हुआ।

बिनोदिनी बोली—"लाला जी, जो सोच रहे हो, वह बात नहीं है। इस कमरे को कलंक की छाया नहीं छू सकी है। कभी तुम यहाँ सोये थे—इसे मैंने तुम्हारे ही लिए उत्सर्ग करके रखा है। सूखे पड़े ये फूल तुम्हारी ही पूजा के हैं। तुम्हें यहीं बैठना होगा।"

सुनकर बिहारी के मन में पुलक का संचार हुआ। वह कमरे में गया। बिनोदिनी ने दोनों हाथों से उसे खाट का इशरा किया। बिहारी खाट पर बैठा। बिनोदिनी उसके पैरों के पास ज़मीन पर बैठी। बिनोदिनी ने बिहारी को व्यस्त होते देखकर कहा—"तुम बैठो, लाला जी! सिर की कसम तुम्हें, उठना मत। मैं तुम्हारे पैरों के पास भी बैठने लायक नहीं —दया करके ही तुमने मुझे यह जगह दी है। दूर रहूँ, तो भी इतना अधिकार मैं रखूँगी।"

यह कहकर बिनोदिनी ज़रा देर चुप रही। उसके बाद अचानक चौंककर बोली —"तुम्हारा खाना?"

बिहारी बोला—"स्टेशन से खाकर आया हूँ।"

बिनोदिनी—"मैंने गाँव से तुम्हें जो पत्र दिया था, उसे खोलकर पढ़ा और कोई जवाब न देकर उसे महेन्द्र के मार्फत लौटा क्यों दिया?"

बिहारी—"कहाँ, वह चिट्ठी तो मुझे नहीं मिली।"

बिनोदिनी—"इस बार कलकत्ता में महेन्द्र से तुम्हारी भेंट हुई थी।"

बिहारी—"तुम्हें गाँव पहुँचाकर लौटा, उसके दूसरे दिन भेंट हुई थी। उसके बाद मैं पछाँह की ओर सैर को निकल पड़ा, उससे फिर भेंट नहीं हुई।"

बिनोदिनी—"उससे पहले और एक दिन मेरी चिट्ठी पढ़कर बिना उत्तर के वापस कर दी?"

बिहारी—"नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ।"

बिनोदिनी बुत-सी बैठी रही। उसके बाद लम्बी साँस छोड़कर बोली—"सब समझ गयी। अब अपनी बात बताऊँ—मगर यकीन करो तो अपनी खुशकिस्मती समझूँ और न कर सको तो तुमको दोष न दूँगी, मुझ पर यकीन करना मुश्किल है।"

बिहारी का हृदय पसीज गया। भक्ति से झुकी बिनोदिनी की पूजा का वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। बोला—"भाभी, तुम्हें कुछ कहना न पड़ेगा। बिना कुछ सुने ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। मैं तुमसे घृणा नहीं कर सकता। तुम अब एक भी शब्द न कहना!"

सुनकर बिनोदिनी की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने बिहारी के चरणों की धूल ली। बोली—"सब न सुनोगे, तो मैं जी न सकूँगी। थोड़ा धीरज रखकर सुनना होगा—तुमने मुझे जो आदेश दिया था, मैंने उसी को सिर माथे उठा लिया था। तुमने मुझे पत्र तक न लिखा, तो भी अपने गाँव में मैं लोगों की निंदा सहकर ज़िन्दगी बिता देती, तुम्हारे स्नेह के बदले तुम्हारे शासन को ही स्वीकार करती—लेकिन विधाता उसमें भी वाम हुए। जिस पाप को मैंने जगाया, उसने मुझे निर्वासन में भी न टिकने दिया। महेन्द्र वहाँ पहुँचा, मेरे घर पर जाकर उसने सबके सामने मेरी मिट्टी पलीद की। गाँव में मेरे लिए जगह न रह गयी। मैंने दुबारा तुम्हें बेहद तलाशा कि तुम्हारा आदेश लूँ, पर तुमको न पा सकी। मेरी खुली चिट्ठी तुम्हारे यहाँ से लाकर मुझे देते हुए महेन्द्र ने धोखा दिया। मैंने समझ, तुमने मुझे एकबारगी त्याग दिया। इसके बाद मैं बिल्कुल नष्ट हो सकती थी—मगर पता नहीं तुममें क्या है, तुम दूर रहकर भी बचा सकते हो। मैंने दिल में तुम्हें जगह दी है, इसी से पवित्र वही कठिन परिचय सख्त सोने की तरह, ठोस मणि की तरह मेरे मन में है, उसने मुझे मूल्यवान बनाया है। देवता, तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ, वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।"

बिहारी चुप रहा। बिनोदिनी भी और कुछ न बोली। तीसरे पहर की धूप पल-पल पर फीकी पड़ने लगी। ऐसे समय महेन्द्र दरवाज़े पर आया और बिहारी को देखकर चौंक पड़ा। बिनोदिनी के प्रति उसमें जो उदासीनता आ रही थी, ईर्ष्या से वह जाने-जाने को हो गयी। बिनोदिनी को बिहारी के पाँवों के पास बैठी देखकर ठुकराए हुए महेन्द्र को चोट पहुँची।

व्यंग्य के स्वर में महेन्द्र ने कहा—"तो अब रंगमंच से महेन्द्र का प्रस्थान हुआ, बिहारी का प्रवेश! दृश्य बेहतरीन है। तालियाँ बजाने को जी चाहता है। लेकिन उम्मीद है, यही अन्तिम अंक है। इसके बाद अब कुछ भी अच्छा न लगेगा।"

बिनोदिनी का चेहरा तमतमा उठा। महेन्द्र की शरण जब उसे लेनी पड़ी है, तो इस अपमान का क्या जवाब दे—व्याकुल होकर उसने केवल बिहारी की ओर देखा।

बिहारी खाट से उठा। बोला—"महेन्द्र, कायर की तरह बिनोदिनी का यों अपमान न करो—तुम्हारी भलमनसाहत अगर तुम्हें नहीं रोकती, तो रोकने का अधिकार मुझको है।"

महेन्द्र ने हँसकर कहा—"इस बीच अधिकार भी हो गया? आज तुम्हारा नया नामकरण है—बिनोदिनी!"

अपमान करने का हौंसला बढ़ता ही जा रहा है, यह देखकर बिहारी ने महेन्द्र का हाथ दबाया। कहा—"महेन्द्र, मैं बिनोदिनी से ब्याह करूँगा, सुन लो! लिहाजा संयत होकर बात करो।"

महेन्द्र अचरज के मारे चुप हो गया और बिनोदिनी चौंक उठी। उसकी छाती के अन्दर का लहू खलबला उठा।

बिहारी ने कहा—"और एक खबर देनी है तुम्हें। तुम्हारी माँ मृत्यु-सेज पर हैं। बचने की कोई उम्मीद नहीं। मैं आज रात को ही गाड़ी से जाऊँगा—बिनोदिनी भी मेरे साथ जाएगी।"

बिनोदिनी ने चौंककर पूछा—"बुआ बीमार हैं?"

बिहारी बोला—"हाँ, सख्त। कब क्या हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता।"

यह सुनकर महेन्द्र ने और कुछ न कहा! चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

बिनोदिनी ने बिहारी से पूछा—"अभी-अभी तुमने जो कहा, तुम्हारी ज़बान पर यह बात कैसे आई? मज़ाक तो नहीं?"

बिहारी बोला—"नहीं, मैंने ठीक ही कहा है। मैं तुमसे ब्याह करूँगा।"

बिनोदिनी—"किसलिए? उद्धार करने के लिए।"

बिहारी—"नहीं, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, इसलिए।"

बिनोदिनी—"यही मेरा पुरस्कार है। इतना भर स्वीकार किया, मेरे लिए यही बहुत है, इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं चाहती। ज़्यादा मिले भी तो रहने का नहीं।"

बिहारी—"क्यों?"

बिनोदिनी—"वह सोचते हुए भी शर्म आती है। मैं विधवा हूँ, बदनाम हूँ—सारे समाज के सामने तुम्हारी फजीहत करूँ, यह हर्गिज़ नहीं होगा। छिः, यह बात ज़बान पर न लाओ।"

बिहारी—"तुम मुझे छोड़ दोगी?"

बिनोदिनी—"छोड़ने का अधिकार मुझे नहीं। चुपचाप तुम बहुतों की बहुत भलाई किया करते हो—अपने वैसे ही किसी व्रत का कोई-सा भार मुझे देना, उसी को ढोती हुई मैं अपने-आपको तुम्हारी दासी समझ करूँगी। लेकिन विधवा से तुम ब्याह करोगे, छिः! तुम्हारी उदारता से सब-कुछ मुमकिन है, लेकिन मैं यह काम करूँ, समाज में तुम्हें नीचा करूँ तो ज़िन्दगी में यह सिर कभी उठा न सकूँगी।"

बिहारी—"मगर मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

बिनोदिनी—"उसी प्यार के अधिकार से आज मैं एक ढिठाई करूँगी।"

इतना कहकर बिनोदिनी झुकी। उसने पैर की उँगली को चूम लिया। पैरों के पास बैठकर बोली—"तुम्हें अगले जन्म में पा सकूँ, इसके लिए मैं तपस्या करूँगी। इस जन्म में अब कोई उम्मीद नहीं। मैंने बहुत दुःख उठाया—काफ़ी सबक मिला। यह सबक अगर

भूल बैठती, तो मैं तुम्हें नीचा दिखाकर और भी नीची बनती। लेकिन तुम ऊँचे हो, तभी आज मैं फिर से सिर उठा सकी हूँ—अपने इस आश्रय को मैं धूल में नहीं मिला सकती।"

बिहारी गम्भीर हो रहा।

बिनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा—"गलती मत करो—मुझसे विवाह करके तुम सुखी न होगे, अपना गौरव गँवा लोगे—मैं भी अपना गर्व खो बैठूँगी। तुम सदा निर्लिप्त रहो, प्रसन्न रहो। आज भी तुम वही हो—मैं दूर से ही तुम्हारा काम करूँगी। तुम खुश रहो, सदा सुखी रहो।"

52

महेन्द्र माँ के कमरे में जा ही रहा था कि आशा दौड़ी-दौड़ी आई। कहा—"अभी वहाँ मत जाओ!"

महेन्द्र ने पूछा—"क्यों?"

आशा बोली—"डॉक्टर ने बताया है, माँ को चाहे दुःख का हो चाहे सुख का—अचानक कोई धक्का लगने से आफ़त हो सकती है।"

महेन्द्र बोला—"मैं दबे पाँव उनके सिरहाने की तरफ़ जाकर एक बार देख आऊँ ज़रा। उन्हें पता न चलेगा।"

आशा—"नहीं, अभी आप माँ से नहीं मिल सकते।"

महेन्द्र—"तो तुम करना क्या चाहती हो?"

आशा—"पहले बिहारी बाबू उन्हें देख आएँ, वे जैसा कहेंगे, वही करूँगी।"

इतने में बिहारी आ गया। आशा ने उसे बुलवाया था।

बिहारी को देखकर आशा को थोड़ा भरोसा हुआ। बोली—"तुम्हारे जाने के बाद से माँ और भी अकुला उठी हैं, देवर जी। पहले दिन जब तुम न दिखाई पड़े उन्होंने पूछा—'बिहारी कहाँ गया?' मैंने कहा—'वे एक ज़रूरी काम से बाहर गए हैं। बृहस्पति तक लौट आएँगे।' उसके बाद से वे रह-रहकर चौंक-चौंक पड़ती हैं। मुँह से कुछ नहीं कहतीं लेकिन अन्दर-ही-अन्दर मानो किसी की राह देख रही हैं। कल तुम्हारा तार मिला। मैंने उन्हें बताया, तुम आ रहे हो। उन्होंने आज तुम्हारे लिए खास तौर से खाने का इन्तज़ाम क रवाने को कहा है। तुम्हें जो-जो चीज़ें अच्छी लगती हैं, सब मँगवाई हैं, सामने बरामदे में रसोई का प्रबन्ध कराया है, अन्दर से वह खुद बताती रहेंगी। डॉक्टर ने लाख मना किया, एक न सुनी। अभी-अभी ज़रा देर पहले मुझे बुलाकर कहा, 'बहू, रसोई तुम अपने हाथों बनाना, आज बिहारी को मैं अपने सामने बैठाकर खिलाऊँगी'।

सुनते ही बिहारी की आँखें छलछला उठीं। पूछा—"माँ हैं कैसी?"

आशा ने कहा—"तुम खुद चलकर देखो, मुझे तो लगता है, बीमारी और बढ़ गयी है।"

बिहारी अन्दर गया। महेन्द्र खड़ा अचरज में पड़ गया। आशा ने मज़े में गृहस्थी सँभाल ली है—कितनी आसानी से महेन्द्र को अन्दर जाने से रोक दिया। न संकोच किया, न रूठी।

महेन्द्र आज कितना सकुचा गया है! वह अपराधी है—चुपचाप खड़ा रहा, बाहर। माँ के कमरे में न घुस सका।

फिर भी यह अजीब बात—बिहारी से वह कैसे बेखटके बोली। सलाह-परामर्श सब उसी से। वही आज इस घर का सबसे बड़ा शुभचिंतक है, एकमात्र रक्षक है। उसको कहीं रोक नहीं, उसी के निर्देश पर सब-कुछ चलता है। कुछ दिनों के लिए महेन्द्र जो स्थान छोड़कर चला गया था, लौटकर देखा, वह स्थान अब ठीक वैसा ही नहीं है।

बिहारी के अन्दर जाते ही राजलक्ष्मी ने पूछा—"तू आ गया, बेटे?"

बिहारी बोला—"हाँ माँ, लौट आया।"

राजलक्ष्मी ने पूछा—"काम हो गया तेरा?"

खुश होकर बिहारी बोला—"हाँ माँ, हो गया। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रही।"

और उसने एक बार बाहर की तरफ़ देखा।

राजलक्ष्मी—"बहू आज तेरे लिए खुद खाना पकाएगी—मैं यहाँ से उसे बताती जाऊँगी। डॉक्टर ने मना किया है—मगर अब काहे की मनाही, बेटे! मैं क्या इन आँखों से एक बार तुम लोगों का खाना भी न देख पाऊँगी!"

बिहारी ने कहा—"डॉक्टर के मना करने की बात तो समझ में नहीं आती— तुम न बताओगी तो चलेगा कैसे? छुटपन से तुम्हारे हाथ की ही रसोई हमें भायी है—महेन्द्र भैया का जी तो पश्चिम की दाल-रोटी से ऊब गया है—तुम्हारे हाथ की बनाई मछली मिलेगी, तो वह जी जाएगा। आज हम दोनों भाई जैसे बचपन में करते थे, होड़ लगाकर खाएँगे। तुम्हारी बहू जुटा सके, तब जानो।"

राजलक्ष्मी समझ तो गयी थीं कि बिहारी के साथ महेन्द्र आया है, फिर भी उसकी धड़कन बढ़ गयी।

बिहारी ने कहा—"पछाँह जाकर महेन्द्र की सेहत बहुत-कुछ सुधर गयी है। आज सफ़र से आया है, इसलिए थका-माँदा लगता है। नहाने से ठीक हो जाएगा।"

राजलक्ष्मी ने फिर भी महेन्द्र के बारे में कुछ न कहा। इस पर बिहारी ने कहा—"माँ, महेन्द्र बाहर ही खड़ा है। जब तक तुम नहीं बुलाओगी वह नहीं आएगा।"

राजलक्ष्मी कुछ बोलीं नहीं, सिर्फ़ दरवाज़े की तरफ़ नज़र उठाई। उनका उधर देखना था कि बिहारी ने कहा—"महेन्द्र भैया, आ जाओ!"

महेन्द्र धीरे-धीरे अन्दर आया। कलेजे की धड़कन कहीं एकाएक थम जाए, इस डर से राजलक्ष्मी तुरन्त महेन्द्र की ओर न देख सकीं। आँखें अधमुँदी रहीं। बिस्तर की तरफ़ ताककर महेन्द्र चौंक उठा। उसे मानो किसी ने पीटा हो।

माँ के पैरों के पास सिर रखकर उनका पैर पकड़े पड़ा रहा। कलेजे की धड़कन से राजलक्ष्मी की समूची देह काँपती रही। कुछ देर बाद अन्नपूर्णा ने धीमे-से कहा—"दीदी, तुम महेन्द्र को कहो कि वह उठे, नहीं तो वह यहीं बैठा रहेगा।"

बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा—"महेन्द्र उठ!" बहुत दिनों के बाद महेन्द्र का जो नाम लिया तो उनकी आँखों से आँसू की धारा फूट पड़ी। आँसू बहने से मन की पीड़ा कुछ हल्की हुई। महेन्द्र उठा, ज़मीन पर घुटना गाड़, खाट की पाटी पर छाती रखकर माँ के

पास बैठा। राजलक्ष्मी ने बड़ी तसल्ली से करवट बदली। दोनों हाथों से अपनी ओर खींचकर उन्होंने महेन्द्र का सिर सूँघा, और ललाट को चूम लिया। महेन्द्र ने रुँधे कंठ से कहा—"मैंने तुम्हें बड़ी तकलीफ़ पहुँचाई है, माँ मुझे माफ़ करो।"

कलेजा ठंडा हुआ तो राजलक्ष्मी ने कहा—"ऐसा मत कह बेटे, तुझे माफ़ किए बिना मैं जी सकती हूँ भला! बहू कहाँ गयी? बहू!"

आशा पास ही दूसरे कमरे में पथ्य तैयार कर रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लायीं।

राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को ज़मीन पर से उठकर बिस्तर पर बैठने का इशारा किया। महेन्द्र बैठा, तो उसकी बगल की जगह दिखाती हुई राजलक्ष्मी ने कहा—"तुम यहाँ बैठो, बहू! आज तुम दोनों को मैं पास-पास बिठाकर देख लूँ, तभी मेरी तकलीफ़ मिटेगी। बहू, आज मुझसे शर्म न करो! महेन्द्र के लिए जो मलाल है, उसे भी भुला दो। उसके पास बैठो।"

इस पर आशा घूँघट निकाले धड़कते दिल से लजाती हुई आकर महेन्द्र के पास बैठ गयी। राजलक्ष्मी ने महेन्द्र का दाहिना हाथ लिया और आशा के दाहिने हाथ से मिलाकर दबाया। बोली—"अपनी इस बिटिया को मैं तेरे हाथों सौंप जाती हूँ, महेन्द्र—इसका खयाल रखना, ऐसी लक्ष्मी तुझे और कहीं नहीं मिलेगी। मँझली आओ, दोनों को आशीर्वाद दो, तुम्हारे पुण्य से ही दोनों का मंगल हो।"

अन्नपूर्णा उनके सामने गयीं। दोनों ने आँसू-भरे नेत्रों से उनके चरणों की धूल ली। उन्होंने दोनों के माथे को चूमा—"ईश्वर तुम्हारा मंगल करे!"

राजलक्ष्मी—"बिहारी, आगे आओ बेटे, महेन्द्र को तुम माफ़ी दो।"

बिहारी ज्यों ही महेन्द्र के सामने जाकर खड़ा हुआ, उसने उसे बाँहों में लपेटकर कसकर छाती से लगा लिया।

राजलक्ष्मी ने कहा—"मैं आशीर्वाद देती हूँ महेन्द्र, बिहारी छुटपन से तेरा जैसा मित्र था, सदा वैसा ही रहे।"

इसके बाद राजलक्ष्मी थकावट के मारे और कुछ न कह सकीं। चुप हो गयीं। बिहारी कोई उत्तेजक दवा उनके होंठों तक ले गया। हाथ हटाकर राजलक्ष्मी ने कहा—"अब दवा नहीं बेटे, अब मैं भगवान को याद करूँ—वही मुझे दुनिया की सारी जलन की दवा देंगे। महेन्द्र, तुम लोग थोड़ा आराम कर लो बेटे! बहू, रसोई चढ़ा दो!"

शाम को महेन्द्र और बिहारी राजलक्ष्मी की खाट के पास नीचे खाने बैठे। परोसने का ज़िम्मा राजलक्ष्मी ने आशा को दे रखा था। वह परोसने लगी।

महेन्द्र का कौर नहीं उठ रहा था, कलेजे में आँसू उमड़े आ रहे थे। राजलक्ष्मी बोलीं—"तू ठीक से खा क्यों नहीं रहा है, महेन्द्र? खा, मैं आँखें भरकर देखूँ।"

बिहारी ने कहा—"तुम तो जानती ही हो माँ, महेन्द्र भैया का सदा का यही हाल है। वह खा नहीं सका। भाभी, ज़रा यह कढ़ी थोड़ी-सी और दो मुझे, बेहतरीन बनी है।"

खुश होकर राजलक्ष्मी ज़रा हँसीं।...."मुझे मालूम है, बिहारी को यह बेहद पसन्द है। बहू, भला उतने से क्या होगा, और दो।"

बिहारी बोला—"तुम्हारी यह बहू अव्वल दर्ज़े की कंजूस है। इसके हाथ से कुछ

निकलता ही नहीं।"

राजलक्ष्मी बोलीं—"सुन लो बहू, तुम्हारा ही नमक खाकर बिहारी तुम्हारी ही निन्दा करता है।"

आशा बिहारी की पत्तल में सब्ज़ी डाल गयी।

बिहारी बोल उठा—"हाय राम, मुझे तो सब्ज़ी देकर ही धता बताना चाहती हैं, अच्छी-अच्छी चीज़ें सब महेन्द्र भैया के हिस्से।"

आशा फुसफुसाकर कह गयी—"कुछ भी करो, निन्दक की ज़बान बन्द नहीं होने की।"

बिहारी बोला—"मिठाई देकर देखो, बन्द होती है या नहीं।"

दोनों दोस्त खा चुके तो राजलक्ष्मी को बड़ी तृप्ति मिली। बोलीं—"बहू, अब तुम जाकर खा लो।"

आशा उनके हुक्म पर खाने चली गयी। उन्होंने महेन्द्र से कहा—"तू थोड़ा सो ले, महेन्द्र!"

महेन्द्र बोला—"सो जाऊँ अभी से!"

महेन्द्र ने सोच रखा था, रात को वह माँ की सेवा में रहेगा। मगर राजलक्ष्मी ने धीमे-से कहा—"बहू, देख जाओ कि महेन्द्र का बिस्तर ठीक भी है या नहीं। वह अकेला है।"

आशा लाज के मारे मरी-सी किसी तरह कमरे से बाहर चली गयी। वहाँ केवल बिहारी और अन्नपूर्णा रह गए।

तब राजलक्ष्मी ने कहा—"तुमसे एक बात पूछनी है, बिहारी। बिनोदिनी का क्या हुआ, पता है। कहाँ है वह?"

बिहारी ने कहा—"वह कलकत्ता में है।"

राजलक्ष्मी ने आँखों की मौन दृष्टि से ही प्रश्न किया। बिहारी समझ गया।

बोला—"उसकी तुम अब फ़िक्र ही न करो, माँ!"

राजलक्ष्मी बोलीं—"उसने मुझे बहुत दुःख दिया है बिहारी, फिर भी मैं अन्दर से उसे प्यार करती हूँ।"

बिहारी बोला—"वह भी मन-ही-मन तुम्हें प्यार करती है, माँ!"

राजलक्ष्मी—"मुझे भी यही लगता है, बिहारी। दोष-गुण सबमें होता है, लेकिन वह मुझे प्यार करती थी। ढोंग करके कोई उस तरह की सेवा नहीं कर सकती।"

बिहारी बोला—"तुम्हारी सेवा करने के लिए वह तड़प रही है।"

राजलक्ष्मी ने लम्बी साँस ली। कहा—"महेन्द्र, आशा, सब तो सोने चले गए। रात में उसे एक बार ले आओ तो क्या हर्ज़ है?"

बिहारी ने कहा—"वह तो इसी घर के बाहर वाले कमरे में छिपी बैठी है, माँ। उसने प्रतिज्ञा की है कि जब तक तुम उसे बुलाकर माफ़ नहीं कर दोगी, वह पानी भी न पीयेगी।"

राजलक्ष्मी परेशान हो उठीं। बोलीं—"सारे दिन से भूखी है? अरे तो जा उसे बुला

लो!"

ज्यों ही बिनोदिनी कमरे में आई, राजलक्ष्मी बोल उठीं—"राम-राम, तुमने यह किया क्या बहू, दिन-भर बे-खाये-पीये बैठी हो। जाओ, पहले खा लो, फिर बातचीत होगी।"

बिनोदिनी ने उनके चरणों की धूल ली। बोली—"पहले इस पापिन को तुम माफ़ करो बुआ, तभी मैं खाऊँगी।"

राजलक्ष्मी—"माफ़ कर दिया बिटिया, माफ़ कर दिया—अब मुझे किसी से भी कोई मलाल नहीं।"

बिनोदिनी का दाहिना हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—"बहू, तुमसे जीवन में किसी का बुरा न हो और तुम भी सुखी रहो!"

बिनोदिनी—"तुम्हारा आशीर्वाद झूठा न होगा बुआ, मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ, मुझसे इस घर का बुरा न होगा।"

झुककर अन्नपूर्णा को प्रणाम करके बिनोदिनी खाने गयी। लौटने पर राजलक्ष्मी ने पूछा—"तो अब तुम चलीं?"

बिनोदिनी—"मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, बुआ। ईश्वर साक्षी है, मुझसे किसी बुराई की शंका न करो।"

राजलक्ष्मी ने बिहारी की तरफ़ देखा। बिहारी ने कुछ सोचा। फिर कहा— "भाभी रहें, कोई हर्ज नहीं।"

रात में बिहारी, अन्नपूर्णा और बिनोदिनी—तीनों ने मिलकर राजलक्ष्मी की सेवा की।

इधर रात को आशा राजलक्ष्मी के पास नहीं आई, इस शर्म से वह तड़के ही उठी। महेन्द्र को सोता ही छोड़कर उसने जल्दी से मुँह धोया, कपड़े बदले और तैयार होते ही आई। तब भी धुँधलका था। दरवाज़े पर आकर उसने जो कुछ देखा, वह अवाक् रह गयी। स्वप्न तो नहीं!

स्पिरिट-लैंप जलाकर बिनोदिनी पानी गरम कर रही थी। रात को बिहारी ने पलकें भी न झपकाई थीं। उनके लिए चाय बनानी थी।

आशा को देखकर बिनोदिनी खड़ी हो गयी। बोली—"सारे अपराधों के साथ मैंने आज तुम्हारी शरण ली है—और कोई तो जाने की न कह सकेगा, मगर तुम अगर कह दो, 'जाओ', तो मुझे तुरन्त जाना पड़ेगा।"

आशा कोई जवाब न दे सकी। वह यह भी ठीक-ठीक न समझ सकी कि उसका मन क्या कह रहा है—इसलिए वह हक्की-बक्की हो गयी।

बिनोदिनी—"मुझे तुम कभी माफ़ नहीं कर पाओगी—इसकी कोशिश भी मत करना। मगर मुझे अब कोई खतरा मत समझना। जिन कुछ दिनों के लिए बुआ को ज़रूरत है, मुझे इनकी सेवा करने दो, फिर मैं चली जाऊँगी।"

कल जब राजलक्ष्मी ने आशा का हाथ महेन्द्र के हाथों में दिया तो उसने मन का सारा मलाल हटाकर सोलहों आने को महेन्द्र के हाथों सौंप दिया था। आज बिनोदिनी को अपनी नज़र के सामने खड़ी देखकर उसके खंडित प्रेम की ज्वाला शान्त न हो सकी। इसे कभी महेन्द्र ने प्यार किया था, शायद अब भी मन-ही-मन प्यार करता हो—यह बात

उसके कलेजे में लहर की तरह फूल-फूल उठने लगी। ज़रा ही देर बाद महेन्द्र जगेगा और वह बिनोदिनी को देखेगा, जाने किस नज़र से देखेगा।

भारी हृदय लिये आशा अन्नपूर्णा के कमरे में पहुँची। बहुत शर्माती हुई बोली —"मौसी, तुम रात-भर सोयी नहीं, जाओ सो जाओ!" अन्नपूर्णा ने एक बार अच्छी तरह से आशा के चेहरे को देखा। उसके बाद सोने जाने की बजाय आशा को साथ लिये अपने कमरे में गयीं। बोलीं—"चुन्नी, खुलकर बात करना चाहती है, तू अब बातों को मन में मत रख। गैर को दोषी बनाने का जो सुख है, मन में दोष रखने का दुःख उससे कहीं बड़ा है।"

आशा ने कहा—"मन में कोई गाँठ मैं रखना तो नहीं चाहती हूँ मौसी, सब भूल जाना ही चाहती हूँ, मगर भूलते ही तो नहीं बनता।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"तू ठीक ही कहती है बिटिया, उपदेश देना आसान है, कर दिखाना ही मुश्किल है। फिर भी मैं तुझे एक उपाय बताती हूँ। जी-जान से इस भाव को कम-से कम रखो, मानो भूल गयी है। पहले बाहर से भुलाना शुरू कर, तभी भीतर से भी भूल सकेगी।"

आशा ने सिर झुकाए हुए कहा—"बताओ, मुझे क्या करना होगा?"

अन्नपूर्णा बोलीं—"बिहारी के लिए बिनोदिनी चाय बना रही है, तू दूध, चीनी, प्याला-सब-कुछ लेकर जा। मिलकर काम करो!"

आशा आदेश-पालन के लिए उठी। अन्नपूर्णा ने कहा—"यह आसान है— लेकिन मुझे एक बात और कहनी है, वह और भी सख्त है और उसका पालन तुझे करना ही पड़ेगा। जब-तब महेन्द्र से बिनोदिनी की मुलाकात होगी ही और तब तेरे मन में क्या होगा, मैं जानती हूँ—लेकिन वैसे में कभी कनखियों से भी महेन्द्र या बिनोदिनी के भाव को देखने की कोशिश तक न करना। कलेजा फटता रहे, लेकिन अडिग रहना पड़ेगा। महेन्द्र यह समझेगा कि तुझे कोई शक नहीं रहा।—टूटने के पहले जैसा था, जोड़ वैसा ही जुड़ गया है। महेन्द्र या और कोई तेरी शक्ल देखकर अपने को दोषी नहीं समझेगा। चुन्नी, यह कोई मेरा उपदेश नहीं, आग्रह नहीं, यह तेरी मौसी का आदेश है। मैं जब काशी चली जाऊँ, तब तू एक दिन को भी यह बात न भूलना!"

चाय का प्याला लिये आशा बिनोदिनी के पास पहुँची। पूछा—"उबल गया पानी? मैं दूध ले आई हूँ।"

बिनोदिनी अचरज से आशा का मुँह ताकने लगी। बोली—"बिहारी लाला जी बरामदे में बैठे हैं। तुम उनको चाय भेज दो। इतने में बुआ का मुँह धुलाने का इंतजाम करती हूँ। अब जग जाएँ शायद।"

बिनोदिनी जान-बूझ कर चाय लेकर बिहारी के पास नहीं गयी। उसके प्रेम को कबूल करने के नाते बिहारी ने जो अधिकार उसे दिया था, उसके मनमाने इस्तेमाल में उसे संकोच हुआ। अधिकार पाने की जो मर्यादा है, उसे बचाना हो तो अधिकार के प्रयोग को संयत होना चाहिए। जितना मिलता है, उतने के लिए छीना-झपटी करना कँगले को ठीक लगता है।

इतने में महेन्द्र आ पहुँचा। आशा का दिल धक् कर उठा, तो भी अपने को ज़ब्त करके उसने स्वाभाविक स्वर में महेन्द्र से कहा—"तुम इतनी जल्दी जग गए। रोशनी न

आए इस वजह से मैंने खिड़कियाँ बन्द कर दी थीं।"

बिनोदिनी के सामने ही इस सहज भाव से आशा को बात करते देखकर महेन्द्र के कलेजे पर मानो कोई पत्थर उतर गया। वह खुश होकर बोला—"देखने आ गया कि माँ कैसी हैं। वे सो रही हैं अभी तक?"

आशा ने कहा, "हाँ, सो रही हैं। अभी वहाँ मत जाना! देवर जी ने बताया— आज वह पहले से अच्छी हैं। बहुत दिनों के बाद कल रात-भर वह मज़े में सोयी हैं।"

महेन्द्र निश्चिन्त हुआ। पूछा—"चाची कहाँ हैं?"

आशा ने चाची का कमरा दिखा दिया।

आशा की यह दृढ़ता और संयम देखकर बिनोदिनी को भी हैरत हुई।

महेन्द्र ने पुकारा—"चाची!"

अन्नपूर्णा स्नान करके पूजा करने की सोच रही थीं। फिर भी उन्होंने कहा— "आ महेन्द्र, आ!"

महेन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया। कहा—"चाची, मैं पापी हूँ। तुम लोगों के सामने आते मुझे शर्म आती है।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"ऐसा नहीं कहते, बेटे! बच्चे तो गर्द में सनकर भी माँ की गोद में बैठते हैं।"

महेन्द्र—"मगर मेरी यह धूल कभी धुलने की नहीं, चाची!"

अन्नपूर्णा—"दो-एक बार झाड़ देने से यह झड़ जाएगी। अच्छा ही हुआ, महेन्द्र। तुझे अपने भले होने का अभिमान था। अपने पर तुझे बेहद विश्वास था। पाप की आँधी ने तेरे उस गर्व को तोड़ गिराया है, और कुछ नहीं बिगाड़ा।"

महेन्द्र—"अब तुम्हें मैं न जाने दूँगा, चाची। तुम्हारे चले जाने से ही मेरी यह दुर्गति हुई।"

अन्नपूर्णा—"मैं रहकर तुझे जिस दुर्गति से बचाती, वह हो गयी, अच्छा हुआ। अब तुमको मेरी कोई ज़रूरत न पड़ेगी।"

दरवाज़े पर फिर पुकार मची—"चाची पूजा करने बैठी हो, क्या?"

अन्नपूर्णा ने कहा—"नहीं, तू आ!"

बिहारी अन्दर आया। इतने तड़के महेन्द्र को जगा देखकर वह बोला—"जीवन में आज शायद पहली बार तुमने सूर्योदय देखा, भैया!"

महेन्द्र ने कहा—"हाँ भाई, मेरे जीवन में यह पहला सूर्योदय है। तुम्हें चाची से कोई राय करनी है शायद—मैं चलता हूँ।"

बिहारी ने हँसकर कहा—"तुम्हें भी कैबिनेट का मिनिस्टर बना लिया गया समझो। तुमसे तो मैंने कभी कुछ छिपाया नहीं—एतराज़ न हो तो आज भी न छिपाऊँ।"

महेन्द्र—"मैं और एतराज़! हाँ, दावा ज़रूर नहीं कर सकता। तुम अगर मुझसे कुछ न छिपाओ, तो मैं भी फिर से आप अपने ऊपर श्रद्धा करने का मौका पाऊँ।"

बहरहाल, बिहारी के लिए बेहिचक सब-कुछ कहना मुश्किल था। बिहारी की ज़बान

रुक-सी गयी, मगर उसने ज़ोर देकर कहा—"ऐसी बात आई थी कि मैं बिनोदिनी से विवाह करूँगा—चाची से उसी के बारे में फैसला लेना था।"

महेन्द्र सकुचा गया। अन्नपूर्णा चौंककर बोलीं—"यह कैसी बात है, बिहारी?"

महेन्द्र ने बड़ा बल डालकर अपने संकोच को हटाया। कहा—"बिहारी, यह विवाह नहीं होगा।"

अन्नपूर्णा ने कहा—"इस प्रस्ताव में क्या बिनोदिनी का हाथ है?"

बिहारी ने कहा—"बिल्कुल नहीं।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"वह भला क्या राज़ी होगी इस पर?"

महेन्द्र बोला—"वह भला राज़ी क्यों न होगी, चाची! मैं जानता हूँ, वह हृदय से बिहारी की भक्ति करती है। ऐसे आश्रय को वह छोड़ सकती है भला!"

बिहारी ने कहा—"विवाह का प्रस्ताव बिनोदिनी से मैंने किया था, भैया उसने शर्म से इनकार कर दिया है।"

सुनकर महेन्द्र चुप रह गया।

53

भले-बुरे राजलक्ष्मी के दो दिन निकल गए। एक दिन सुबह उनका चेहरा खिला-खिला दिख रहा था। पीड़ा का नामोनिशान नहीं था। उसी दिन उन्होंने महेन्द्र को बुलाकर कहा —"मैं अब ज़्यादा देर की मेहमान नहीं, बेटे—मगर मैं बड़े सुख से मर सकूँगी, महेन्द्र मुझे अब कोई दुःख नहीं है। तू जब छोटा था, तो तुझे पाकर जो खुशी मुझे थी, आज उसी खुशी से मेरा हृदय भर उठा है—तू मेरी गोदी का लाड़ला है, मेरे कलेजे का रत्न—मैं तेरी सारी बला साथ लिये जा रही हूँ, यही मेरा सबसे बड़ा सुख है।"

इतना कहकर वह महेन्द्र के मुखड़े और बदन पर हाथ फेरने लगीं। महेन्द्र की रुलाई का बाँध टूट गया।

राजलक्ष्मी ने कहा—"रो मत बेटे! लक्ष्मी घर में रही। कुंजी मेरी बहू को देना। मैंने सब-कुछ सँजोकर रखा है, गृहस्थी में किसी बात की कमी न पड़ेगी तुम्हें। एक बात और कह लूँ, मेरी मौत से पहले किसी को मत बताना। मेरे बक्स में दो हज़ार के नोट पड़े हैं। वे रुपये बिनोदिनी को दे रही हूँ। वह विधवा है, अकेली है, इन रुपयों के सूद से उसके दिन मज़े में कट जाएँगे। मगर उसे अपने यहाँ मत रखना।"

राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलवाया। कहा—"बेटे बिहारी, कल महेन्द्र बता रहा था, तूने लाचार जनों की चिकित्सा के लिए एक बगीचा लिया है—भगवान तुम्हें लम्बी आयु देकर गरीबों का भला करे। मेरे ब्याह के समय मेरे ससुर ने मुझे एक गाँव दिया था; वह गाँव मैं तुझे देती हूँ, उसे गरीबों की सेवा में लगाना। इससे मेरे ससुर का पुण्य होगा।"

54

राजलक्ष्मी की मृत्यु के बाद श्राद्ध वगैरह खत्म करके महेन्द्र ने कहा—"भई बिहारी, मैं डॉक्टरी जानता हूँ। तुमने जो काम शुरू किया है, मुझे भी उसमें शमिल कर लो! चुन्नी अब ऐसी गृहिणी बन गयी है कि वह भी तुम्हारी मदद कर सकेगी। हम सब लोग वहीं रहेंगे।"

बिहारी ने कहा—"खूब अच्छी तरह सोच देखो, भैया—यह काम हमेशा के लिए कर सकोगे? वैराग्य के इस क्षणिक आवेश में ऐसा स्थायी भाव मत ले बैठो!"

महेन्द्र बोला—"तुम भी ज़रा सोचकर देखो, जीवन का मैंने इस तरह बँटाधार किया है कि अब बैठे-बैठे उसके उपभोग की गुंजाइश न रही। इसे अगर सक्रियता में न खींचता चलूँ तो जाने किस रोज़ यह मुझे अवसाद में खींच ले जाएगा। अपने काम में मुझे शामिल करना ही पड़ेगा।"

यही बात तय रही।

अन्नपूर्णा और बिहारी दोनों बैठकर शान्त उदासी लिये पिछले दिनों की चर्चा कर रहे थे। दोनों के एक-दूसरे से अलग होने का समय करीब था। बिनोदिनी ने दरवाज़े के पास आकर पूछा—"चाची, मैं यहाँ बैठ सकती हूँ।"

अन्नपूर्णा बोलीं—"आ जाओ बिटिया, आओ!"

बिनोदिनी आई। उससे दो-चार बातें करके बिछौना उठाने का बहाना करके अन्नपूर्णा चली गयीं।

बिनोदिनी ने बिहारी से कहा—"अब मेरे लिए तुम्हारा जो आदेश हो, कहो!"

बिहारी ने कहा—"भाभी, तुम्हीं बताओ, तुम क्या चाहती हो?"

बिनोदिनी बोली—"मैंने सुना है, गरीबों के इलाज के लिए तुमने कोई बगीचा लिया है। मैं वहीं तुम्हारा कोई काम करूँगी और कुछ न बने तो खाना पकाऊँगी।"

बिहारी बोला—"मैंने बहुत सोच देखा है, भाभी! इन-उन हंगामों से अपने जीवन के जाल में बेहद गाँठें पड़ गयी हैं। अब एकान्त में बैठकर एक-एक करके उन्हीं गाँठों को खोलने का समय आ गया है। पहले सबकी सफ़ाई कर लेनी होगी। अब जी जो चाहता है, सबको मान लेने की हिम्मत नहीं पड़ती। अब तक तो गुज़रा, जितना कुछ झेला, उन सबके आवर्तन और आन्दोलन को शान्त न कर लूँ तो जीवन की समाप्ति के लिए तैयार न हो सकूँगा। अगर सारे बीते दिन अनुकूल हों, तो संसार में केवल तुमसे ही मेरा जीवन पूर्ण हो सकता था। अब तुमसे मुझे वंचित होना ही पड़ेगा। सुख की कोशिश अब बेकार

है...अब तो धीरे-धीरे टूट-फूटकर मरम्मत कर लेनी है।"

इतने में अन्नपूर्णा आईं। उनके आते ही बिनोदिनी ने कहा, "माँ, तुम्हें अपने चरणों में मुझे शरण देनी पड़ेगी। पापिन के नाते तुम मुझे मत ठुकराओ।"

अन्नपूर्णा बोलीं, "चलो, मेरे ही साथ चलो।"

अन्नपूर्णा और बिनोदिनी जिस दिन काशी जाने लगीं, मौका ढूँढकर बिहारी ने अकेले में बिनोदिनी से भेंट की। कहा, "भाभी, तुम्हारी कोई यादगार मैं अपने पास रखना चाहता हूँ।"

बिनोदिनी बोली, "अपने पास ऐसा क्या है, जिसे निशानी की तरह पास रखो।"

बिहारी ने शर्म और संकोच के साथ कहा, "अंग्रेज़ों में ऐसा रिवाज़ है, अपनी प्रिय पात्री की कोई लट याद के लिए रख लेते हैं—तुम अगर..."

बिनोदिनी—"छिः कैसी घिनौनी बात! मेरे बालों का तुम क्या करोगे? वह मुई नापाक चीज़ कुछ ऐसी नहीं कि तुम्हें दूँ। अभागिन मैं, तुम्हारे पास रह नहीं सकती—मैं ऐसा कुछ देना चाहती हूँ, जो मेरा होकर तुम्हारे काम में आए।"

बिहारी ने कहा, "लूँगा।"

इस पर बिनोदिनी ने आँचल की गाँठ से खोलकर हज़ार-हज़ार के दो नोट बिहारी को दिए।

बिहारी गहरे आवेश के साथ बिनोदिनी के चेहरे की ओर एकटक देखता रहा। ज़रा देर बाद बोला—"और मैं क्या तुम्हें कुछ न दे पाऊँगा?"

बिनोदिनी ने कहा—"तुम्हारी निशानी मेरे पास है, वह मेरे अंग का भूषण है, उसे कभी कोई छीन नहीं सकता। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

यह कहकर उसने अपने हाथ की चोट का वह दाग दिखाया।

बिहारी हैरान रह गया। बिनोदिनी बोली, "तुम नहीं जानते, यह आघात तुम्हारा है और यह आघात तुम्हारे ही योग्य है। इसे तुम भी वापस नहीं ले सकते।"

मौसी के इतना समझने-बुझाने के बावजूद बिनोदिनी की ओर से आशा अपने मन को निष्कण्टक न कर सकी थी। राजलक्ष्मी के सेवा-जतन में दोनों साथ जुटी रहीं, पर जब से उसकी नज़र बिनोदिनी पर पड़ी, तभी उसके दिल को चोट लगी—ज़बान से आवाज़ न निकली और हँसने की कोशिश ने उसे दुखाया। बिनोदिनी की कोई मामूली सेवा लेने में भी उसका मन नाराज़ रहता। शिष्टता के नाते बिनोदिनी का लगाया पान उसे लेना पड़ा, लेकिन बाद में तुरन्त थूक दिया है। लेकिन आज जब जुदाई की घड़ी आई, मौसी दोबारा घर-बार छोड़कर जाने लगीं और आशा का हृदय आँसू से गीला हो उठा, तो बिनोदिनी के लिए भी उसका मन भर आया। जो सब-कुछ छोड़-छोड़कर एकबारगी जा रहा हो, उसे माफ़ न कर सके, ऐसे लोग दुनिया में कम ही हैं। उसे मालूम था, बिनोदिनी महेन्द्र को प्यार करती है, क्यों न करे महेन्द्र को प्यार! महेन्द्र को प्यार करना कितना ज़रूरी है यह बात उससे ज़्यादा कौन जान सकता है।

वह धीरे-धीरे बिनोदिनी के पास जाकर विषाद से बोली, "दीदी, जा रही हो?"

आशा की ठोड़ी पकड़कर बिनोदिनी ने कहा, "हाँ बहन, जाने का समय आ गया।

कभी तुमने मुझे प्यार किया था, अब अपने सुख के दिनों में उस प्यार का थोड़ा-सा अंश मेरे लिए रखना बहन, बाकी सब भूल जाना।"

महेन्द्र ने आकर नमस्ते करके कहा, "माफ़ करना, भाभी!"

उसकी आँखों की कोरों में आँसू की एक-एक बूँद छलकने को थी। बिनोदिनी ने कहा, "तुम भी मुझे माफ़ करना देवर जी, भगवान तुम लोगों को सदा सुखी रखें!"